CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरीन्द्र दवे

माधव कहीं नहीं हैं

Dr. Urmila Sharma Collection. Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माधव कहीं नहीं हैं

नारद के माध्यम से श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन करनेवाला एक अद्भुत और अनूठा उपन्यास है यह 'माधव कहीं नहीं हैं'। कृष्ण-दर्शन के लिए लालायित नारद पता लगाते हुए जब तक अमुक स्थान पर पहुँचते हैं तब तक कृष्ण वहाँ से निकल चुके होते हैं—किसी नयी घटना के योजक, प्रेरक या फिर स्वयं स्रष्टा बनकर। कृष्ण से उनकी अन्त तक भेंट नहीं हो पाती है। लेकिन हर किसी अमिलन में उन्हें ऐसा अनुभव होता है जैसे वे उन्हें पा चुके हैं। परम तत्त्व का कोई पार नहीं है लेकिन जितने अंश में पानेवाला स्वयं परम बनता जाता है उतने ही अंश में वह परम तत्त्व का सांगोपांग अनुभव प्राप्त कर लेता है। नारद को कृष्ण का रूप कृष्ण से दूर रहकर क्या-कैसा दिखता गया और उसे देखते हुए उनके अपने स्वरूप में भी क्या कुछ परिवर्तन होता गया—उपन्यास की कथा इसी रहस्य को खोलती है। इसी बहाने श्रीकृष्ण के जीवन की अनेक घटनाएँ इस कृति में अनायास ही समाविष्ट हो जाती हैं।

गुजराती के अग्रणी कथाकार श्री हरीन्द्र दवे ने जिस कलात्मक ढंग से इस कृति को रूपाकार प्रदान किया है, उससे यह बेहद रोचक और पाठक के मन को गहरे तक प्रभावित करनेवाली बन गयी है। निस्सन्देह रचनाकार की भाषा की विलक्षण, गहरी और संस्कारशील समझ से ही यह सब सम्भव हो सका है।

कहा जा सकता है कि इस उपन्यास से हिन्दी पाठक-जगत् सन्तुष्ट तो होगा ही, वह कथाशिल्प के एक नये आयाम से भी परिचित हो सकेगा।

प्रस्तुत है उपन्यास का नया संस्करण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माधव कहीं नहीं हैं

उपन्यास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहला संस्करण : 1995

ISBN 81-263-1048-0

राष्ट्रभारती
लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 577

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003
लेजर टाइप-सेटिंग : भारतीय ज्ञानपीठ
मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली-32
दूसरा संस्करण : 2004
मूल्य : 100 रुपये
© श्री हरीन्द्र दवे

MADHAV KAHIN NAHIN HAIN
(Novel)
by Harindra Dave

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003

Second Edition : 2004
Price : Rs. 100

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रोहित-प्रकाश-दीपक को
जिनके शैशव में देखा मैंने कृष्ण को कभी-कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरह में मिलन की शोध

भूमिका : संक्षिप्त रूप

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां,
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥

जब भगवान श्रीक्रष्ण ने बलराम के साथ रंगभूमि में प्रवेश किया तब वे पहलवानों को कठोर वज्र, पुरुषों को नवरत्न, स्त्रियों को साक्षात् कामदेव, ग्वालों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को दण्ड देनेवाले, वृद्धों को बालक, कंस को यम, अज्ञानियों को विराट्, वृष्णियों को इष्टदेव और योगियों को परमतत्त्व जैसे लगे।

भागवत श्रीकृष्ण के अनिर्वचनीय स्वरूप की भक्ति द्वारा सांगोपांग झाँकी प्रस्तुत करनेवाला शास्त्र है। इसके उपर्युक्त पद में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से अपनी भावसृष्टि द्वारा अलग अलग लोगों को श्रीकृष्ण कैसे दिखे इसका सरस वर्णन किया गया है। परमतत्त्व का कोई पार नहीं पा सकता। जितने अंश में पानेवाला स्वयं परम बनता है उतने अंश में ही वह परमतत्त्व का सांगोपांग अनुभव प्राप्त कर सकता है। इस हेतु भागवत के मत से विद्या की अपेक्षा भक्ति की अधिक जरूरत है। निर्व्याज भक्ति स्वयं ही एक ऐसा रसायन है कि उसके पास आयी मलीनता भी विमल बन जाती है।

भाई हरीन्द्र की 'माधव कहीं नहीं हैं' इस बात की कलात्मक पुष्टि करती नये ढंग की नवलकथा है। इसमें कृष्ण-चरित्र का वर्णन करते हुए महाभारत, भागवत, हरिवंश आदि सभी ग्रन्थों का आधार लिया गया है। पर इन ग्रन्थों में कही गयी बात कहने में उन्हें रस नहीं है। वे तो बस इतना कहना चाहते हैं कि नारद को श्रीकृष्ण का स्वरूप श्रीकृष्ण से दूर रहकर भी क्या कैसा दिखता गया और उसे देखते हुए उनका अपना स्वरूप भी क्या-कुछ होता गया। कोई भी दो सजीव पदार्थ मिलते हैं, तब मिलन के बाद उनका स्वरूप बदल जाता है। मिलन का अर्थ है आदान-प्रदान। फिर जहाँ भक्त और भगवान का मिलन हुआ हो वहाँ भक्त का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरूप और उसके हृदय में बसे भगवान का रूप न बदले यह कैसे हो सकता है ? कंस के कारागार में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है यह सुनते ही नारद का स्वरूप-परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। श्री हरीन्द्र ने जैसा कि वर्णन किया है, श्रीकृष्ण की खोज में निकले नारद के लिए उस मध्यरात्रि में कारागार के द्वार ही नहीं खुल जाते हैं, वरन् निराशा के दुर्ग में बन्द नारद के मनोद्वार भी खुल जाते हैं। सगी बहिन की सन्तानों को राजलिप्सा की खातिर भाई मार डालता है। एक नहीं सात-सात सन्तानों की हत्या करता है, और इसके उपरान्त भी जनसभा में से विरोध की एक आवाज भी न उठे ! ऐसी अधमाधम स्थिति में निराशा के तले बैठ समाज में सबसे पहली आवश्यकता निर्व्याज प्रेम/स्नेह की प्रथम लहर प्रस्फुटित होने की होती है। दुनिया बनी तभी से भाई-बहन का सम्बन्ध सबसे निर्दोष, सबसे निर्व्याज माना गया है। यह सम्बन्ध राजलिप्सा से इतना ज्यादा दूषित हो गया है कि कंस के हाथ से देवकी की आंठवीं सन्तान हवा में उड़ जाती है। कंस को मृत्यु की घबराहट तो होती है, पर देवकी उसकी बहिन है इसकी स्मृति तक उसे नहीं आती। कलियुग का यह मध्याह्न है और इस कारण स्नेह-सम्बन्ध घोर स्वार्थ सम्बन्ध में बदल जाता है। और इसी से 'माधव कहीं नहीं हैं' में श्रीकृष्ण का बालचरित्र ऐसे निर्व्याज प्रेम के पारिजात पुष्प जैसा है।

भाई हरीन्द्र की प्रस्तुति के अनुसार, जिसे भक्त कवियों ने अमर बनाया है वह राधा, वैष्णवजनों की राधिका, कंस के किसी नौकर की मुद्रा नामक स्त्री है और उसका पति उसे जुआ में हार गया है। अपनी पत्नी को दाँव पर लगाते हुए उसे लज्जा का तनिक-सा स्पर्श भी नहीं होता। जिस कंस को अपनी छोटी बहिन की सात-सात संतानों को मार डालने में तनिक भी संकोच नहीं हुआ तो उसके नौकर को अपनी पत्नी को जुआ में दाँव पर लगाने में किस बात का संकोच होता ! कलियुग का मध्याह्न जो है। कलियुग का अर्थ ही है—शरीर-सुख को ही सब कुछ मानना और उसे बनाये रखने के लिए अपने भुजबल पर ही पूरा भरोसा करना। आसुरी सम्पत्ति का वर्णन करते हुए वासुदेव ने जो कुछ कहा उसके मूर्तिमन्त कंस, जरासन्ध आदि हैं। असत्य, हिंसा जैसे आचरण सतयुग में नहीं होते थे ऐसा नहीं है, पर सतयुग में उनकी प्रतिष्ठा नहीं थी और वे सर्वोपरि नहीं माने जाते थे। कलियुग में प्रेम, दया, माया-ममता नहीं होते, ऐसा नहीं है; पर उनका उपहास किया जाता है। सत्य, न्याय आदि शक्तियाँ जब प्रतिष्ठित होने के लिए उठ खड़ी होती हैं तब सतयुग का आरम्भ होता है और वह प्रतिष्ठित होता है। जब सर्वोपरि होता है तब सतयुग का वह मध्याह्न होता है। पर जो कलियुग से घिरे होते हैं उन्हें ऐसा नहीं सूझता। वे तो, यानी ये आसुरी प्रकृतिवाले लोग, कहते हैं कि जगत् आश्रय-रहित है, और सत् के आधार पर नहीं है। यह सृष्टि ईश्वर के कारण नहीं, स्त्री-पुरुष का संयोग इसका कारण है, अतः इस सृष्टि का उद्देश्य दैहिक भोग भोगने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलावा और क्या हो सकता है ! विषय-सुख भोगने में तत्पर रहना, यही एक मात्र आनन्द है—ऐसा वे मानते हैं। 'आज मैंने इस पर कब्जा कर लिया है, अब मेरी वासना को तृप्ति मिल सकेगी। वह मेरा शत्रु आज मारा गया, दूसरों को कल मारूँगा। मैं ही बलवान हूँ, मैं ही सुखी हूँ, मैं ही ईश्वर हूँ—ऐसा वे मानते हैं।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥ (गीता—16 : 8)

इस भ्रमजाल से मुक्त होनेवाले को सबसे पहले शरीर से बाहर निकलना होगा। भाई हरीन्द्र ने नदी में बह गयी मुद्रा की देह को राधा का नया रूप दिया है और वह अद्भुत कविकल्पना है। मुद्रा जब जुआ में उसे बेच देनेवाले पति के घर का त्याग करके मथुरा के बाहर निकल जाती है तब प्रद्योत के यह पूछने पर कि कहाँ जा रही है, वह बहुत ही संकेत रूप से कहती है—'दुर्ग से बाहर, देह से बाहर', और इस देह से बाहर निकलने के लिए वह यमुना की बाढ़ में कूद जाती है। बाढ़ से बच जाती है, तब वह मुद्रा नहीं होतीं, वह बन गयी है राधा। देह-सुख को सर्वस्व माननेवाले अविचार की बाढ़ में जो देह को त्याग देता है वह कृष्ण को पा जाता है। ऐसा संकेत हमें आरम्भ में ही मिल जाता है। कथा की संरचना इस प्रकार की गयी है कि नारद 'श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है' ऐसी सूचना मिलतें उन्हें देख लेने को लालायित हैं, उनके दर्शन को प्रयास करते हैं, पर एकदम अन्त तक वे कृष्ण से मिल नहीं पाते। हर प्रसंग में जहाँ-जहाँ कृष्ण होते हैं, वहाँ-वहाँ वे जाते हैं। इस बार तो कृष्ण मिलेंगे ही ऐसी भरपूर आशा लिये वे जाते हैं, पर जब तक वहाँ पहुँचते हैं पता चलता है कि कृष्ण वहाँ से निकल चुके हैं। फिर वह कंसबध का प्रसंग हो, कालयवन के साथ युद्ध हो, जरासंध का महाभारत में सन्धि या युद्ध का प्रसंग हो—हर प्रसंग में यही होता है कि अन्ततः मिलाप नहीं हो पाता, भले ही नारद अपनी वीणा में गोविन्द का नाम जपते हों और श्रीकृष्ण 'देवर्षियों में मैं नारद हूँ' कहते हों। ऐसा वर्णन करते समय कहीं-कहीं कृत्रिमता की छौंक भी अनुभव होती है। पाठक को 'ऐसा होनेवाला है' इतना ही अनुभव नहीं होता, लेखक को भी 'ऐसा कुछ घटेगा ही' ऐसा लगने लगता है। इस कारण कथा के रस में जहाँ कहीं व्याघात का अनुभव होता है। पर अधिकतर स्थलों पर, और उसमें भी आरम्भ में तो सहज रस की कल्लोलिनी बह रही है। कृष्ण मथुरा गये, उसके बाद ब्रजवासियों की जो अवस्था हुई, नन्द, जसोदा और उनमें भी राधा—इन सबकी विरह-व्यथा का जो वर्णन किया गया है वह इस कथा का सर्वोत्कृष्ट भाग है।

भाई हरीन्द्र जी का तो संस्कारी भाषा ने सहज वरण किया है, और इन प्रकरणों में तो यह सिद्धि पाठक के मन को बहुत प्रभावित करती है। विरह का इतने थोड़े शब्दों में ऐसा वर्णन कितनों ने किया होगा ! ब्रज में नारद कृष्ण के मथुरागमन के बाद पहुँचते हैं और एक स्त्री से पूछते हैं कि नन्द का घर कहाँ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह उत्तर देती है : "आपको नन्दजी का घर ढूँढना नहीं पड़ेगा। यहाँ से चलते जाइए और आँसुओं की खारी नमी से गीली बनी यह पगडण्डी जिस आँगन में अटक जाय वही नन्द का घर समझ लेना।" कृष्ण को वसुदेव-सुत बन गये देखकर व्याकुल नन्द कहते हैं : देवर्षि ! कृष्ण और बलराम ने मुझे प्रणाम किया। जो दौड़ कर मेरी गोदी में बैठने के आदी थे, जिनके पैरों की धूल से अटकर मेरे वस्त्रों का रंग बदल गया, उन लड़कों ने मेरी चरणरज ली ! नारद जी, हमारे वृन्दावन में बाप-बेटे के बीच ऐसा व्यवहार नहीं होता।"

माता यशोदा के अन्तस्तल में इस विरह-व्यथा का सागर समा गया है, ऐसे अर्थ-भरे कितने ही वाक्य हम यहाँ ढूँढ़ सकते हैं। यशोदाजी कहती हैं—"नारद मथुरा से आ रहे हैं तो पूछते तो आते कि रानी देवकी के महल में किसी दासी की जरूरत तो नहीं !" यशोदा यह भी कहती हैं : "नारद, एक बार कृष्ण रोते रोते मेरे पास आया और बोला—'बलराम कहता है कि मैं जसोदा माँ का बेटा नहीं हूँ। वंजारों की एक टोली ब्रज में आयी थी तब माँ ने मुझे खरीद लिया था। बेर जितने बड़े-बड़े आँसू उसकी आँख से झर रहे थे। मुझसे कहे कि 'माँ, बोल न मैं तेरा बेटा हूँ कि नहीं ?" और माता के लिए ही शक्य ऐसे अनर्गल विश्वास से वह आगे कहती हैं, "वह बेचारा लाचार होगा, भाले की नोक से राजा उग्रसेन ने उसे रोक रखा होगा, नहीं तो वह मेरे विना एक रात भी रह सकता है कहीं ?"

राधा के हृदयपटल का उद्घाटन तो पाठक के हृदय को भी मथ डाले ऐसा है। नारद को कृष्ण के स्मरणों की बातें बताते हुए वह बोल उठती है : "हाय रे, उस दिन आपने अपनी कोमल अँगुली पर गोवर्धन किसलिए उठा लिया था ! वह अँगुली हटा ली होती और पर्वत हमारे ऊपर गिरने दिया होता तो आज भाग्य में दुःख के पहाड़ जैसी असह्य पीड़ा सहना तो न लिखा जाता !" और मथुरा से कृष्ण का सन्देश लेकर आये उद्धव से कहती है—"मथुरा के लोग तो भूलकर भी वृन्दावन की ओर नहीं आते, आप क्या लेने आये हैं ?" उद्धव जब कहते हैं कि वे वसुदेव और देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण का संदेश लेकर आये हैं तब वह जो सुनाती है, वह राधा ही सुना सकती है—"पहचान नहीं पा रही हूँ। हाँ, इस नाम के एक छोकरे को पहचानती थी, पर वह तो नन्द का बेटा था ! हमारे यहाँ के लोग माँ-बाप का नाम नहीं बदल डालते।" जो प्रगाढ़ प्रेम कर सकता है वही मार्मिक उलाहना भी दे सकता है। प्रेम की उत्कटता ही प्रेम की सचोटता है। कृष्ण का जी तो वृन्दावन में है पर लोक-कल्याण के लिए झमेले में फँस गये हैं, उद्धव ऐसा आश्वासन देते हैं तब राधा कहती है, "उद्धव, आप तो मुझे पहचानते नहीं, कृष्ण तो पहचानते हैं। लीजिए, यह मेरी भेंट उन्हें दे दीजिएगा।" राधा ने हरे बाँस की एक बाँसुरी उद्धव के हाथ में दे दी—"यहाँ आधी रात में वे बाँसुरी बजाते थे तब डगमग पैरों से झाड़-झंखाड़ पार करते, साँप-बिन्छू या शेर-भेड़िये का भय एक तरफ रखकर हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यमुनातट की ओर दौड़ जाती थीं। उससे कहिएगा कि हवा में लम्बी साँस न ले, उसे इस बाँसुरी में भरता रहे। उसके पोर-पोर में घुट कर उसके स्वर मेरे अन्तःकरण तक पहुँचेंगे। इस बाँसुरी को सुनकर मथुरा में कोई जागे या न जागे, वृन्दावन से एक बावरी दौड़ी चली आएगी।"

प्रेम का यह बावलापन, 'ल्युनाटिक असाइलम' का पागलपन नहीं है, वरन् परमप्रेमरूप, परमज्ञानरूप की झाँकी पा जाने के बाद की विह्वलता है। चैन होता है पर बेचैनी नहीं जाती। इसी से उद्धव जब राधा को ठण्डी-ठण्डी सीखें देता है कि "देवी, कृष्ण तो सर्वव्यापी हैं। उनका स्थूल सम्बन्ध आप मन में सँजोये क्यों बैठी हो, मन को उनके निर्गुण रूप से जोड़िए।" तब राधा कहती है : "उद्धव, आप मथुरावासियों के पास दस-बीस मन होते होंगे, हमारे पास तो एक ही मन था और वह माधव के साथ चला गया।" वैष्णव सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण की अपेक्षा राधा-भाव को साधना के लिए अधिक महत्त्व दिया गया है, जैसे निरगुनिया सन्तों ने गोविन्द की अपेक्षा गुरु की महत्ता स्वीकारी है। माधव प्रत्यक्ष हों तब तो अधिकतर लोग माधव की भक्ति कर सकते हैं, पर माधव कहीं न हों तब इस भक्ति की दीपशिखा केवल राधा ही ग्रहण कर सकती है और नारद इससे दीक्षा प्राप्त करते हैं ऐसी सूचना देकर भाई हरीन्द्र ने पौराणिक सत्य को कलात्मक रूप प्रदान किया है। आदिग्रन्थ नारद-रचित 'पंचरात्र' माना जाता है। विरह में या मिलन में अनुभव की यात्रा 'माधव कहीं नहीं हैं' की पहचान है। राधा से दीक्षित होकर कृष्ण की खोज में निकले नारद को अन्त तक कृष्ण नहीं मिलते, पर कृष्ण के विविध रूपों के दर्शन उन्हें मिलन-विहीन विरह में बराबर होते रहते हैं। जरासन्ध के संग्राम में वीरपुरुष के रूप में, सन्धिवार्ता में लोककल्याण के लिए तृण से भी छोटे होने को तत्पर, एक राजनीतिज्ञ के रूप में, धर्मराज को कर्तव्य का ज्ञान करानेवाले विवेकी पुरुष के रूप में, अनाथ के नाथ के रूप में, द्रौपदी-चीरहरण प्रसंग में और अन्त में मृत परीक्षित को जीवित करनेवाले सत्यप्रतिज्ञ अवतारी पुरुष के रूप में। इस प्रकार कारागार में जनमे एक असाधारण बालक की अवतारी सत्ता के विविध रूप भाई हरीन्द्र ने चन्द्र की विकसती कला की भाँति एक के बाद एक नारद के समक्ष इस अमिलन-यात्रा में प्रकट किये हैं। द्रौपदी-चीरहरण प्रसंग में उन्होंने केवल द्रौपदी का 'गोविन्द-गोविन्द' चीत्कार ही कराया और उधर दुःशासन के हाथों से वस्त्र खींचने का बल ही समाप्त हो गया ! "घुटने के बल चलता बालक माँ का चीर खींचता है इतनी ही ताकत रह गयी।" ऐसा लिखकर उन्होंने पहले प्रकरणों में जो संकल्प किया था—अशरीरी या कि शरीर की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिमान तत्त्व की प्रतिष्ठा करना—उसे पूरा किया है। यह अशरीरी तत्त्व शरीर से ज्यादा बलवान है—उन्होंने इतना ही सिद्ध नहीं किया है, बल्कि वह शुद्ध करने और शुद्ध रहने की सामर्थ्य भी धारण करता है—ऐसी उत्तम उपमा देकर प्रदर्शित करने की उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोशिश की है; और इसी के निमित्त ही परीक्षित को पुनर्जीवित करने की कल्पना की। पर उस वक्त भी वे भूले नहीं हैं कि इस प्रभुता के पीछे भी व्यथा को विह्वलता है। यही विह्वलता कृष्ण जैसे लोकोत्तर पुरुष यमुना में नहाते हुए, राधा की याद आ जाने पर अनुभव करते हैं। वहाँ द्वारका के राजमहल में दही परोसे जाने पर उन्हें गोकुल की याद आ जाती है और थाली सरका कर उठ बैठते हैं। सन्धिवार्ता की विफलता भी इसी व्यथा का एक अंश है। सोने की द्वारका में बसाये गये सगे-सम्बन्धियों को विपक्ष में जाते देखना भी इस व्यथा का ही एक पहलू है। वे एक बार कह उठते हैं : "अर्जुन, यादवों की यह विशाल सेना एक ओर है और दूसरी ओर मैं हूँ—अकेला, संगसाथ रहित और अपने कुलजनों द्वारा परित्यक्त।" व्यास ने श्रीकृष्ण की इस वेदना को आशुकवि की वाणी में नारद के साथ के संवाद में, यादवों के पारस्परिक अन्तःकलह का उल्लेख करते हुए अपूर्व ढंग से व्यक्त की है। वहाँ श्रीकृष्ण नारद से कहते हैं—"यादवों के इस अन्तःकलह को देखकर मुझे दो जुवारी पुत्रों की माता जैसा-दुख अनुभव हो रहा है, वह न किसी की हार-जीत की इच्छा रखती है, न किसी को मना कर सकती है।" व्यथा तो महापुरुषों को मिला वरदान है, फिर वे राम हों या कृष्ण, महात्मा हों या लिंकन। व्यथा के खेत से महत्ता का पौधा ऊँचा और ऊँचा हो जाता है, फिर वह वनवास हो या स्वजनों का विश्वासघात। इसकी तुलना में गोली तो महापुरुष को मुक्तिगुटिका लगती है। श्रीकृष्ण भी इस व्यथा के खेत में पोषित पारिजात वृक्ष हैं। जन्म लेकर माता-पिता का सुख नहीं पाया, दूसरे के यहाँ पलकर जहाँ प्रेम का अनुभव किया वहाँ भी वियोग की घड़ी आयी, सेवा-भाव के कारण जिन्हें दासत्व से मुक्त कराया वहां यादव सुरामय होकर आपस में ही लड़ मरे। जिनके लिए महाभारत छेड़ा वे हिमालय में जाकर गल गये और अन्त में प्राचीन पीपल के नीचे जब देहोत्सर्ग किया तब वहाँ न राधा थी, न रुक्मिणी। हाँ, एक बात अवश्य थी कि संसार के निर्दोष लोगों का उत्पीड़न करनेवाले कंस, जरासंध या दुर्योधन भी नहीं थे। संसार निर्विघ्न बना था और पहले से अधिक आस्थावान भी। जब जब धर्म की ग्लानि होती है और पापी पुण्यात्माओं को सताते हैं तब तब अवतार होता ही है, इस आस्था के बल पर दरिद्र व्यक्ति भी महासागर में अनिष्टों के भँवरजाल में फँसी नौका लेकर ध्रुवतारे के सहारे, दिशा चूके बिना बढ़ता जाता है। और आतंक फैलानेवालों के हृदय में कंस की भाँति आशंका बनी रहती है कि किसी कोने से देवकीपुत्र विघ्नों को पारकर प्रकट होगा और हमसे हिसाब माँगेगा। पर ऐसा हिसाब माँगनेवाले महापुरुषों को जो मूल्य चुकाना पड़ता है वह है भारी व्यथा का भार। यह व्यथा राधा को है, वसुदेव को हैं, नन्द-देवकी को है और इस व्यथा का बोझ ढोते-ढोते ही नारद को 'देवर्षि' का पद मिलता है। 'विरह के अन्त में मिलन नहीं, पर विरह में ही मिलन है' यह कहने के लिए ही 'माधव कहीं नहीं हैं' के अन्तिम प्रकरण में जब श्रीकृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से मिलन होता है तब श्रीकृष्ण नारद को जीवित अवस्था में नहीं मिलते। यह अन्तभाग ही देखें : "नारद ने उस दिशा में दृष्टि डाली। अश्वत्थ के नीचे मिट्टी का एक चबूतरा था। उस पर कृष्ण बैठे थे। उनका एक पैर भूँमि का स्पर्श कर रहा था, दूसरा पैर मोड़कर घुटने पर रखा हुआ था। दूर से देखने पर उनके नेत्र मुँदे हुए लगते थे।...श्रीकृष्ण के मुख पर एक मधुर स्मित था, चेहरे पर प्रगाढ़ शान्ति थी।...कृष्ण के पास जाकर उन्होंने उनके चरणों में मस्तक झुका दिया। कितनी देर तक उन्होंने मस्तक चरणों में ही रहने दिया, पता नहीं। मस्तक पर उष्ण बूँदे गिर रही हैं ऐसा अनुभव हुआ तो नारद ने ऊपर गर्दन उठायी। कृष्ण के पैर के तलुए से हाथ की हथेली बींधकर हृदय में धँस गया तीर चमक रहा था और उसमें से रुधिर-स्राव हो रहा था।..." तीव्र विरहावस्था का अर्थ है मृत्यु और जीवन के बीच की सीमा-रेखा। नारद ने कृष्ण के पैरों पर सिर रखा तब तक वे विदेह हो चुके हैं मानो इसका ध्यान नहीं आता और भक्त को अपने रक्त से दीक्षित करना इससे बड़ा कृपा-प्रसाद कुछ और हो सकता है क्या ?

भक्ति-नम्र लोग स्पष्टीकरण नहीं माँगते, उनको तो सहज समाधान मिल जाता है। नारद को भी वह समाधान मिलता है, पर कृष्ण की वाणी से नहीं, हृदय में बह रहे रुधिर के स्पर्श से, उन्हें सुनाई पड़ता है—"नारद, युग-युग में कुरुक्षेत्र होते रहेंगे, युग-युग में यादवस्थलियों की भी रचना होती रहेगी; पर उन सभी युगों में कृष्ण भी होंगे, कृष्ण के लिए तड़पन होगी, उनके विरह में सूखनेवाले लोग होंगे और उनके तप के बल पर ही यह दुनिया टिकी रहेगी।...

अस्तु, माधव कहीं न होने के बावजूद, माधव होंगे ही और इसका श्रेय नारद को मिलेगा ही।

—मनुभाई पंचोली 'दर्शक'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युग-युग में कुरुक्षेत्र होते रहेंगे,
युग-युग में यादव-स्थलियों की भी रचना
होती रहेगी, लेकिन—
उन सभी युगों में कृष्ण भी होंगे,
कृष्ण के लिए तड़पन होगी,
उनके विरह में सूखनेवाले होंगे, और
उनके तप के बल पर ही
यह दुनिया टिकी रहेगी·····

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवकी की आठवीं सन्तान

दरवाजे पर कोई ज़ोर से टकराया। यह आँगन में आ टकराती बढ़ी हुई जमुना की लहरों की आवाज नहीं थी। नारद उठ ख़ड़े हुए। आले में रक्खा दीया उठाया। कुटी में पानी भर गया था। घुटने तक पानी में चलकर वे द्वार तक आये। दरवाजा ठेला लेकिन खुला नहीं। थोड़ा जोर लगाने पर द्वार थोड़ा खिसका। नारद सरककर वाहर निकले। हवा के तेज झकोरों से उनके हाथ का दीपक बुझ गया। अँधेरी रात में यमुना के श्याम प्रवाह में हरहराती बाढ़ की लहरें थोड़ी-थोड़ी देर बाद नारद की कुटी तक आ जाती थीं। नारद ने भौंहें सिकोड़कर देखा तो लगा जैसे कोई उनकी कुटी से अठंग कर बैठा है।

"कौन है ?" नारद ने पूछा। उत्तर नहीं मिला।

नारद ने नीचे झुककर देखा। किसी आदमी का रूखा, पहचान में न आवे ऐसा चेहरा और स्थूल काया देंखकर वे चौंके। उन्होंने उसे हिलाडुलाकर देखा। पर स्पर्श करते ही मानो बिजली गिरी हो ऐसा चौंककर वे दो डग पीछे हट गये। बाढ़ की किसी प्रबल लहर ने इस शव को कुटीर के द्वार से लगा दिया था।

मृत्यु ने द्वार खटखटाया था। उसे उत्तर देकर बाहर निक़ल आने के बाद कुटी में फिर प्रवेश करने का नारद का मन नहीं हुआ। एक ज़ोरदार लहर उनके स्थिर पैरों को लगभग डगमगा गयी। 'नारायण, नारायण' का जप करते नारद तूफ़ानी यमुना के किनारे चलने लगे।

रात्रि के अन्धकार और यमुना की कालिमा से नारद की आँखें अब अभ्यस्त हो चली थीं। प्रवाह में बहते मनुष्य, पंशु और माल-असबाब को वे त्रस्त हृदय से बहते देखते रहे।

यमुना का जल बढ़ता जाता था। नारद की आँखों में भी बहते पानी की कालिमा श्याम आकाश को कजरा रही थी। अष्टमी के चन्द्र के उदय होने में अभी विलम्ब था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद को थकान लगी। उन्होंने आश्रम में लौट जाने का विचार किया पर कुटी के द्वार से टिककर बैठी मृत्यु का स्मरण आते ही उनका समूचा शरीर काँप उठा।

मृत्युलोक के प्राणियों के पारावार वेंद जैसे इस जल प्रवाह में बहते एक वृक्ष को वे देखते रह गये। इस वृक्ष की भाँति इस देश के अन्दर जो कुछ भी इष्ट था, बहा जा रहा है। यमुना की बाढ़ जैसी ही अधर्म की बाढ़ भी उमड़ पड़ी थी। नारद ने आँखें मूँद लीं। उनका व्यथित हृदय चीत्कार कर उठा।

थोड़ी देर बाद ऐसा लगा, जैसे बाढ़ थम गयी हो। यमुना के दोनों किनारों पर बाढ़ के जल के स्थान पर रेत निकल आयी थी। नारद आँखें मींजकर देखते रहे। तारों के प्रकाश में रेत की चमक देखकर उन्हें विस्मय हो रहा था। अभी बाढ़ की हरहराहट सुनाई दे रही थी। दोनों ओर मानो जल की प्रचण्ड दीवारें खड़ी हो गयी थीं। सामने के किनारे से एक मध्यवय पुरुष सिर पर एक टोकरा रखकर आ रहा था। नारद भी उस आ रहे व्यक्ति की ओर आगे बढ़े। दोनों ओर हू-हू करती पानी की विराट दीवारों के बीच चलने का यह अनुभव नारद के लिए एकदम नया था। आकाश-मार्ग से वैकुण्ठ जाते समय हवा की दीवारें उन्होंने देखी थीं। पर प्रचण्ड वेग से खलबलाते जल की ऐसी दो दीवारों का एक दूसरे से जुड़े बिना इस प्रकार टिके रहना, उन्होंने पहली ही बार देखा था। दोनों ओर देखते हुए कुछ विस्मय और कुछ भय से चल रहे नारद उस टोकरेवाले आदमी से बस टकराते-टकराते बच ही गये। वह आदमी कुछ जल्दी में था। नारद भी पानी की दीवारें टूट जायें उससे पहले सामने किनारे तक पहुँचना चाहते थे।

नारद ने सामने किनारे पर पैर रक्खा ही था कि तत्काल ही आँधी में जैसे मकान गिर जाते हैं, उसी प्रकार पानी की दीवारें टूटकर एक दूसरे से मिल गयीं। एक बार फिर पागल प्रवाह बह चला। नारद को चिन्ता हुई उस टोकरेवाले आदमी का क्या हुआ होगा ? उन्हें प्रतीत हुआ कि अवश्य ही वह इस प्रवाह में बह गया होगा। फिर शायद टोकरेवाला तैरकर निकल आया हो, यह भी सम्भव है।

इस किनारे मथुरा नगर बसा था। इस समय अष्टमी के चन्द्रमा के प्रकाश में सारा शहर प्रगाढ़ निद्रा में सोया दिखता था। परन्तु नारद को आश्चर्यचकित कर रहा था नगर-दुर्ग का खुला द्वार और वहाँ बैठे ऊँघ रहे प्रहरी।

वातावरण में घहराती निद्रा की झलक थी। नारद को लगा कि उन्हें भी नींद आ जाएगी। मकान सो रहे थे। रास्ते निश्चेतन पड़े थे। नारद को सहसा ही ध्यान आया कि जल्दबाज़ी में वे पादुका पहनना ही भूल गये थे। अभी तक जल और कीचड़ भरी धरती में उनके पाँवों को जिनका अभाव नहीं अखरा था, वही पादुकाएँ यहाँ नगर के रास्ते पर तुरन्त ही याद आ गयीं।

नगर को चीरते नारद आगे चले। सब कुछ शान्त था। ब्रह्माण्ड की वीणा भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानो घड़ी भर को सो गयी थी। नारद को अपनी वीणा याद आयी। सम्भव है कि वाढ़ में कुटी वह जाय और उसके साथ वीणा भी वह जाय। तो उसके तार पर उनके द्वारा अन्तिम बार झंकृत किया शब्द 'नारायण' अभी तक गुंजित होगा या फिर वह वीणा-नाद अब नीरव हो गया होगा ?

महल छोड़ वे आगे बढ़े। सो रहे सन्तरियों द्वारा रोक-टोंके बिना वे कारावास के द्वार तक आये। तब उस बुलन्द वन्द द्वार से एक आदमी निकल सके ऐसी छोटी खिड़की उन्होंने अधखुली देखी। अन्दर कूदने से पहले उन्होंने अन्दर झाँककर देखा। कदाचित् कोई सन्तरी भाला फेंके तो ? पर सन्तरी तो भाला टिकाये सो रहे थे। नारद ने कारावास में प्रवेश किया।

कोई राजमहल के शयनकक्ष में प्रवेश करे और चन्दन की लकड़ी के पलंग पर ठण्डा पंखा डोल रहा हो और आँखों में नींद घिर आने लगे ऐसी अनुभूति नारद को हो रही थी। नारद के नेत्र भारी हो गये। कारावास के प्रांगण में चारों ओर दीवारें थीं, ऊपर खुला आकाश था। नारद ने ऊपर देखा।

चन्द्रलोक गये बरसों बीत गये थे, पर मानो इस कारण मीठा उलाहना दे रहा हो ऐसा चन्द्रमा देखकर नारद थोड़ा मुस्कराये। चन्द्र से दृष्टि मिलते ही नारद आँगन में बैठ गये और आँखों-आँखों में उससे बातें करते-करते कब आँख लग गयी, इसका होश ही न रहा।

सबेरा हुआ। मानो सब कुछ बदल गया था। नारद को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने गरदन हिलायी, सारा वातावरण मानो डोल रहा हो, ऐसा उन्हें लगा। वे स्वप्न नहीं देख रहे थे, पर सचमुच ही मथुरा के कारावास में पहुँच गये थे। खम्भे से अटककर बैठे-बैठे कब आँख लग गयी इसका ध्यान ही न रहा। सन्तरी सावधान होकर पहरा दे रहे थे। प्रांगण में सेवकों की आवाजाही दिखाई पड़ रही थी। एक कोने में टोकरा पड़ा था। न जाने क्यों, रह-रहकर नारद उसी टोकरे को देखते जा रहे थे। वे उठे और उस टोकरे के पास गये। उसमें थोड़ा-सा पुआल बिछा था। एक मोरपंख भी उसमें पड़ा था। नारदजी ने वह मोरपंख उठा लिया। इस टोकरे में उनके प्राण क्यों उलझते जा रहे हैं, यह नारद को समझ में नहीं आया। हाथ में लिये मोरपंख को प्रभात के उजियाले में वे एकटक देखते रहे। उसमें के नीलहरित रंग मानो मोरपंख में से निकलकर सारे वातावरण में फैल रहे हों, ऐसा उन्हें लगा।

कोई ज़ोर से पैर पटकता आ रहा था। राह में आये किसी सेवक को उस आदमी ने उठाकर एक ओर फेंक दिया हो, ऐसी आवाज़ आयी। उस सेवक का आर्तनाद और भारी पदचाप ! नारद ने मोरपंख कमर में खोंसा और कदम पास आयें इसकी प्रतीक्षा करने लगे।

"नारायण", नारद ने कंस से कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रुद्ध और उन्मत्त कंस ने ऊपर देखा। नारद को देखते ही वह कुछ होश में आया। उसने अपने आप पर काबू किया और कहा, "आप आ ही गये।"

"हाँ महाराज। मुझे देवकी की आठवीं सन्तान के दर्शन करने हैं !" नारद ने कहा।

"देवकी की आठवीं सन्तान ? किस ओर से नारद ?" कंस ने पूछा और खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"क्यों महाराज ?" वर्षों पूर्व अपने ही द्वारा पूछे गये प्रश्न से कंस द्वारा किये गये प्रत्यावर्तन से नारद को विस्मय हुआ।

"यह सामने की दीवार देख रहे हैं, देखते हैं न ? इसकी अन्दर की ओर मैंने देवकी की सन्तानों को पछाड़ा है। उन कोमल लहुओं के छींटे हर बार मेरे मुँह पर आकर पड़े हैं। आज देवकी की आठवीं सन्तान··नारद, वह तो हवा की पुतली थी।"

"हवा की पुतली ?" नारद को आश्चर्य हुआ।

"हाँ हवा की पुतली और तिस पर से वाचाल।" मानो अपने ही भीरु हृदय को हिम्मत देने के लिए ही कंस ने अट्टहास किया। "मैंने उसे दीवार से पछाड़ा तो वह छिटक-बिखरकर हवा हो गयी, बोलने लगी··कंस तेरा काल पैदा हो चुका है"··कंस का चेहरा विवर्ण हो गया। वह दीन बनकर नारद के हाथ थामकर कहने लगा, "आपको पता है नारद, वह कहाँ जन्मा है ?"

नारद ने सिर हिलाया !

कंस मानो मन-ही-मन बात करता हो ऐसे बोला, "वह हवा की पुतली बोली थी ? या फिर देवकी ही ऐसा बोली होगी ? नारद, आपको क्या लगता है ?"

कंस को कारावास में जो कुछ घटित हुआ था, वह याद आया। बालिका हाथ में से छूटी और सामने की दीवार पर पछाड़ खाने के बदले चिड़िया की तरह फुर्र से उड़ गयी उसकी विस्फारित आँखें ऊपर देखती रह गयीं। वह स्वप्न था कि सत्य ? स्वयं जिसने जन्मते ही अपने को मरी हुई मान लिया था उस कन्या ने नन्ही मानव-देह त्याग कर विराट देह धारण कर ली, उसका वर्ण बादलों से आच्छादित सन्ध्या जैसा था। मेघ जैसी ही गम्भीर आवाज में वह बोली थी—

'हे कंस, तूने अपने स्वयं के नाश के लिए मुझे एकदम ऊँचे उछालकर दीवार पर दे मारा है, मेरा वध करने की इच्छा की है, इसलिए तेरे अन्त समय में शत्रु जब तुझे खींचकर पटकेगा तब मैं अपने हाथों से तेरी देह को चीरकर गरम-गरम लहू का पान करूँगी !

मानो अभी इसी क्षण अपना लहू कोई चुल्लू में भर-भर कर पी रहा है ऐसी प्रतीति कंस अनुभव कर रहा था। उसका शरीर विवर्ण हो गया था। उसने नारद की ओर देखकर कहा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"देवर्षि, सच कहिये, क्या स्त्रियों की कोख से पक्षी पैदा होते हैं ? क्या वे हाथ में से छूटते ही उड़ जा सकते हैं ? क्या नवजात शिशु आदमी का रक्त पीने की बात कर सकते हैं ?"

नारद कंस की ओर देखते रह गये। जिसकी तड़प से आर्यावर्त काँपने लगता था, उस कंस को काँपते देखकर उन्हें आनन्द आया। प्राणिमात्र के लिए अपार अनुकम्पा धारण करते देवर्षि ने कहा, "महाराज, मथुरा के बाजार में तरह-तरह की पुतलियाँ मिलती हैं, बोलती हुई भी, न बोलती भी, तो इससे डरते क्यों हैं। देवकी की आठवीं सन्तान हवा की पुतली थी, यही न !"

"हाँ। और दीवार पर पछाड़ी तब उसकी रक्त की धारा मुझ पर नहीं गिरी, वह तो छिटक गयी, बिखरकर हवा हो गयी। मानो यह समूची हवा ही उसका रक्त हो। मेरा समूचा तन रक्त से नहा गया है। नारद, मेरी साँस में लहू खिंचकर आ रहा है। मेरे निश्वास में लहू निकल रहा है। रोम-रोम में लहू का गीला, गरम स्पर्श मुझे अकुला रहा है। नारद···नारद···" कहते हुए कंस गिर गया।

सामने की दीवार की जाली में से चार दयार्द्र आँखें झाँक रही थीं। "देवकी की आठवीं सन्तान कहाँ है ?" नारद पूछ बैठे और हवा की लहर उनसे लिपट गयी। उसमें से कोई एक आवाज मुखर हो रही थी। 'कंस का काल तो पैदा हो चुका है। पर वह मथुरा के कारागार में नहीं है।' तब वह कहाँ है··· ?

नारदजी, आपको पता है ?

मुद्रा की आँख में उमड़ने के लिए घिर आये आँसू रुक गये। मुद्रा के होंठ भिंच गये। उसके चेहरे की नसें खिंच गयीं। उसके गौर बदन पर लालिमा छा गयी।

प्रद्योत को मुद्रा का यह रूप एकदम नया लगा। मुद्रा की आँखें देखकर वह छला-सा रह गया। उसने सहमी आवाज में कहा, "मुद्रा !"

मुद्रा तो मानो इस लोक के वातावरण से कहीं दूर चली गयी थी। इस समय तो वह अपनी देह में भी नहीं थी। उसने आँख में डबडबा आये आँसू पोंछ दिये।

प्रद्योत ने पुनः एक बार उसका नाम लेकर बुलाया। पर वह तो कोई और ही नाम सुन रही हो ऐसे बैठी रही। वह छत की ओर देख रही थी। उसकी दृष्टि छत को चीरकर कहीं किसी अगम्य दुनिया को अपने आप में समाये ले रही हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा प्रद्योत को लगा; उसने जोर से कहा, "मुद्रा, तू सुन नहीं रही है ?"

"नहीं," मुद्रा ने फिर एक बार कहा। "मैं अब बोले हुए शब्द नहीं सुनती, सुनना चाहती भी नहीं।"

"मुद्रा, तू मेरी स्थिति समझ," प्रद्योत ने कहा।

"आपकी स्थिति ? अपनी पत्नी को जो दाँव पर लगा सके उसकी भी कोई स्थिति हो सकती है क्या ? मैं आपकी पत्नी नहीं हूँ ?"

"मैंने तुझे दाँव पर लगाया तब तो थी न !"

"उससे पहले थी। आपने मुझे दाँव पर लगाया उसी क्षण मेरे पत्नी-रूप का अस्तित्व मिट गया। मैं वस्तु बन गयी। आपका घर, आपके अलंकार, आपकी स्वर्ण-मुद्राएँ और आपकी यह मुद्रा। ठीक है अब संकर्ण आवे तब उसे यह मुद्रा सौंप दीजियेगा।"

"अर्थात् ?"

"आप आदमी को तो नहीं सौंप सकते, हाँ वस्तु सौंपना हो तो सौंपें। मैं अपनी देह से जीव को खदेड़ दूँगी। फिर आप संकर्ण को उसे सौंप दीजियेगा।"

"मुद्रा, मैं संकर्ण को समझाऊँगा।"

"आप समझायेंगे ? आप समझते हैं क्या कि अब आप किसी को भी समझा सकेंगे ?" मुद्रा ने कहा। अब उसके चेहरे पर तनाव का स्थान गर्व ने ले लिया था। उसकी आँखें चमक उठी थीं। उसने एक-एक शब्द पर बल देते हुए, धीमे से कहा, "इस घर से संकर्ण के घर तक की राह में यमुना भी आती है।"

"मुद्रा···" प्रद्योत को मुद्रा क्या कहना चाहती है, इसका ध्यान आ गया।

"···और उस यमुना में बाढ़ भी आयी है। सुना है कितनी ही पुत्रवती स्त्रियाँ उसमें बह गयी हैं। मैं तो गोद-विहीन हूँ, रिक्त हूँ। अतः तुरन्त डूब जाऊँगी।"

प्रद्योत उठ खड़ा हुआ, "मुद्रा !···"

"मेरे निकट न आइयेगा।" मुद्रा ने कहा।

"मैं तेरा पति हूँ, मुद्रा।"

"थे। आपने मुझे दाँव पर लगाया उससे पहले। इस समय तो आप हारे हुए जुआरी हैं। मैं आपकी पत्नी तो नहीं ही हूँ, आपकी वस्तु भी नहीं हूँ। मेरी देह को मुखाग्नि भी न दीजियेगा।"

"मुद्रा, तू यह क्या बक रही है ?" प्रद्योत ने कहा।

"आप जो सुन रहे हैं वही। वहीं बैठें, मेरे पास आने का प्रयत्न किये बिना बैठे रहें। संकर्ण की राह देख रही हूँ। संकर्ण आयेगा, इस घर की सारी सम्पत्ति वह ले जायेगा और मुझे भी ले जायेगा। सही है न ?"

"मैं होश में नहीं था, मुद्रा। एक बाज़ी मेरी आयेगी तो मैं सबसे पहले तुझे ही प्राप्त कर लूँगा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मुझे प्राप्त किया तब भी न रख सके, अब किस तरह से प्राप्त करोगे ?" मुद्रा हँसी। उसके हास्य का धिक्कार समूचे कक्ष में फैल गया।

हँसने के बाद उसे लगा कि उसके होंठ थक गये हैं। पहली ही बार होठों को हँसने से थकान लगी थी, उसकी जीभ लटपटा रही थी, वह समझ नहीं पा रही थी कि यह सब क्या हो रहा है।

पति प्रातः घर आया तो कहा कि मैं जुए में तुम्हें हार आया हूँ। जुए में इस प्रकार स्त्रियों को भी दाँव पर लगा देना, अभी हाल ही में आर्यावर्त के पुरुषों की चाल बन गयी थी। मुद्रा तो यह सुनकर ही बेसुध हो गयी थी। स्त्री हमेशा इसी स्थिति में रक्खी जायेगी क्या ? अष्टमी की रात का जुआ, कौन किसे हार गया ? मुद्रा माने मुद्रा की देह नहीं। शायद संकर्ण को देह की जरूरत होगी तो वह उसे दे दी जायेगी। पर देह छोड़ी कैसे जाय ?

मुद्रा को कोई राह नहीं सूझ रही थी। वह गुमसुम बैठी थी। अचानक किसी ने दरवाजा खटखटाया।

कौन होगा, इसका खयाल दोनों ही को आ गया, पर दोनों में से कोई दरवाजा खोलने के लिए उठा नहीं। आनेवाली विपत्ति को इस प्रकार कितनी देर तक टाला जा सकेगा, यही विचार शायद दोनों ही के मन में था।

संकर्ण ने एक बार फिर जोर से द्वार खटखटाया। वह उन्मत्त होकर कुछ बड़बड़ा रहा था। 'देवकी की आठवीं सन्तान आयी, क्या आयी, पता है—हवा की पुतली !' और वह ठहाका मारकर हँसा। उसकी हँसी की आवाज मुद्रा के आसपास स्थापित पारदर्शक पट को भेद न सकी। मुद्रा केवल उन्हीं शब्दों को सुनती रही—'देवकी की आठवीं सन्तान !'

बाहर संकर्ण अभी द्वार पर हाथ पटकते हुए कह रहा था, "मित्र, केवल पुतली, हवा की पुतली, हवा में बिखर गयी, देख यह रही"—कहकर वह हवा को मुट्ठी में भरने की चेष्टा करने लगा।

प्रद्योत ने दरवाजा खोला। संकर्ण नशे में चूर था, उसे तनिक भी होश नहीं था। 'देवकी की आठवीं सन्तान...' वह अभी भी बड़बड़ा रहा था।

इन शब्दों में मानो चमत्कार समाया था। ये शब्द उसके समूचे दुर्भाग्य को पिघला डालनेवाली अग्नि जैसे बनकर वातावरण में फैल रहे थे। मुद्रा को आकाशवाणी याद आयी। धर्म की प्रतिष्ठा करने हेतु भगवान विष्णु अवतार धारण करनेवाले हैं। देवकी की आठवीं सन्तान के रूप में वे कहाँ होंगे ? वे यदि कंस के हत्यारे हाथों से उबर जायँ तो जुए में इस प्रकार अपना स्त्रीत्व खोनेवाली नारी को शायद कोई तारनहार मिल जाय। मुद्रा को अब इन शब्दों का नशा चढ़ने लगा था। वह गूँजने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगाः 'देवकी की आठवीं सन्तान'। इस गुंजार ने उसकी स्तब्ध देह को गति प्रदान की। वह खड़ी हो गयी। साड़ी को कसकर उसने कमर पर खोंसा। दरवाजे पर संकर्ण को स्थिर खड़ा रखने के प्रयास में चेष्टारत प्रद्योत को हाथ से दूर ढकेलकर वह बाहर निकली।

"मुद्रा, कहाँ जा रही हो ?"

"दुर्ग के बाहर, शरीर के भी बाहर !" मुद्रा मानो नशे में हो, इस प्रकार बड़बड़ायी।

"दुर्ग के बाहर कहाँ जाओगी। वहाँ तो यमुना में बाढ़ आयी है।" प्रद्योत ने कहा।

"जाने दे, मित्र, दुर्ग तो बन्द है। दुर्गपाल इसे जाने देंगे तो ही तो जायेगी।" संकर्ण बड़बड़ाया। वह लड़खड़ाया और उसके साथ ही प्रद्योत भी सीढ़ी चूका और दोनों गिर पड़े।

उनका क्या हुआ यह देखे बिना मुद्रा दौड़ पड़ी। दुर्ग के द्वार के पास वह रुकी।

"मुझे बाहर जाना है !" मुद्रा ने कहा।

"बाढ़ न उतरे, तब तक कोई भी नागरिक दुर्ग से बाहर नहीं जा सकेगा। यह महाराज कंस की आज्ञा है !" दुर्गपाल ने कहा। "कंस की आज्ञा ?" मुद्रा बोली। मानो कोई शव्द सुझा रहा था, "वह तो देवकी की आठवीं सन्तान के जन्म के बाद अवाक् हो गया है, वह भला कहाँ से आज्ञा दे सकेगा ?"

"देवकी की आठवीं सन्तान !" दुर्गपाल पर भी इन शब्दों ने जादुई असर किया।

"हाँ", मुद्रा ने कहा।

"वह जीवित है ?"

"हाँ।"

"कहाँ है ?" दुर्गपाल ने पूछा।

"इस हवा में।" मुद्रा ने उत्तर दिया।

"कंस ने उसे पछाड़ा और वह बिखरकर कण-कण में फैल गयी।"

"क्या कहती है ? देवकी की आठवीं सन्तान जन्मी है, यही न ?" दुर्गपाल ने पूछा।

"हाँ, इस हवा के कण-कण में व्याप्त देवकी की आठवीं सन्तान की तुझे आन है, दुर्ग के द्वार खोल दे।" मुद्रा बोली। उसकी जीभ पर देववाणी बसी हो ऐसी खनक समूचे वातावरण में छा गयी।

"खोलता हूँ," दुर्गपाल चाभी ढूँढ़ने लगा और मन-ही-मन बड़बड़ाने लगा—'देवकी की आठवीं सन्तान, हवा में बिखरी सन्तान...।' और एक आदमी निकल सके इतनी खिड़की खुली। मुद्रा उसमें से बाहर निकल गयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्ग के बाहर कोई भी नहीं था। दुर्ग से कुछ ही दूर पर यमुना बह रही थी। यमुना की बाढ़ अभी कुछ उतर गयी थी। पर उसकी आवाज अभी भी कान को बहरा कर दे ऐसी थी। वह आगे बढ़ी।

अचानक वह किसी से टकरा गयी। उसने ऊपर देखा। एक युवा तपस्वी, हाथ में वीणा लिये खड़े थे। "नारायण"—उन्होंने कहा।

"नारायण", मुद्रा बोली और फिर तपस्वी की ओर देखकर बोली, "आप कहीं नारद तो नहीं हैं ?"

नारदजी मन्द-मन्द मुस्कराये, पर उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। वे तो पागल जैसी इस नारी को, उसकी आँखों में छायी मस्ती को निहारते रह गये। उन आँखों में किसी की लगन दिखाई दे रही थी। यह किसकी लगन है, इसकी कल्पना नारदजी को नहीं करनी पड़ी।

मुद्रा ने पूछा, "आपको पता है देवकी की आठवीं सन्तान का जन्म कहाँ हुआ है ?"

नारद यह प्रश्न सुनकर चौंक उठे। आज प्रातः कारावास में जो वातावरण देखा था, वह उन्हें याद आ गया। एक घुटी हुई चीख और कंस की भारी पदचाप उन्हें याद आयी। कंस द्वारा कही बातें और अन्त में दयार्द्र चेहरे से पूछा प्रश्न भी उनके हृदय में उमड़ा। नारदजी ने मुद्रा की ओर देखा और कहा, "देवकी की आठवीं सन्तान ? वह तो हवा की पुतली थी !"

"मैं हवा की पुतली की बात नहीं पूछ रही हूँ", मुद्रा ने कहा। "देवकी की आठवीं सन्तान के बारे में पूछ रही हूँ। तो क्या आपको पता है कि वह कहाँ है ?"

"नहीं, क्यों ?"

मुद्रा 'नहीं' शब्द सुनने के बाद 'क्यों' शब्द कान से न टकराये इतनी दूर चली गयी थी। नारदजी विस्मयपूर्वक उसे देखते रहे। मुद्रा यमुना के प्रवाह की ओर खिसक रही थी। अब नारद को कुछ समझ में आया। उन्होंने वीणा नीचे रक्खी और मुद्रा के पीछे दौड़े। पर व्यर्थ।

मुद्रा घटती बाढ़ के तीव्र प्रवाह में विलीन हो चुकी थी। यमुना के प्रबल प्रवाह में उसकी साड़ी हवा में फरफरा रही थी। उस फरफराहट में से शब्द खिल रहे थे और ये शब्द नारदजी तक पहुँच रहे थे।

"देवकी की आठवीं सन्तान, आपको पता है, वह कहाँ जन्मी है ?"

नारदजी असहाय बने यमुना के बहते प्रवाह को देखते रहे। फिर लौटकर वीणा उठा ली। बहते प्रवाह के साथ ताल मिलाकर उसमें से सुर प्रकट होने लगे। एक सुर प्रकट हुआ। उसका वर्ण गौर था, मुद्रा के वर्ण जैसा। उसकी ध्वनि उत्कट थी, मुद्रा के प्रश्न जैसी !

नारदजी ने बहती यमुना के वेग से दौड़ रहे आकाश को देखा। आकाश में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यमुना के बहाव जैसी बादलों की गति देखी। आसपास का सन्नाटा देखा। बारम्बार पाश की भाँति पाँव में लिपटते मुद्रा के प्रश्न को भी उन्होंने देखा और वे चीत्कार कर उठे, "प्रभु मुझे बतायें देवकी की आठवीं सन्तान का जन्म कहाँ हुआ है ?"

यमुना की गोद से

यमुना के प्रवाह में अनेक निश्चेतन शव बहकर आये थे। किनारे लगी हुई इन देहों में एक युवती की अचेत देह भी थी। दूर से उस युवती का चेहरा देखकर वृषभानु पर जैसे बिजली गिरी हो, इस तरह वे चौंक गये। तेज कदमों से रास्ता तय कर वे इस देह के पास जा पहुँचे। उसके ललाट पर हाथ रखा। माथा गरम था। ध्यान से देखा तो युवती की साँस भी बहुत धीमे-धीमे चल रही थी। वृषभानु ने सेवकों को उसे घर पहुँचाने की आज्ञा दी।

गोकुल में आज उत्सव था। इन्द्रयज्ञ से प्रसन्न हुए स्वर्गाधिपति ने आवश्यक मेघ भेज दिये थे। यमुना की बाढ़ ने फलदायक कीचड़ से धरती को रसवन्ती बनाया था। गोपकुल के नायक नन्द के यहाँ पुत्र जन्म हुआ था।

उत्सव से पागल बने सब लोग नाचने-गाने में मग्न थ। तब वृषभानु आदि गोपनायक, बाढ़ से जिनका नुकसान हुआ था उनकी कुशलक्षेम लेने और बाढ़ में बहते प्राणियों को, उबारने योग्य हों तो, बचाने में व्यस्त थे।

वृषभानु के प्राण तो उस अचेत युवती में लगे थे। पर नन्द अभी आये नहीं थे। बाढ़ से लोगों का बहुत नुकसान हुआ था। किनारे पर स्थित कितने ही अभागे बह गये थे। पशुधन तथा सभी सम्पत्ति खो बैठे इन लोगों को वृषभानु आश्वासन दे रहे थे। उन्होंने दूर से नन्द को आते देखा।

"नन्द, आ गये। बधाई हो। बेटा और माँ कुशल से तो हैं न ?" वृषभानु ने पूछा। "हाँ", नन्द ने कहा। फिर वे आगे कुछ कहना चाहते थे, पर भावों के प्रवाह ने शब्दों को अवरुद्ध कर दिया।

"कैसा है कन्हैया ?" वृषभानु ने प्रश्न किया। नन्द ऊपर झुके आकाश की ओर ताकते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "वृषभानु, यह आकाश देखा ! इसका चमकता वर्ण इस बालक में समाया है। मैंने धाय के पास उसे देखा, तो लगा कि जैसे आकाश इस नारी की गोद में उतर आया है।" नन्द कुछ देर रुके फिर कहा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"और इस समय आकाश की ओर देखता हूँ तब लगता है जैसे यह बालक सारे आकाश में व्याप्त हो गया है।"

वृषभानु भी वर्षा से धुले आकाश को देखते रहे। आज आकाश मानो नित्य की अपेक्षा कुछ अलग लग रहा था। यमुना में जैसे आकाश प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार आकाश में यमुना प्रतिविम्वित हो रही हो, ऐसा भाव उनके मन में आया।

वृषभानु को वह अचेत युवती याद आयी। उन्होंने नन्द से कहा, "नन्दजी, मैं जरा घर हो आऊँ। आप भी थोड़ा चक्कर मारकर आ जाइये। एक लड़की जीवन-मरण के बीच झूलती मिली है। जरा देख आऊँ कि वह बच गयी कि नहीं ?"

वृषभानु घर पहुँचे तब वैद्यजी औषधि घोटकर उचित मात्रा में अचेत युवती के होठों के बीच उड़ेल रहे थे। दो गोप युवतियाँ उसके पैर के तलुवे पर घी मल रही थीं।

"जी जायेगी न ?" वृषभानु ने चिन्ता भरे स्वर में पूछा।

"गोकुल का अमृत स्पर्श हो उसके बाद मृत्यु किसी को छू भी सकती है क्या ?" वैद्य ने श्रद्धा से कहा, "बस अभी आँख खोलेगी—देखियेगा।"

अचेत युवती थोड़ा कुनमुनायी। "बेटी···" वृषभानु बोल उठे। उनके स्वर में ऋजुता थी। इस अचेत युवती का चेहरा देखकर वृषभानु को किसी की याद आ रही थी। उनकी एक पुत्री वर्षों पूर्व मर गयी थी, मानो उसी का चेहरा इस युवती की देह पर जड़ दिया गया हो। यह युवती भी अधिकतम सोलह-सत्रह की होगी। कदाचित् उनकी पुत्री ने यह नया अवतार तो नहीं लिया है ?

अभी युवती होश में नहीं आयी थी। पर अब शरीर में चेतना लौटकर आती जा रही थी। वह थोड़ी-थोड़ी देर में सुगबुगाती थी। उसके होंठ अभी कुछ गुनगुनाते थे। पर उन अस्पष्ट उच्चारों में से कुछ बूझा नहीं जा सकता था।

अचेत युवती का क्या हुआ, इसकी जानकारी प्राप्त करने आये नन्द को देखते ही वृषभानु ने उनसे पूछा, "नन्दजी, देखिये तो इसका चेहरा किसके जैसा है ?"

नन्द एकटक उसकी ओर देखते रहे। जो देख रहे हैं उस पर विश्वास नहीं होता, ऐसे भाव उनके चेहरे पर अंकित हो रहे थे। फिर बोले, "मानो अपनी राधा ही हो, है न !"

"हो क्या, है ही। वैसी ही नाक, वही नक्शा। इसके गाल पर चोट का निशान देखा। ठीक वैसा ही जैसा राधा को था, है न !" वृषभानु ने कहा।

नन्द घूर-घूरकर सचेत होते हुए हिलडुल रही और इस समय गोप कन्या के वेश में सज्जित उस युवती को देखते रहे और बोले, "सचमुच वृषभानु, तुमको तो मानो यमुनाजी ने पुत्री वापस लौटा दी है। हमने सोलह वर्ष पूर्व उसकी अस्थियाँ इसी नदी में विसर्जित की थीं। यमुना ने उनसे पुनः राधा गढ़कर इतनी बड़ी की होगी।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"उसकी माँ होती तो कितनी प्रसन्न होती !" वृषभानु ने निःश्वास छोड़ा, वे इस समय अतीत में खो गये थे।

"माँ ने ही शायद वृद्ध पिता का ध्यान रखने इसे भेज दिया है।" नन्द ने कहा।

"चमत्कार जैसा लगता है। कौन है यह कन्या ? कहाँ से बहकर आयी है ?"

कमल जैसी आँखें खोलकर उस कन्या ने आसपास देखा। किसी अलौकिक जगत् में उसकी आँखें खुली हों ऐसा उसे लगा। अपने आसपास झाँक रहे अपरिचित चेहरे उसने देखे। तभी, जैसे उसकी दृष्टि को थकान लगी हो, इस प्रकार उसकी आँखें फिर मुँद गयीं।

गोपकन्याएँ उसके हाथ पर औषधि का लेप करके उसके शरीर में ऊष्मा लाने की चेष्टा कर रही थीं।

युवती ने फिर आँखें खोलीं। वृषभानु उन आँखों में विद्यमान गहरायी की ओर, पागलों की भाँति घूरते रहे। फिर नन्द का हाथ खींचकर कहा, "नन्दजी देखिये तो, वही है, वही आँखें !"

"बिटिया", नन्द ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम···" वह युवती जैसे कुछ याद करने की चेष्टा कर रही हो इस प्रकार उसने आँखें मूँद लीं। थोड़ी ही देर बाद वह मन-ही-मन बड़बड़ायी।

"मेरा नाम···"

"बिटिया, तुम यमुना में बहकर यहाँ आयी हो। तुम कहाँ की रहनेवाली हो ? तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे लिए क्रन्दन करते होंगे।" फिर उस युवती के गले में पड़े मंगल-सूत्र को देखकर नन्द ने कहा, "तुम्हारा पति तुम्हें ढूँढ़ता फिरता होगा। अपना नाम-पता तो बताओ !"

युवती ने आसपास देखा। वह अचेत थी, उस समय गोपियों ने उसे जो वस्त्र पहनाये थे, उन पर उसकी नजर पड़ी। फिर उसने वृषभानु की ओर देखा। नन्द की ओर देखा। वैद्य की ओर दृष्टि डाली और गोपकन्याओं को देखा। फिर लौटकर उसकी दृष्टि वृषभानु पर जा टिकी।

वृषभानु स्थिर नजर से उसे देख रहे थे। उस नजर में से टपकती वत्सलता उस युवती को गद्‌गद बना रही थी। वृषभानु की आँखों में विद्यमान करुणा उसने कभी देखी थी। कहाँ देखी होगी ? इस जन्म में या जन्मजन्मान्तर पूर्व ? इस आदमी के चेहरे पर या फिर ऐसे ही किसी और चेहरे पर ? वह वृषभानु को अपलक निहार रही थी— मानो वह उन आँखों से झरती वत्सल करुणा का पान कर रही हो, इस प्रकार।

"बेटी, राधा, मुझे नहीं पहचानती। मैं तेरा पिता हूँ—वृषभानु।" वृषभानु ने इन शब्दों में हृदय निचोड़ दिया। ये शब्द कुछ विस्मय और कुछ अपरिचय में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भटकती युवती के हृदय में सीधे उतर गये। उसने वृषभानु की ओर देखा, थोड़ा स्मित किया। वृषभानु बोल उठे–

"नन्दजी, आपने देखा न ! वही स्मित। राधा भी ऐसे ही हँसती थी।"

नन्द भी अतीत में खो गये थे। न जाने कितने बरस बीत गये उस बात को। वृषभानु के घर आते-जब एक भोली, प्यारी-सी लड़की उनसे लिपट जाती और जसोदा माँ के प्रति तो उस लड़की का इतना लगाव था कि सारा गोकुल कहता कि राधा की असली माँ तो जसोदा ही है, वृषभानु की पत्नी ने तो केवल उसे जन्म दिया है।

नन्द अतीत में विद्यमान उस मुग्ध चेहरे को साकार करने की चेष्टा कर रहे थे। किसी चित्रपट की नदी में अचानक बाढ़ आ जाय और अविश्वसनीय हद तक परिस्थिति बदल जाय, ऐसा ही इस समय लग रहा था। वह लड़की गुजर गयी, तब नन्द और जसोदा इतना रोये थे कि वृषभानु और उनकी पत्नी ने दोनों को सान्त्वना दी थी।

इस युवती के होंठ पर खेलते स्मित को देखकर नन्द को उस लड़की का स्मित याद आया। उसके गोरे गाल पर इस स्मित से ऐसे ही गड्ढे पड़ते थे।

गोपकन्याएँ बोल उठीं–"नन्द बाबा, क्या यही राधा है ?"

क्या उत्तर दें, नन्दजी को नहीं सूझा, उन्होंने फिर से पूछा, "बिटिया, तेरा नाम क्या है यह तूने नहीं बताया !"

पुनः एक बार अकुलाहट की रेखाएँ उस युवती के चेहरे पर खिंच आयीं। उसके सुन्दर चेहरे पर लाली छा गयी। उसकी आँखों में शून्यता छलक रही थी।

बाहर गोपवृन्द की चिल्लपों सुनाई दे रही थी। वे 'नन्द के घर आनन्द भयो रे', 'जय कन्हैयालाल की' जैसे नारों द्वारा नन्द के यहाँ हुए पुत्र-जन्म की खुशी का उत्सव मना रहे थे।

"नन्दजी, अब आप थक गये होंगे।" वैद्यजी ने कहा, "और आपका लाल भी एक बार मुँह देखकर पिताजी गये तो ग़ये, फिर क्यों न दिखे, ऐसी चिन्ता कर रहा होगा।"

"किसका लाल ? देवकी का ?" वह युवती अचानक बोल उठी। ये शब्द बोलते हुए उसे लगा जैसे कुछ याद आ रहा है। उसने दाँत पीसकर पास आ रही स्मृति की दुनिया को पीछे ढकेल दिया और हँस पड़ी–"ना, उसे तो हवा की पुतली पैदा हुई थी !"

"किसे ? तू किसकी बात कर रही है ? तू कौन है, बिटिया ?" वृषभानु ने चिन्तित स्वर में पूछा।

"किसे पुत्र पैदा हुआ है ?" उस युवती ने पूछा। वृषभानु के प्रश्न का उत्तर उसने जानबूझकर टाल दिया, ऐसा लगा।

"जसोदा मैया को।" एक गोपकन्या ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाहर अभी 'नन्द के घर आनन्द भयो रे' की गूँज चालू थी।

"बिटिया, तेरा नाम क्या है ?" नन्द ने पूछा।

"मेरा नाम ?" उस युवती ने पूछा और फिर कहा, "अभी ही तो पिताजी ने बताया न, राधा।"

"राधा-बिटिया।" वृषभानु को लगा जैसे उनके हृदय के सभी बाँध टूट जायेंगे। उन्होंने नीचे झुककर राधा का सिर चूम लिया। "नन्दजी, आपने सुना ! लड़कियो जाओ, गोकुल में खबर कर दो कि वृषभानु की बेटी राधा यमुना की गोद से जैसी थी, वैसी ही वापस आ गयी है।"

"पिताजी !" राधा ने बैठने की चेष्टा की।

"तू लेटी रह, बिटिया। तुझे अभी कुछ दिन पूरा-पूरा आराम करना पड़ेगा। तेरा शरीर अभी ठण्डा है।" वैद्य ने कहा।

नन्द आँखें फाड़कर जो कुछ देख रहे थे, उस पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे। आज का दिन उनके लिए सुखद चमत्कारों का दिन था। सबेरे सूर्य की पूजा करके वे वापस लौटे तब दाई ने पुत्र का मुखदर्शन कराया। मेघश्याम देह की वह अनन्य कान्ति देखकर नन्द स्तब्ध हो गये थे। उन्होंने दाई से पूछा, "यही मेरा लाल है ?" नन्हा-सा बालक अपनी छोटी-छोटी आँखों से नन्द को देख रहा था। नन्द को उस बालक को खिलाने का मन हुआ, पर निषेध के कारण वे पुत्र का स्पर्श नहीं कर सकते थे। नन्द का गोद लेने को बढ़ा हाथ वापस आ गया, शायद इस कारण ही पुत्र ने रोना शुरू किया। उस रुदन के स्वरों में नन्द को कोई अलौकिक नाद सुनाई देने लगा। उनका मन पुकार उठा, "नन्द, तुम सौभाग्यशाली हो। पर यह कोई मानुषी अंश नहीं है। शायद कोई देवांशी बालक तेरे आँगन में भटककर आ गया है। उसके मुख-मण्डल के चारों ओर फैली आभा तो देख ! कभी भी किसी बालक के चेहरे पर इतनी आभा देखी है ?"

दाई कहती थी। "नन्द बाबा, ऐसा पुत्र तो मैंने अपनी सारी जिन्दगी में कभी भी नहीं देखा। इसके घुँघराले बाल देखे न। और आँखें कैसी कि जी करता है देखते ही रहें।"

नन्द का भी जी किया कि पुत्र के सामने बैठे ही रहें। पर रोते हुए पुत्र को स्तनपान हेतु जसोदा के पास ले जाया गया। अभी नन्द जसोदा के पास नहीं जा सकते थे। वे अनिच्छापूर्वक घर से बाहर निकले और बाढ़ में जिन्हें नुकसान हुआ है, उनकी सहायता करने का विगत रात्रि को अधूरा काम आगे बढ़ाने चल पड़े।

और तभी यहाँ दूसरा चमत्कार हुआ। वृषभानु की सोलह साल पहले मृत पुत्री राधा को मानो यमुना ने वापस लौटा दिया। अभी भी उन्हें इस पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"बिटिया, तू राधा ही है न ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"नन्द बाबा, आपको कोई शंका है ?" उस युवती ने आत्मश्रद्धा के साथ कहा, "मैं अपने पिताजी की पुत्री हूँ, वृषभानु दुलारी हूँ।"

'जयतु वृषभानु दुलारी' गोपकन्याएँ बोल उठीं। अपने वृन्द में एक नयी सहेली बढ़ेगी, इस कल्पना से ये कन्याएँ फूली नहीं समा रही थीं। राधा की आँख में अपूर्व आकर्षण था—उसके होंठ, उसकी कमनीय देह और उसका गौर वर्ण।

नन्द तो मानो चमत्कार देख रहे थे। उन्होंने प्रसन्नता में अन्यमनस्क बने वृषभानु को झिंझोड़कर कहा, "वृषभानु, थोड़ी देर पहले तुमने मुझे पुत्र-जन्म की बधाई दी थी। अब मेरी बधाई स्वीकार करो अपनी बेटी के नये अवतार के लिए।"

वृषभानु की आँखें गीली हो गयीं। उनके होंठ फड़के, "इसकी माँ आज जीवित होती तो…।"

नन्द ने कहा, "वृषभानु मैंने अभी ही कहा न कि स्वर्ग में माँ-बेटी के बीच झगड़ा हुआ होगा कि आपके पास कौन आये और माँ ने ही इसे यहाँ भेजा होगा !"

"हाँ नन्दजी, इसकी माँ को हुआ होगा कि वह तो अब पीला पत्ता है, यशोदा के दुलारे की सेवा करने में उसकी अपेक्षा राधा अधिक उपयोगी होगी और इसी से उसने राधा को भेज दिया होगा।"

राधा बिस्तर में आँखें मूँदकर सो गयी थी। वैद्य की मात्रा का असर उसे निद्रा में डुबा रहा था। राधा के चेहरे की ओर सब लोग एक जैसी मुग्धता और विस्मय से देख रहे थे।

नन्द ने एक सेवक को बुलाकर कहा, "जा, और जाकर समूचे गोकुल में खबर कर दे कि वृषभान की बेटी राधा यमुना की गोद से वापस आ गयी है।"

वृषभानु के आँगन में मानो समूचा गोकुल उमड़ आया था। राधा की उस समय की सहेलियाँ तो अब राधा जितनी बड़ी बेटियों की माँ बन गयी थीं। वे सब आ पहुँचीं और बिस्तर में सोयी, होंठ पर सचेत होकर फीकी मुस्कान खिलाती, गोरी युवती को देखकर उनके आश्चर्य का पार न था। वे आपस में एक दूसरे से बतिया रही थीं—

"अरी रेवती, यह तो मानो राधा ही है !"

"हाँ, पर ऐसा भी होता है क्या ?"

"जो न हो जाय वह कम है। तूने नन्द के बेटे को देखा ?"

"नहीं, मुझे तो सबेरे से काम से छुट्टी ही नहीं मिली। कैसा है ?"

"चमकते नीले रंग के इस बालक को देखकर मैं तो मान ही न सकी कि यह यशोदा माँ का बेटा है। अरे हाँ, तुम देखोगी न, तो देखती ही रह जाओगी। मैं तो न जाने कब तक उसकी ओर टुकुर-टुकुर देखती ही रही। एक दिन का छोकरा, पर मानो हमसे आँख लड़ा रहा हो ऐसे देखता है।"

"आज तो वास्तव में ईश्वर गोकुल पर प्रसन्न हुए लगते हैं, मनभावन वर्षा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखियाजी के घर पुत्रजन्म और अब अपनी इस राधा का नया अवतार।"

"और देख तो बाई, हम सब तो बूढ़ी होने आयी हैं, और राधा को तो यमुना माता ने अमृत का घूँट पिलाया है। सोलह साल पहले थी, वैसी की वैसी ही है। अब हमारे साथ तो क्या खेलेगी—हमारी बेटियों के साथ खेलेगी।"

वृषभानु अपने कानों से ये शब्द पी रहे थे।

उन्होंने नन्द से कहा, "नन्दजी मुझे जरा जोर से चुटकी तो काटिये। कहीं मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ !"

सामने है वृन्दावन की राह

कंस की आँखें आकुल-व्याकुल हो रही थीं। उसने सन्देशवाहकों को जाने की आज्ञा दी। गुप्तचर चले गये तब उसने पूछा—

"अक्रूर, तुम सब लोग समझते हो कि हम डर जायेंगे ! कहाँ है देवकी का आठवाँ पुत्र, जो हमारी हत्या करनेवाला था। तुम उसे यहाँ ले आओ, फिर देखेंगे कौन किसको मारता है

"महाराज आप शान्त हो जायें। सन्देशवाहक तो तरह-तरह की कहानियाँ लाकर सुनाते हैं, लेकिन आप क्यों अकुला जाते हैं ?"

"ये किस्से नहीं हैं, हमें डराने का प्रयास है।" कंस ने कहा और उसने लम्बी साँस ली। "एक साल पहले एक बालक ने पूतना के स्तनों से जीवन चूस लिया ऐसी बात आयी थी। बालक दूध पी रहा हो तब पूतना कुदरती मृत्यु से नहीं मर सकती क्या ? उस बालक को देखकर उसका हृदय हर्ष के आवेग में बन्द हो जाय तो क्या पूतना की मृत्यु के लिए उस बालक को वीर बना दिया जाय ? हमें तो लगता है कि पूतना ने बालक को देखा भी नहीं होगा और लोगों ने कहानी गढ़ डाली।"

"महाराज, लोगों की तो आदत होती है, बात का बतंगड़ बनाने की, आप जैसे धीर-वीर पुरुष इससे अशान्त बन जायें इससे काम कैसे चलेगा।" भद्र ने कहा।

"लोग बातें भी कैसी-कैसी करते हैं। थोड़े से छोकरों ने मिलकर गाड़ी तोड़ डाली तो उड़ा दिया कि ग्वाले ने शकटासुर का वध कर दिया। थोड़े से बिगड़ैल गधों को ग्वालों की बड़ी टोली ने मिलकर बड़ी क्रूरता से मार डाला, इस किस्से को मिर्च-मसाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगाकर कहा कि धनुकासुर और उसके साथी दैत्यों को मारकर भगवान ने इस भूमि का भार उतारा है। भगवान दुनिया भर की गाड़ियाँ तोड़ने और गधे मारने के लिए ही मानो जन्म लेते हैं।" कंस ने कहा। पर उसके कहे शब्दों की गुरुता स्वयं उसको ही ग्रसने धँसी आ रही है, ऐसा उसे अनुभव हो रहा था।

"और यमुना का दह छोड़कर कालिया नाग चला गया। यह सच है न, कंस ?" एक कोमल और खनकते स्वर में पूछा गया प्रश्न समूचे वातावरण पर छा गया।

यह कौन बोला, यह देखने के लिए कंस ने द्वार की ओर मुँह घुमाया।

द्वार में प्रज्वलित अग्नि जैसे नारद खड़े थे। उगते सूरज जैसी उनकी आँखें जगमगा रही थीं। चन्द्र की किरणों जैसे श्वेत वस्त्र पर सुवर्ण अलंकार शोभित थे। उन्होंने कन्धे पर काले मृगचर्म का उपवस्त्र धारण किया था। उन्होंने, मानो अपनी सखी हो इस प्रकार वीणा को अंक में लिपटा रक्खा था। दूसरा इन्द्र आ रहा हो ऐसे धीमे और दृढ़ चरण से नारद ने कक्ष में प्रवेश किया।

"कंस, गाड़ी-गधों की बात सम्भव है सत्य न हो, पर यह कालिया नाग की बात तो सच्ची है।" नारद ने पुनः पूछा।

नारद के प्रवेश करते ही तत्काल कंस और उसके मन्त्री उठकर खड़े हो गये। नारद के प्रश्न से कंस का सिर चकरा गया। उसने येनकेन प्रकारेण पुनः धैर्य धारण किया। महामुनि को प्रणाम किया और उन्हें आसन प्रदान किया।

"विराजिये देवर्षि, मन के इस कठोर सन्ताप में आपको देखकर थोड़ी शान्ति मिलती है।" कंस ने कहा।

"शान्ति तो, सब कहते हैं कि मथुरा से कुछ योजन दूर स्थित एक ग्वाले के निवेश में दो बालकों को देखकर अनुभव होती है, कौन हैं ये दो बालक, कंस ?" नारद ने प्रश्न किया।

अक्रूर स्तब्ध बने देवर्षि की ओर देखते रहे। भद्र भी इस प्रश्न से विस्मित होने लगे। कंस थोड़ी देर अकुलाया। फिर उसने कहा, "आप तीनों लोकों की यात्रा करते रहते हैं, देवर्षि। आप ही हमें बतायें, इन दोनों बालकों में कोई देवकी की आठवीं सन्तान तो नहीं है न !" अपनी आवाज का भट्टा बैठ गया हो, ऐसी सन्त्रास की रेखाएँ कंस के चेहरे पर अंकित हो गयीं।

"मुझे भी यही जानना है, कंस, मुझे देवकी की आठवीं सन्तान के दर्शन करने हैं। सुना है कि वह भगवान हैं।" नारद ने कहा।

"हा···हा···हा···" कंस सप्रयास ठहाका मारकर हँसा। "नारदजी, आप भूल गये क्या कि देवकी की आठवीं सन्तान तो हवा में विलीन हो गयी थी।"

"हाँ, लेकिन गुप्तचर कुछ भिन्न खबरें लाये थे, उसका तात्पर्य ?" नारद ने कहा।

"गुप्तचर ! आपसे किसने कहा, नारद ?" कंस ने भयभीत बनकर चारों ओर देखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"आपने ही अभी कहा कि मैं तीनों लोक में घूमता रहता हूँ, फिर इतनी जानकारी भी न रक्खूँ क्या ?"

कंस ने अक्रूर, भद्र और अन्य मन्त्रियों की ओर देखा। उन्हें जाने का संकेत किया। कक्ष खाली होने के बाद भी कंस ने कुछ देर राह देखी, फिर कम्पित स्वर में पूछा—

"देवर्षि, मैं जानता हूँ कि आप किसके पक्ष में हैं। पर आप सच बोलेंगे। यह भी मैं जानता हूँ। मुझे बताएँ इस बारे में आपका क्या विचार है ?"

"देवकी की आठवीं सन्तान को तुमने हवा में उछाला उस वक्त मैं भी यमुना के कारावास में था न। इतने वर्ष हो गये, हवा में बिखर गयी उस सन्तान की खोज में घूम रहा हूँ। यमुना पार करके गोकुल गया तब वृषभानु से मिला था। एक चमत्कार सुना—यमुना ने उसकी बेटी राधा सदेह वापस लौटा दी।"

"यमुना की शक्ति का पार नहीं है। पर आप गोकुल के मुखिया के घर गये थे ?" कंस ने पूछा।

"नन्द की बात पूछते हैं। पर किसी पड़ोस के गाँव में गये थे और उनके घर सौरी हुई थी। अस्तु, वहाँ से सीधा अयोध्या चला गया। राम के उस नगर में शायद देवकी का पुत्र पल रहा हो, इसका पता लगाने।" नारद ने कहा।

"वहाँ तक तो वह कैसे जा सकता है ?"

"कंस, आपके गुप्तचरों से किसी वनवासी ने कहा था न कि उसने सावन के कृष्णपक्ष की अष्टमी की रात में वसुदेव को वन में देखा था।" नारद ने कहा।

कंस विस्मयपूर्वक यह सुनता रहा। "आप तो बहुत कुछ जानते हैं, नारदजी। पर मुझे लगता है कि वह तो वनवासी का भ्रम ही होगा। मथुरा के कारावास का पहरा वसुदेव कैसे लाँघ पाते ?" कंस ने प्रश्न किया।

"उस रात मैं आया तब तो किसी भी सन्तरी ने मुझे रोका नहीं था, यह भूल गये ?" नारद ने पूछा। कंस ने दाँत पीस लिये।

नारद ने कहा, "वह वनवासी अयोध्या का था। अस्तु मैंने उसे वहाँ ढूँढ़ा। खबर मिली की वह पंचवटी गया है इसलिए मैं वहाँ पहुँचा। पंचवटी में पूतना की मृत्यु के समाचार मिले। मैं वापस मथुरा लौटा। राह में किसी ने बताया, यमुना की धारा में से अब कालिया नाग चला गया है और मैं साँस रोककर यह खबर सच्ची है या झूठी, यह जानने आपके आवास तक आ पहुँचा हूँ। यह क्या है ?"

"नारदजी, मुझे भी समझ में नहीं आता कि यह क्या है।" कंस ने दीन स्वरों में कहा। फिर स्वस्थ होकर फरमाया, "मृत्यु अपने स्वाभाविक क्रम में आये इसका मुझे विरोध नहीं है। मुझे चेतावनी दी जाती है कि तेरी मृत्यु आ रही है, पर न वह मृत्यु दिखाई पड़ती है, न चेतावनी देनेवाले की झलक मिलती है।"

नारद अनुकम्पा भरी नजर से कंस की ओर देखते रहे। इस दृष्टि की सान्त्वना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से प्रेरित हो कंस ने आगे कहा।

"देवर्षि, इतने वर्षों से मैं अपनी मृत्यु की विभीषिका में जी रहा हूँ। देवकी की आठवीं सन्तान मेरी हत्या करेगी, यह जानने के बाद देवकी के सभी बालकों की मैंने अपने हाथों हत्या की है। उन कोमल शिशुओं को कारावास की दीवार पर पछाड़ा, तब मैंने अपने ही किसी अंश का नाश किया था। इस प्रकार धीरे-धीरे मैं ही अपना नाश करके मृत्यु को आमन्त्रित करता रहा हूँ ऐसा लगता है।" इतना बोलते-बोलते कंस थक गया। कुछ देर बाद उसने आगे कहा, "थोड़ी और हत्याएँ करूँ तो मुझमें जो कुछ बचा है वह सब मर जायेगा। फिर मेरी हत्या कोई भी कर सकेगा, गाँव का ग्वाला भी, कारण यह है कि वह कंस नहीं होगा। जिसकी समस्त शक्ति निकल गयी है ऐसी कंस की देह मात्र होगी।" कंस मानो स्वगत भाषण कर रहा हो ऐसे बोल गया।

"महाराज कंस, यह ग्वाला कौन है मुझे यह जानना है ? आपके गुप्तचर इस विषय में क्या कहते हैं ?" नारद ने पूछा।

कंस चौंक उठा। उसने आजूबाजू देखा। "नारदजी, मेरे आसपास सब बैरी इकट्ठे हुए हैं। वसुदेव के इतने सारे बच्चों का मैंने वध किया है, उग्रसेन को···"

"पूज्य पिता को—" नारदजी सुधारा।

"नहीं," कंस ने दृढ़ता से कहा, "यादवों के अधिपति उग्रसेन को मैंने कारावास में बन्दी बनाया है। सौभ के राजा दुर्भिल की बात मैं भूला नहीं हूँ।" कंस की आँखों से अंगारे बरसने लगे। उसका लाल चेहरा ऐसा लगता था मानो अग्निदेव प्रकट हुए हों।

"ऐसी लोकनिन्दा आप मानते हैं, कंस ?"

"देवर्षि, मुझे कहने दें कि मैं यह सब क्यों कर रहा हूँ। सत्ता मुझे प्रिय है, पर सत्ता को इतनी क्रूरता में मैंने इसलिए डुबा दिया कि मेरी छोटी-सी जिन्दगी रौंद दी गयी, मुझे सौतेला माना गया। प्रेम नहीं मिला, ममता नहीं मिली, जिन्दगी में दो ही विकल्प उपस्थित हुए : हस्तिनापुर के विदुर की भाँति दासत्व स्वीकार करके ईस नगर में रहूँ अथवा जो मेरे सामने अपवाद का एक भी शब्द उठाये उसे कुचलकर मथुरा पर एकछत्र शासन करूँ।"

"यादव राज्यपद नहीं लेते, यह बात भी तो है ?" नारद ने पूछा।

"मुझे किसी ने यादव कब माना है ? उग्रसेन यादव का मैं पुत्र, पर सबने मुझे तिरस्कृत किया। इसी से तो यादव उग्रसेन कारावास में हैं। आठ-आठ सन्तान को जन्म देकर भी देवकी वन्ध्या है और सन्त अक्रूर मेरी सेवा में हैं।"

"कंस, क्या कभी भी तुम्हें समझ में आयेगा कि विदुर का रास्ता अधिक सही है, पर इस चर्चा का यहाँ अर्थ ही क्या है। मुझे तो जानना है कि तुम्हारे गुप्तचर उस ग्वाले के बारे में क्या समाचार लाये हैं ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"नारदजी, आप इसकी चिन्ता क्यों करते हैं।" कंस ने पूछा।

"मैं देवकी की आठवीं सन्तान की खोज में हूँ।" नारद ने कहा।

"मेरी हत्या करे इसलिए ?" कंस ने होठ चबाये।

"नहीं कंस, तुम्हारी हत्या तो हो चुकी है। मुझे तो इस पृथ्वी पर फैली अधर्म की बाढ़ के विरुद्ध बाँध बना सके ऐसे विरल व्यक्तित्व की खोज करनी है और 'देवकी की आठवीं सन्तान' इन शब्दों में मुझे किसी मन्त्र जैसी शक्ति अनुभव हुई है। वह जो मुझे मिल जाये तो दुनिया के समस्त प्रश्न हल हो जायें। मथुरा में कंस, हस्तिनापुर में भीष्म, पांचाल में द्रुपद, मगध में जरासन्ध, सिन्धु देश में कालयवन। इन सभी में कौन सच्चा है इसका पता नहीं चलता। देवकी की आठवीं सन्तान का संकेत मिले तो शायद समस्त रहस्यों पर से परदा उठ जाये।"

"नारदजी, ये परदा आप कहें तो अभी उठा दूँ।" कंस ने कहा और वह अपने आसन पर से उठ खड़ा हुआ और खिड़की के पास जाकर खड़ा हुआ। वह धीमे और स्पष्ट स्वरों में खिड़की से बाहर फैले आकाश से कह रहा हो ऐसे बोला, "इस खिड़की के सामने, एक रास्ता जाता है, इस रास्ते पर इस समय एक रथ बड़े वेग से दौड़ रहा है। इस रथ में अक्रूर बैठे हैं। यह अक्रूर अपने भगवान के दर्शन के लिए जा रहे हैं यह मैं जानता हूँ। यह कायर व्यक्ति दीन बनकर प्रकट में मेरी सेवा करता है और सारी रात माला जपता है विष्णु के अवतार की।"

"अक्रूर अभी तो यहीं थे। वे कहाँ जा रहे हैं ?" नारद ने पूछा।

"इस दिशा में दूर जाने पर गोकुल आता है।"

"मैं वहाँ गया था, महाराज। वृषभानु का मेहमान बनकर।" नारद ने कहा।

"अब वृषभानु वहाँ नहीं रहते। वहाँ से सब वृन्दावन चले गये हैं। उस वृन्दावन में नन्द के दो पुत्र हैं, बड़े का नाम बलराम और छोटे का नाम कृष्ण।"

'राम और कृष्ण' बहुत धीमी आवाज में ये शब्द नारदजी के मन में गूँज उठे।

"ये बलराम और कृष्ण दिमाग फिरे छोकरे हैं। इन्होंने सिर उठाया है और लोग कहते हैं, इन दोनों में छोटेवाला देवकी की आठवीं सन्तान है।" कंस ने कहा।

"मैं गोकुल गया और उससे मिल न पाया।" नारद ने कहा। "और महाराज, आप तो जानते हैं फिर भी चुप क्यों हैं ? वह तो आपका जन्मजात शत्रु है !"

"बालकों की हत्या करके अब मैं थक गया हूँ। वह बड़ा हो इसकी राह देखने का मैंने निश्चय किया है।"

"मुझे उसके दर्शन करने हैं।"

"आप भी अक्रूर से किसी अर्थ में कम नहीं हैं। आपको यदि दर्शन करने हों तो अब जल्दी करें, नहीं तो विलम्ब हो जायेगा और उस ग्वाले को वृन्दावन में देखियेगा तो शायद भगवान जैसा लगेगा। यहाँ कंस के मुष्टि-प्रहार से चूर्ण हुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसकी देह को देखकर आपका भ्रम टूट जायेगा। जाइये नारदजी, जल्दी से जाकर अपने भगवान के दर्शन कर आइये।" कंस क्रूरतापूर्वक हँसा।

नारद के मुख पर स्वस्थ स्मित खेल रहा थी। उन्होंने कहा, "महाराज, आपका आभार, मुझे मेरे भगवान की तीव्र झंखना है, मेरी नस-नस में, मेरी वीणा के तार-तार में उनका गुंजन है। नारायण ने वचन दिया था कि वे पृथ्वीलोक में अवतार लेंगे। यमुनातट पर वे अवतार लेंगे ऐसा सुना था। इसी से तो मैंने यमुना-तट पर कुटिया बनाकर वास किया था।"

"बातों में वक्त खराब न करें, नारद।" कंस ने कहा, "बिसात बिछ चुकी है। वे दोनों छोकरे यहाँ आयेंगे और उनकी हत्या होगी। मेरी मृत्यु का चक्र मेरे सिर पर इतने वर्षों से घूम रहा है, अब इससे मुझे मुक्त होना है। बलराम और कृष्ण आयेंगे और मैं मुक्त हो जाऊँगा। नारदजी, आपको भी मुक्ति चाहिए तो दौड़िए...। वह—सामने है वृन्दावन की तरह..."

कृष्ण यहीं हैं, नन्द ?

प्राणिमात्र के मस्तक पर अनुस्वार की भाँति रक्खे आकाश में से अन्तिम तारे ने विदा ली, तब नारदजी प्रातःकर्म से निवृत्त हो चुके थे। वृन्दावन की सीमा में प्रवेश करते ही उन्हें कुछ विलक्षण अनुभव हो रहा था। सीमान्त की पुलकित हरियाली को देखते ही उन्होंने सोचा पृथ्वी इतनी रोमांचित क्यों है ? श्रीकृष्ण की चरण-रज उसने अभी ही स्पर्श की होगी या फिर वामन अवतार में भगवान के उस चरण में वह समूची रम गयी थी, तब उसके अंग-अंग में जागृत हुआ रोमांच अभी भी शमित नहीं हुआ है क्या ?

पीछे फैले मथुरा के मार्ग पर से पास-पास पड़ते उनके अपने पदचिह्न दूर जा रहे किसी रथ के निशान पर पड़े थे। वृन्दावन की सीमा में तो बैलगाड़ी के पहिये के निशान हो सकते हैं पर ये रथ के निशान कैसे पड़े होंगे, ऐसा विस्मय भी नारदजी को हुआ।

समूचे वातावरण को अपनी सुगन्ध से तरबतर कर रहे नाग-चम्पा के झाड़ के पास जाकर, खिले हुए पुष्प की पीली पंखुड़ी से नारद ने फुसफुसाकर पूछा, "यहाँ कहीं तुमने देवकी के आठवें पुत्र को देखा है ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाग-चम्पा का पुष्प, हवा की दिशा के प्रतिकूल मथुरा की ओर झुका। फूल के आँखें हों और मानो वह किसी को जाते देख रहा हो, ऐसा अनुभव नारदजी को हुआ।

और फिर देखा तो वृक्ष, पुष्पराजि और घास भी मथुरा की दिशा में जाते रथ के चक्के के निशान की ओर झुककर देख रहे थे।

नारदजी ने यमुना के प्रवाह की ओर देखा। वह प्रवाह सारी चेतना खोकर समतल हुआ पड़ा था। वे अनुभव कर रहे थे मानो समूचे वातावरण में कुछ कमी हो गयी है। जो चूक हो गयी थी उससे टूटे मन का तार जोड़ने का प्रयत्न कर रहे नारदजी के ध्यान में व्यवधान हुआ—गौओं के गले की घण्टियाँ सुनकर !

नारदजी ने आज से पहले भी प्रातः वेला में गलघण्टियाँ सुनी थीं, पर आज जो घण्टियाँ वज रही थीं उनमें विषाद का संगीत मुखर था। ऐसा दुःख भरा संगीत उन्होंने कभी भी नहीं सुना था। नारदजी ने अपनी वीणा पर एक सुर झंकृत करके देखा, वह भी इस विषाद का पूरक हो, ऐसा लगा।

एक गौ अन्यमनस्क भाव से जहाँ नारदजी खड़े थे वहाँ आकर खड़ी हो गयी। नारदजी अपने इतने पास खड़े इस मूक प्राणी को देखकर ही स्तब्ध रह गये। गाय की बड़ी आँखें मथुरा की ओर जाते रास्ते पर अंकित रथ-चिह्न पर स्थिर थीं। उन आँखों में धीरे-धीरे मोती जैसे आँसू उमड़ रहे थे। उन तरल पारदर्शक बिन्दुओं पर पड़ रही उषाकाल के प्रकाश की किरण एक अपूर्व रंगलीला रच रही थी। जैसे साक्षात्कार के क्षण में ही भगवान लीला समेट लें, इस प्रकार गाय की आँख का अश्रुबिन्दु भी भूमि पर गिर पड़ा और नारदजी मानो वज्र गिरा हो इस प्रकार सिर से पैर तक काँप गये।

नारदजी को लगा जैसे गाय की आँख में से गिरे अश्रुबिन्दु के साथ ही एक युग बीत गया। शायद वह बिन्दु नहीं; स्वयं भगवान ही इस वातावरण में से विलुप्त हो गये थे।

अन्य थोड़ी गौएँ आयीं और सीमा में आगे चली गयीं। उनके पीछे एक गोप-किशोर आ रहा था। एक मनुष्य को देखकर नारदजी को पृथ्वी के वातावरण से पुनः जुड़ने का भाव-बोध हुआ। उन्होंने उस ग्वालबाल से पूछा—"भाई !"

इस सीमान्त पर जैसे कोई शब्द कहा ही नहीं गया, ऐसे भाव से वह किशोर आगे बढ़ा। नारदजी को कुछ समझ में नहीं आया, पहले नाग-चम्पा का फूल, फिर गाय और अब यह गोप-किशोर...

नारदजी ने जाकर उस गोप को झकझोरकर पूछा, "भाई, नन्दग्वाल का घर किस दिशा में है ?"

नन्द का नाम सुनते ही उस किशोर की आँखें चमक उठीं, पर चेतन-जगत् में आने में उसे समय लगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मैं नन्दग्वाल का घर पूछ रहा हूँ, कृष्ण के पिता का !" नारदजी ने कहा।

कृष्ण शब्द कहते ही आकाश मानो थोड़ा झुक आया हो ऐसा लगा। नागचम्पा के फूल ने नजर घुमायी, गाय के गले की घण्टियाँ बज उठीं और ग्वाले ने कहा, "कृष्ण के पिता की तो खबर नहीं। नन्दग्वाले की देह यहाँ से पूरब की ओर ब्रज की झोंपड़ी में पड़ी है।"

"नन्द की देह ? तू क्या कह रहा है ?"

"हाँ, नन्द अपनी चेतना तो मथुरा में छोड़ आये हैं, वापस लौटे हैं तब से जड़ बने बैठे हैं।"

नारदजी को कंस के शब्द याद आये। अरे तो क्या सचमुच ही कंस ने कृष्ण को 'था—नहीं है' कर दिया होगा ? उनका मन तर्क-वितर्कों से घिर गया। उन्होंने पूछा, "कृष्ण कहाँ हैं ? नन्द मथुरा क्यों गये थे ?"

गोप किशोर ने उत्तर नहीं दिया। वह आगे चलने लगा। नारदजी चिन्ताग्रस्त गोप और गायों को जाते देखते रहे और फिर वीणा पर 'नारायण' नाम झंकृत कर ब्रज की दिशा में उन्होंने कदम बढ़ाये। कृष्ण की जिस ब्रजलीला की बातें उनके कान तक पहुँची थीं वह इसी भूमि में खेली गयी थीं। प्रभु के चरणों से यह भूमि पावन हो गयी थी क्या—ऐसा विस्मय अनुभव करते, देवर्षि चतुर्दिक् नजर डालते चले जा रहे थे कि कहीं कृष्ण का कोई चिह्न दिखाई पड़ता है क्या ?

वृन्दावन में वृक्षों पर पके फल तोड़े नहीं गये थे। कुसुम उद्यान में पुष्पलताओं पर ही फूल मुरझा गये थे और शरद ऋतु का पवन मानो किसी की अपेक्षा हो इस प्रकार आकर लिपट जाता था और दूसरे ही क्षण हताश होकर बिखर जाता था।

नारदजी यह सब देखकर कैसी तो अटपटी खिन्नता अनुभव कर रहे थे। देवकी की सन्तान के दर्शन की अभिलाषा उनकी आँखों से उड़कर वृक्षों और पत्तों पर घोंसला बनाये बैठी हो ऐसा लगता था।

वह गोप-बाल क्या-क्या बोल गया, नारदजी को अभी उसकी बातों पर विश्वास नहीं जम रहा था। नन्द अपनी चेतना मथुरा में छोड़ आये ! क्या कंस ने वह जैसा कहता था वैसा ही कोई उत्पात शुरू किया होगा ? या फिर कृष्ण का जीवन ही नष्ट कर दिया होगा ? नारद को मथुरा छोड़े बहुत दिन हो गये थे। कंस से मिलने के बाद वे कई दिन तक भगवान के ध्यान में बैठे रहे—भगवान क्या आदेश करते हैं इस प्रतीक्षा में। जब उस ध्यान में एक मेघश्याम वर्ण किशोर बारम्बार आकर अपनी मधुर स्मित से नारदजी को मोहित करने लगा, गायों में से, वृक्षों में से और गोप-गोपियों के साथ की केलियों में से छनछनकर वह भुवनमोहन रूप जब उनकी ध्यान-समाधि में विक्षेप रचने लगा तब नारद को प्रतीति हुई कि कंस जिसकी बात करता था वह नन्द के यहाँ पलता बालक ही देवकी का आठवाँ पुत्र होगा और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक शाम चन्द्र के धुँधले उजाले में यमुना के किनारे वे चलने लगे—वृन्दावन की दिशा में।

"नन्द ग्वाले की झोंपड़ी कहाँ है ?" नारदजी ने अभी-अभी वन में तेज गर्मी में उपले थाप रही एक मध्य वय की स्त्री से पूछा।

स्त्री ने नारदजी की ओर देखा। प्रणाम किया। अपने हाथ से आँख पर आयी लटें हटायीं और कहा, "आपको नन्दजी का घर ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा। यहाँ से आगे बढ़ें, और आँसुओं से नरम बनी यह पगडण्डी जिसके आँगन में जा अटके, वही है नन्दजी का घर !"

"आँसू—किसके आँसू ?" नारदजी ने पूछा। और उन्होंने देखा कि यह उन्मन स्त्री आगे उत्तर देने की स्थिति में नहीं है। तब वे इंगित की हुई पगडण्डी पर चलने लगे।

वास्तव में, थोड़ी ही देर बाद नारदजी एक घर के खुले दरवाज़े के सामने आ खड़े हुए। घर में प्रवेश करें या नहीं इस दुविधा में वे दरवाज़े के बीच ही खड़े रहे और देखा तो आँगन में नन्दजी छत की ओर ताकते बैठे हैं।

न जाने कब तक नन्दजी सूनी आँखों से छत की ओर ताकते रहे, फिर उनकी दृष्टि आँगन में खड़े तेजस्वी अतिथि पर पड़ी। ओज भरे तपस्वी के हाथ में वीणा, कहीं ये देवर्षि नारद तो नहीं हैं ? यह विचार आते ही नन्दजी उठे और द्वार के पास आकर प्रणाम किया। कहा, "पधारिए देव, अविनयवश मेरा ध्यान आपकी ओर इतने विलम्ब से गया।"

"सुखी रहिए। नन्द आपका ध्यान जहाँ से जुड़ा था, वह तो बहुत ही इष्ट है। मैं तो आपकी शुष्क आँखों में आप जिसकी झंखना कर रहे थे उसकी छवि देखने में रम गया था, मुझे तो आवाज देने की भी सुधबुध न रही। सुना आप मथुरा हो आये ? वहाँ सब कुशल तो हैं न ?"

नारद के प्रश्न से नन्द व्यग्र और हतप्रभ हो गये। "क्या और किसकी कुशल पूछते हैं ?" उन्होंने पूछा। फिर आँगन में ही आसन बिछाकर नारदजी को बैठाया, उनके चरण पखारे।

नारद की चकोर बनी आँखें आँगन में पड़ी बाँसुरी और मोरमुकुट को देखती रहीं। उन पर किसी ने ताजे पुष्प चढ़ाये थे ? कृष्ण का क्या हुआ होगा ? यह प्रश्न नारद के हृदय में प्रतिध्वनित होता रहा।

नन्द ने कहा, "देवर्षि, वसुदेव और देवकी कुशल से हैं। मुझे मथुरा से विदा करने आये तब कृष्ण—वासुदेव भी कुशल से थे…।"

"कृष्ण—वासुदेव।"

नारदजी ये शब्द सुनकर चमक उठे थे। तो क्या कृष्ण सचमुच ही वसुदेव के पुत्र थे ? कंस ने उन्हें मथुरा में कैसे रहने दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्द ने कहा, "कृष्ण और बलराम ने जब कंस के बलवान साथियों को परास्त किया और उस नन्हे से कृष्ण ने दुष्ट कंस को भूमि पर पटककर उसके प्राण हर लिये, तब मेरी आँखों में हर्ष के आँसू छलक आये थे। अब तक वह गोकुल वृन्दावन का तारनहार था। उसने धेनुकासुर मारा, कालिया को वश में किया, यमलार्जुन को मोक्ष प्रदान किया, अब वही कृष्ण मथुरा के साम्राज्य का तारनहार बना। यह देखकर मेरी छाती फूलकर गजभर की हो गयी।"

नारदजी सोचने लगे, 'अरे मैं तो देवकी की आठवीं सन्तान को ढूँढ़ता ही रह गया और अचानक दुनिया बदल गयी ! यमुना के तट पर मेरी एकाकी कुटी में किसी ने खबर भी न दी कि कंस अब इस दुनिया में नहीं है ! मेरे ध्यान में यह नीलाकाश वर्ण का बालक आ पहुँचा तब भी मुझे ध्यान न आया कि कृष्ण अब मथुरा में हैं !

फिर उन्होंने नन्द की ओर देखा। नन्द के घर में से थोड़ी-थोड़ी देर बाद सुनाई दे रही सिसकियों पर उनका ध्यान ठहरा। मोरमुकुट और वंशी पर बहुत देर तक उनकी निगाहें टिकी रहीं और फिर नन्द के चेहरे पर छाये विषाद के आकाश को देखकर उन्हें लगा, कृष्ण शायद यहीं हैं। मोरमुकुट के अन्दर के अवकाश में कृष्ण हैं और अन्दर से सुनाई देते जसोदा माता के धीमे क्रन्दन में कृष्ण विद्यमान हैं।

देवर्षि, फिर तो मानो सारा गोवर्धन पर्वत ही मुझपर टूट पड़ा, कृष्ण और बलराम ने वसुदेव को प्रणाम किया। देवकी ने दोनों को अपने आलिंगन में लिया। मैं और गोप लोग कलपते ही रह गये कि कृष्ण और बलराम गये कहाँ !

"समूचा सभामण्डप खाली हो गया। मैं, वृषभानु और थोड़े से गोप युवक ही रह गये। कृष्ण और बलराम अभी आएँगे, बस अभी आ पहुँचेंगे ऐसा मान कर न जाने कब तक हम राह देखते बैठे रहे। पर कृष्ण और बलराम तो गये तो बस गये ही।"

"मैं और वृषभानु मथुरा के राजमहल तक गये, राजमहल के बाहर पहरा देते सन्तरियों ने हमें अन्दर जाने ही नहीं दिया। हम दोनों बहुत देर तक महल की चहल-पहल देखते रहे। दोनों भाई राजसी वस्त्र पहनकर गवाक्ष में आकर खड़े हुए और 'जय कृष्ण वासुदेव' की जयध्वनि करते लोगों को दर्शन देते रहे।"

"नारदजी, हम तो मान ही न सके कि ये दोनों बालक वही हैं जो अभी, कल ही, हमारे साथ वृन्दावन से मथुरा आये थे। इन्हीं बालकों को जसोदा ने और मैंने डाँटा था, बाँधा था और कभी अपनी कसम खिलाई थी।"

नन्द गिलगिला गये। वे थोड़ी देर चुप रहे फिर आगे बोले—

"मैंने वृषभानु से कहा, चलिए हमारे नसीब फूट गये, हम नगर के बाहर अपने शिविर में चलकर विश्राम करें। हम शिविर में पहुँचे, वहाँ गोपवृन्द व्याकुल आँखों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। "क्यों कृष्ण के कोई समाचार ? बलराम आये ?" उन्होंने पूछा। वे अभी कल तक जिनके साथ आँखमिचौली खेलते थे, उनके वे मित्र आज अचानक उनसे बिछुड़ गये थे। हमारे उदास चेहरे देखकर उन्हें उत्तर मिल गया।

"एकाएक शाम को रथ के घुँघरू झमक उठे। मथुरा की सीमा पर स्थित हमारे शिविर में एक रथ आकर रुका। उसमें से वह क्रूर हृदय अक्रूर और राजा उग्रसेन उतरे। फिर दूसरा रथ आया, उसमें से वसुदेव और देवकी उतरे। तीसरे रथ से उतरे कृष्ण और बलराम···"

नन्द मानो इस क्षण सबको रथ से उतरते देख रहे हों इस प्रकार क्षितिज की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। नारदजी उत्सुकता से यह विवरण सुन रहे थे। सेवक जल के पात्र रख गये। नन्द ने दो घूँट पानी पिया और तब बोले—

"हमारे गोप लोगों के आवास के पास इतने रथ आएँ ऐसा तो पहली ही बार हुआ था। हम सब स्तब्ध होकर देखते रहे। कृष्ण और बलराम रथ से उतरे तब मेरा हृदय उछल रहा था। दोनों को हल्की-ची चपत मारकर कहा, बूढ़े बाप की चिन्ता बढ़ाकर कहाँ मटरगश्ती कर रहे थे तुम दोनों ? पर मन कहता था अब तो ये कृष्ण वासुदेव हैं, नन्दलाल नहीं हैं और मैं हताश होकर सूनी आँखों से सब देखता रहा।"

नन्द को मथुरा से वापस आने के बाद पहली बार किसी के सामने दिल खोलकर कहने का अवसर मिला था, वे नारदजी की ओर देखते रह गये।

"नन्द, फिर क्या हुआ ?" नारद उत्सुक बन गये थे।

"देवर्षि, कृष्ण बलराम ने मुझे प्रणाम किया। जो दौड़कर मेरी गोद में बैठ जाया करते थे, जिनकी चरण-रज से धूसरित होकर मेरे वस्त्रों के रंग बदल गये हैं, उन छोकरों ने मेरी चरण-रज ली। नारदजी, हमारे वृन्दावन में बाप-बेटे के बीच ऐसा व्यवहार नहीं होता। मैं मन को कठोर बनाकर खड़ा रहा। आशीर्वाद के शब्द हृदय में आये, पर कण्ठ में अटकी रुलाई ने उन्हें होंठ तक नहीं आने दिया। वसुदेव और देवकी मेरा आभार व्यक्त करने लगे, कहने लगे, मैंने उनके बेटे का लालन-पालन किया। नारदजी, आप ही कहें गोकुल में अष्टमी की उस रात नौ मास तक गर्भधारण कर रही जसोदा ने जिसे जन्म दिया था, वह बालक वसुदेव देवकी का कैसे हो गया ? मैं किस राजा से शिकायत करने जाऊँ, नारदजी ?" नन्द की आँख से चौधार आँसू बहने लगे।

नन्द स्वस्थ हुए, उन्होंने आजिजी से पूछा, "नारदजी, जसोदा के गर्भ में नौ मास तक क्या था ? मैंने किसका दोहद संस्कार किया था ? अष्टमी की रात सबने जिसका रुदन सुना, वह कौन था ? प्रातः दाई की गोद में जिस घनश्याम बालक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को मैंने देखा वह कौन था ? कहिए तो नारदजी, कंस के कारावास में बन्दी देवकी-वसुदेव इस बालक के माता-पिता तो बन बैठे, पर किस न्याय से ?"

नारदजी को कोई उत्तर सूझ नहीं रहा था। नन्द की बात सच थी कि वे किस राजा के यहाँ फरियाद लेकर जाएँ।

उन्होंने पूछा, "नन्द, तो क्या कृष्ण और बलराम वहीं रुक गये ? आपका सम्बन्ध बन्धन तो ठीक, पर माता का वन्धन भी वे इतनी आसानी से कैसे काट सके ?"

"हाँ देवर्षि ! मुझसे बोले—पिताजी, हमारा धर्म अब यहाँ रहकर लोगों की सेवा करने का है। हमें इस देश से अधर्म को निर्मूल करना है। आप माताजी को सान्त्वना दीजियेगा, कृष्ण अपना धर्मकार्य पूरा करके उनसे मिलेगा। और साथ ही साँप जैसे केंचुल उतार देता है, उसी प्रकार लड़कों ने अपने मन से माँ-बाप को उतार दिया।" नन्द का कण्ठ भर आया। उन्होंने पुनः स्वस्थ होकर कहा, "वे लोग थे तव तक तो मन कठोर करके हम खड़े रहे। सबकी बात पर हलके हुंकार भरते रहे। महल में कुछ दिन अतिथि बनकर रहने के अक्रूर और वसुदेव के प्रस्ताव को विवेकपूर्वक अस्वीकृत किया। एक-एक करके रथ मथुरा की ओर लौट गये। तीसरे रथ में केवल कृष्ण ही नहीं गये, मेरी ये आँखें भी गयीं—मैं रातोंरात अन्धा बन गया हूँ। मुझे अब कृष्ण नहीं दिखता, न बलराम दिखता है। यह अन्धापन नहीं तो और क्या है ?"

नारद को भय हुआ कि नन्द की आँखों से मानो समूची यमुना बह निकलेगी !

"नन्द, जीवन में ईश्वर हम सबके लिए कसौटी कसता है। मैं भी कृष्ण को ही ढूँढ़ता आया हूँ।" नारद ने कहा।

"आप तो मथुरा जायेंगे और वहाँ आपको कृष्ण मिलेंगे, नारद। हमें अब हमारी आँख का तारा नहीं मिलेगा। जसोदा को उसका दुलारा नहीं मिलेगा। यह रहा कृष्ण का मुकुट—अब इसे कौन पहनेगा ? इसके अन्दर का अवकाश हमारे प्राण सोखता रहेगा। और यह बाँसुरी—इसे कोई नहीं बजायेगा और हमारे हृदय फटते जायेंगे !"

"नन्द, शायद मैं कृष्ण को ढूँढ़ने मथुरा न भी जाऊँ। कृष्ण तो यहाँ आपके विषाद में पसरे पड़े हैं। कृष्ण यहीं हैं नन्द, मैं उन्हें यहीं ढूँढूँगा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण आते हैं...

"किसे पता था कि कालिया नाग यमुना के दह में से निकलकर उस ठगवा के अंग में समा गया होगा। उसने ऐसा डसा है कि न जिन्दगी से छुटकारा मिलता है, न जीने में चैन मिलता है।" राधा ने कहा और इतना कहते-कहते वह पुनः मूर्च्छित हो गयी।

जो होश में थे वे भी अर्धमूर्च्छित ही थे। नारदजी ने आँख में उमड़ आये एक अश्रुबिन्दु को जल्दी से पोंछ लिया और वृषभानु के कन्धे पर हाथ रक्खा।

वृषभानु ने चौंककर नारद की ओर देखा। उनकी सूखी आँखें देखकर डर लगता था।

"देवर्षि, हम तो गँवई गाँव के लोग हैं। आप जैसे अतिथि आँगन में आते हैं और हम अपनी वेदना के अवसाद से उबरकर खड़े नहीं हो पाते।" वृषभानु ने कहा।

"वृषभानु, यह आपकी वेदना नहीं है। सारे जगत् की वेदना सिमटकर आप में समा गयी है। कृष्ण के लिए यह आतुरता, यह तन्मयता और यह प्रीति—सच कहता हूँ स्वर्ग में भी इसका जोड़ा नहीं है। राधा की यह मूर्च्छा, शेषशैया में अनादि काल से विष्णु के चरण दबाती लक्ष्मी की जागृति की अपेक्षा कहीं अधिक महान है।" नारद बोले। परन्तु ये शब्द वृषभानु के बेसुध मन पर से उड़कर वातावरण में विखर गये।

नारदजी मानो चमत्कारों की दुनिया में रह रहे थे। यहाँ आये और नन्द की स्थिति देखकर वे द्रवित हो उठे थे। नन्द को तो वे आश्वासन भी दे सके, पर माता यशोदा के सामने तो वे एक वाक्य भी ठीक से न बोल पाये। यशोदा माता ने एक बार हिचकियों के बीच टूटे-फूटे शब्द कहे और उनमें इतना ही कहा कि "नारद मथुरा से आये हैं, तो इतना तो पूछकर आना था कि रानी देवकी के अन्तःपुर में किसी दासी की जरूरत है या नहीं ?" ये शब्द नारदजी के मर्मस्थल को बींध गये। यशोदा ने कृष्ण को जिस ऊखल से बाँधा था, उस पर ताजे लहू के छींटे थे। नन्द ने कहा, "यशोदा तो इस पर माथा पटक-पटककर प्राण दे देना चाहती थी, हम लोगों ने बड़ी मुश्किल से रोका।"

"नारद, उसने कहा है—माँ मैं आऊँगा" यशोदा ने कहा। "अक्रूर ने रथ हाँका और मैं पीछे दौड़ी। मेरे लाल ने रथ रुकवाया और मुझसे कहा—माँ, मैं वापस आऊँगा ! इस चौमासे में मोर नाचे तब मेरे मुकुट के लिए थोड़े मोरपंख माँग लेना। नारद, जो ऐसा कहे वह देवकी का बेटा थोड़े न हो सकता है ! वह बेचारा लाचार होगा। भाले की नोक पर राजा उग्रसेन ने उसे रोक रक्खा होगा, नहीं तो मेरे बिना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह एक रात भी रह सकता है क्या ?"

नारदजी ने यशोदा माता की आँख से बहती यमुना देखी। मध्याह्न सन्ध्या के लिए यमुना-तट पर गये तो उन्हें लगा कि इस नदी में अब पानी नहीं बहता, ब्रज की नारियों की काजल-आँजी आँखों से निकले आँसू बह रहे हैं।

नन्द के साथ वे भोजन करने बैठे तो देखा—नन्द के हाथ में कौर अटक-अटक जाता है और बड़ी देर तक वे विचारों में खो जाते हैं। नारदजी पूछने लगे, "क्या सोच रहे हैं, नन्दजी ?"

"कुछ नहीं।" कौर वापस थाली में रखकर नन्द कहने लगे, "कृष्ण को पहला कौर खिलाये विना, मैंने कभी भी कुछ भी मुँह में नहीं डाला। वह हँसता था, लाड़ करके मुँह खोलता था। बलराम मजाक करता था—अरे तू इतना बड़ा हो गया, तुझे अब शरम नहीं आती ! हाथ से खाना नहीं आता ? तब वह कहता—तुझे पिताजी नहीं खिलाते इसलिए तू जलता क्यों है ?"

नारदजी संस्मरणों की इस भूमि में लवलीन होते जाते थे।

यशोदा ने कहा, "नारद, एक बार कृष्ण रोता-रोता मेरे पास आया, मुझसे कहा—माँ, बड़ा भाई मुझे खिजाता है। मैंने पूछा, किसलिए ? तो कहता है—तू यशोदा माँ का बेटा थोड़े ही है। वनजारों की एक टोली गोकुल आयी थी, तब माँ ने उनसे तुझे खरीद लिया था। और वह रोने लगा। बेर जितने बड़े-बड़े आँसू उसकी आँखों से गिर रहे थे। मुझसे कहता है—माँ, सच बता मैं तेरा बेटा हूँ या नहीं ? अब बताइये, ऐसा बेटा कोई छीन ले और एकाएक कह दे कि—यह तो देवकी का बेटा है, तुमने तो बेटी को जन्म दिया था और वह हवा में बिखर गयी, तो कौन-सी माँ इस बात पर विश्वास करेगी ?"

नारद इसके बाद वृषभानु से मिलने गये। राधा तो कृष्ण के जाने के बाद गुमसुम हो गयी थी, ऐसा उन्होंने सुना था। यह राधा यानी वृषभानु को यमुना द्वारा दी गयी बेटी ! कृष्ण छोटे थे तब राधा की गोद में खेलते थे। एक बार गोकुल में किसी का विवाह था। तब कृष्ण ने हठ पकड़ा—मेरा भी ब्याह करो। चार बरस का छोकरा ऐसा हठ करे तो कितना लोकरंजन होगा ? नन्द ने पूछा, "किसके साथ ब्याह करेगा, लाल ?" कृष्ण ने कहा, "इस राधा के साथ।"

उस क्षण से ही राधा को मानो स्वयं कृष्ण की ही हो, कृष्ण के लिए ही जन्मी हो ऐसा लगने लगा। यों भी जब ब्रज में कृष्ण नहीं थे तब राधा कहाँ थी। तो उसके बाद आज ब्रज में राधा है, कृष्ण नहीं है, ऐसा कह सकते हैं क्या ?

नारदजी ऐसे विचारों में, चेतन-जगत् के उस पार पहुँच गये। इतने में वृषभानु ने आवाज देकर उन्हें जगाया।

"देवर्षि, आप राधा को समझायें। उसने तो न जाने कितने दिन हो गये, कुछ भी खाया-पिया नहीं है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा इस समय अर्धचेतन थी। देवर्षि नारद आँगन में आये हैं यह जानकर वह उठ खड़ी हुई। देवर्षि को प्रणाम किया और घर के अन्दर से जलपात्र लेकर आयी।

जलपात्र रखकर खड़ी राधा की ओर देवर्षि कुछ देर देखते रह गये। यह चेहरा मानो युगों से जिसे वे पहचानते थे वही था। कहाँ देखा था यह चेहरा ? यह शेषशैया पर बैठी भगवती लक्ष्मी का चेहरा था ! या फिर यमुना नदी में घनघोर बाढ़ आयी थी उस समय जो उन्मत्त युवती मिली थी उसका चेहरा है ! यही चेहरा तो उन्हें कुण्डिनपुर के राजा की छोटी बेटी रुक्मिणी में नहीं दिखा था क्या ?

नारद का मन चकरा रहा था। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था। "देवर्षि, जल···" राधा ने कृश आवाज में कहा। नारद ने जलपात्र लिया, कुछ घूँट पीकर पात्र एक ओर रक्खा और कहा—

"बेटी !"

"आज्ञा, देवर्षि।" राधा ने कहा।

"तेरी कृष्ण-प्रीति देखकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। पर इस प्रीति के कारण अपनी देह पर इतना जुलुम क्यों कर रही है ? कृष्ण की याद में इस प्रकार अपने आप को गला डालेगी तो तेरे अन्दर बसा कृष्ण कितना कष्ट पायेगा, इसका कभी खयाल करती है ?" नारद ने पूछा।

"उस प्रपंची का मेरे सामने नाम न लें, नारद। आपसे किसने कहा कि मैं उसकी याद में सूख रही हूँ। मैं तो वह···याने मज़े में जी रही हूँ। यदि कृष्ण को मेरी परवाह नहीं, तो मुझे भी कृष्ण की क्या परवाह है !" राधा ने कहा। उसके स्वर में विद्यमान व्यथा नारद को छू गयी।

"राधा, वह सच में प्रपंची है, मैं तो उसे ढूँढ़ने निकला हूँ। मथुरा के कारावास में गया तो वह वहाँ से गायब, अयोध्यानगरी या पंचवटी में उसका पता नहीं मिला। वृन्दावन की धरती पर वह लीला कर रहा है, ऐसा सुनकर यहाँ आया, तो यहाँ से भी वह चला गया।" नारद ने कहा।

"देवर्षि, आपसे किसने कहा कि कृष्ण यहाँ नहीं है ?" राधा ने पूछा। "आप नन्द के घर जाइये, वहाँ अन्दर के कमरे में पालना पड़ा है—उसमें पड़ा-पड़ा पैर पछाड़ता वह बालक, कृष्ण ही है।" राधा की आँखें मानो स्वप्न देख रही हों ऐसे चमक उठीं। "आप जरा उसे गोद में लेकर तो देखें हाथ में रहे तो कहियेगा। कान खींचेगा, वह आपकी वीणा के तार नोच लेगा। हाँ, वीणा पर एकाध गीत बजायेंगे तो शान्त पड़ा-पड़ा सुनेगा। जैसी शान्ति से वह यशोदा की लोरी या मेरी डाँट सुनता है उसी शान्ति से ही वह आपकी वीणा का दिव्य संगीत भी सुनेगा।"

थोड़ी देर वह कुछ भी न बोली। "आपने अभी वृन्दावन देखा ही कहाँ है ! यमुना के किनारे स्थित कदम्ब वन के किस वृक्ष पर वह बैठा है यह मैं यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैठी-बैठी बता सकती हूँ। देवर्षि, आप जरा जाकर देखें तो, कि एक वृक्ष के कारण समूचे वन की शोभा कितनी बढ़ गयी है।"

राधा को चित्तभ्रम तो नहीं हो गया है, ऐसी विकलता नारद अनुभव कर रहे थे। राधा मानो समाधि में हो और कुछ देख रही हो ऐसे कह रही थी—

"देवर्षि, आपने गोवर्धन पर्वत देखा है ? अभी तो उनकी अँगुली पर वह टिका है। चलिये, जल्दी करिये, उस पर्वत के नीचे आश्रय लें। दौड़िये, नहीं तो इन्द्र हमें जीता नहीं छोड़ेगा।" कहकर राधा द्वार की ओर दौड़ी।

"राधा !" नारद ने पूछा। नारद की आवाज राधा को पुनः इस दुनिया में लौटा लायी और वह बोल उठी, "हाय रे, उस दिन तुमने गोवर्धन को अपनी कोमल अँगुलियों पर क्यों उठा रक्खा था ? वह अँगुली हटा ली होती और पर्वत को हम लोगों पर गिरने दिया होता तो आज दुःख के इस पहाड़ की पीड़ा तो सिर पर न टूटती··· !" और फिर वह भाव-सृष्टि से निकलकर अचेतन के अगोचर प्रदेश में प्रवेश कर गयी। नारद की आँखों से अब अश्रुबिन्दु नहीं, अविरल आँसू की धारा बह रही थी।

"वृषभानु, ब्रज की यह स्थिति तो असह्य है—कृष्ण यहाँ कहीं नहीं हैं, फिर भी यहाँ छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं हो सकते, ऐसा लगता रहता है।" नारद ने कहा।

"देवर्षि, हम तो ग्वाले हैं···हमें इसमें कुछ समझ में नहीं आता। हमें तो बस इतनी खबर है कि जिसके आधार पर हम जी रहे थे वह हमारे बीच से खिसक गया है।" वृषभानु ने कहा।

"नहीं वृषभानु, शायद अब वह तुममें अधिक व्यापक बनकर बसा है। कृष्ण थे तब तो नन्द के घर ब्रज की सीमा में, यमुना के जल में या कदम्ब के वन में थे, वे नहीं हैं तब नन्द की आँखों में, यशोदा के हृदय में, राधा के रोम-रोम में और ब्रज की भूमि के कण-कण में व्याप्त हो गये हैं।" नारद ने कहा, "शायद भविष्य में कृष्ण नहीं होंगे तब भी लोग इस भूमि में उन्हें ढूँढ़ने आयेंगे। यहाँ की रज को माथे चढ़ायेंगे। यहाँ के वनों में उन्हें ढूँढ़ेंगे !"

नारद सन्ध्या समय यमुना में खड़े होकर अस्ताचलगामी सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे, तब उन्होंने मथुरा की दिशा से दौड़कर आ रहे श्रीदामा को देखा। वह एक बार तो ठोकर खाकर गिरा, पर फिर जैसे कुछ न हुआ हो इस प्रकार उठकर दौड़ पड़ा। नारद ने पूछा, "अरे ओ, क्या है ?"

"कृष्ण आ रहे हैं···" अभी ये शब्द पूरी तरह सुन पड़े उससे पहले तो श्रीदामा वृन्दावन पहुँच गया।

"नन्द बाबा, सुना, कृष्ण आ रहे हैं।"

"हो नहीं सकता।" नन्द ने कहा, "किसने कहा ?"

"मैं तो कहती ही थी कि मेरा लाल अवश्य आएगा—आप सब कैसे झूठे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़े।" यशोदा माता ने कहा।

"मैंने और वत्स दोनों ने दूर से आ रहे एक रथ को देखा। अक्रूरजी आये थे वैसा ही रथ। एक पल तो हुआ कि सामने दौड़कर कृष्ण से मिलूँ। लेकिन दूसरे ही पल लगा कि पहले सब को खबर दे आऊँ।"

"क्या पता अक्रूर ही उस रथ में न आ रहे हों।" नन्द ने निःश्वास लेकर कहा।

"मेरा लाल ही आता होगा—मुझसे कहा था कि मैं आऊँगा। मेरी गौओं को सँभालना। आ मेरे लाल, तेरी गौओं को सँभाल कर रक्खा है, तेरे लिए गोरस तैयार रक्खा है।" यशोदा ने कहा।

नन्द और यशोदा यमुना की ओर चल दिये।

वृषभानु के यहाँ श्रीदामा पहुँचा उससे पहले ही समूचे ब्रज में खबर पहुँच गयी थी। पर राधा तो गुमसुम बनी बैठी थी।

"अरी, सुना ! कृष्ण आ रहे हैं !" ललिता ने कहा। मानो आवाज़ का स्पर्श भी उसे न हो रहा हो, ऐसे वह बैठी रही।

"वृषभानु काका, इस राधा से कहिये कि हमारा कृष्ण वापस आ रहा है। श्रीदामा ने अपनी आँखों से उसे देखा है।"

"हाँ काका, कृष्ण ही थे, वही मुकुट, वही पीताम्बर, वही माला। मैंने दूर से देखा, आखिर कृष्ण कहीं छिपे रह सकते हैं ?"

वृषभानु कपड़े बदले बिना ही निकल पड़े। समूचा ब्रज निकल पड़ा था—एक राधा को छोड़कर। वह अभी भी अन्यमनस्क भाव से कहती थी, "अरी ललिता, वह गया ही कहाँ था, कि वापस आ रहा है। देख न उस कदम्ब वन में से वंशीनाद आता सुनाई दे रहा है। इस समय साँझ की बेला में हम लोग घर के कामकाज छोड़कर दौड़ें इसीलिए नटखट ने यही समय चुना है, संकेत देने का।"

"राधा तू स्वप्न में है।"

"थी, अब तो जाग रही हूँ। तू जा ललिता, सारा ब्रज गया है, मैं तो यह वंशीनाद जहाँ से आ रहा है वही सुन रही हूँ। आवाज की दिशा नक्की होगी तो मैं भी चल पड़ूँगी।"

ललिता दयार्द्र नजरों से राधा की ओर देखती रह गयी। फिर राधा को यथावत् छोड़कर, वह भी दौड़ी कृष्ण-दर्शन के लिए।

नारद सूर्य को अर्घ्य देकर बाहर निकले और मथुरा के मार्ग की ओर देखा—धूल उड़ती दिखाई पड़ रही थी। सचमुच ही कोई रथ आ रहा था। पीछे मुड़कर देखा, तो नन्द और जसोदा आँख में उत्सुकता आँजे खड़े थे। दोनों की आँखों में बादल घिरे थे। वे हर्ष के आँसू बनकर बरसें, ऐसी प्रार्थना नारदजी कर रहे थे।

रथ निकट और निकटतर आता गया, साथ ही रथ हाँक रहे तेजस्वी मेघश्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महारथी की आकृति स्पष्ट होती गयी।

"कृष्ण ही है न ?" नन्द के पास में आ खड़े हुए वृषभानु ने पूछा।

"उस दिन महल के झरोखे से दर्शन दिया तब ऐसे ही वस्त्र पहने हुए थे।" वृषभानु ने कहा।

यशोदा के उत्सुकता भरे चेहरे पर धीरे-धीरे बादल गहराने लगे। "मेरा लाल, इतनी दूर तक रथ में नहीं आ सकता। वह होता तो रथ छोड़कर, अब पैदल दौड़ता हुआ आता।"

"सच कहती हो, यशोमती। यह तो अक्रूर जैसा कोई क्रूर आ रहा है। सम्भव है कृष्ण की कोई चीज छूट गयी होगी, उसे ले जाने के लिए इसे भेजा होगा।" किसी ने कहा।

रथ पास आया, थमा। उसमें से दूसरा कृष्ण हो ऐसा एक तरुण उतरा। केवल आँखों की आर्द्रता और चेहरे पर अंकित होते हृदय के भाव कृष्ण के नहीं थे। नन्द और यशोदा को तो पलभर ऐसा लगा कि हृदय बन्द हो जायेगा।

रथ में से उतरे तरुण ने देवर्षि नारद के पास जाकर कहा, "देवर्षि, देवभाग का पुत्र उद्धव आपको प्रणाम करता है।"

"चिरंजीवी हो, वत्स।" नारद ने कहा। उनकी उत्सुकता भी चूर-चूर हो गयी थी। रथ के चक्के मानो उनकी रास्ते पर बिछायी आँख को कुचलकर चले गये हों, इस प्रकार जिन्हें दिखना था वे कृष्ण एकाएक आँखों के आगे से अदृश्य हो गये थे।

देवभाग का पुत्र नन्द के पैर छूकर यशोदा की ओर मुड़ा, तभी उसके झुके हुए मस्तक पर एकाएक यशोदा की देह आ गिरी। यशोदा माता को मूर्च्छा आ गयी थी। नन्द ने उन्हें सँभाल लिया, उद्धव अपने सिर पर उष्ण अश्रु की वर्षा झेलता रहा।

जरासन्ध आ रहा है...

बृहद्रथ का प्रचण्ड भुजाओं वाला पुत्र जरासन्ध जैसे सागर के जल को मगर हिंडोलता है वैसे ही समूचे वातावरण को मथ रहा था। उसकी आँखें गुस्से से लाल हो गयी थीं। कंस के अग्निसंस्कार के लिए प्रज्वलित अग्नि मानो बुझे विना जरासन्ध की आँखों में प्रविष्ट हो गयी है, ऐसा प्रतीत होता था। रुक-रुक कर उसकी नजर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी युवा पुत्रियों पर पड़ रही थी।

अस्ति और प्राप्ति, जरासन्ध की दुलारी बेटियाँ थीं। ये नाम भी जरासन्ध ने स्वयं पसन्द किये थे। इन बेटियों को जब ससुराल विदा किया तब उत्तम आभूषणों से सजी दोनों सुन्दरियों की शोभा देखकर उसकी आँखें ठण्डा गयी थीं। मथुरा का एकछत्र शासन करते कंस के यहाँ वे सुखपूर्वक रहेंगी ऐसा उसे विश्वास था।

आज इन्हीं युवतियों के श्वेत वस्त्र देखे नहीं जाते थे और एक समय जहाँ पैर तक लम्बे केश थे, उस मस्तक पर चिपककर बैठे श्वेत वस्त्र देखकर उसका कलेजा फटा जाता था। दोनों छोटी थीं, तब जरासन्ध ने अनेक बार दुलारते हुए कहा था, "ये गंगा और जमुना जैसी अस्ति और प्राप्ति तो बड़ी होकर अपनी-अपनी राह लग जायेंगी और हिमालय जैसा मैं अकेला पड़ा रहूँगा।" आज इन दोनों पुत्रियों की आँखों से गंगा-जमुना बह रही थीं। नदी का प्रवाह जैसे आगे बढ़ने के बदले अचानक पीछे मुड़े और तब जो खलबली मच जाय, वैसी ही खलबली जरासन्ध के हृदय में मच रही थी।

अस्ति और प्राप्ति कुछ बोल नहीं पा रही थीं। क्या हुआ, इसका ब्यौरा दूतों द्वारा जरासन्ध के पास पहुँचा था। पर पुत्रियाँ बोलने की सहज चेष्टा करतीं कि तत्काल ही आसुँओं के वेग में उनके शब्द बह जाते। "पिताजी, यक्षों को जीतने वाले जगत्पति, एक पामर ग्वाले के हाथ मारे गये···" अस्ति ने कहा और हिचकियों ने उसे आगे कुछ कहने न दिया।

"वह महाबली पति हमारा एकमात्र आश्रय थे, पिताजी। उनके परम-आश्रय में कल्पतरु के नीचे मनुष्य जिये, उस प्रकार हम जीती थीं। पर उनसे भी बलवान काल ने हमारा वह आश्रय काट डाला···" प्राप्ति ने कहा।

जरासन्ध सान्त्वना के दो शब्द कहने चला, पर एक ओर से अपार क्रोध और दूसरी ओर से अपरिमित दुःख के कारण दो सागर आमने-सामने उफ़न रहे हों ऐसा अनुभव कर रहा मगधपति एक शब्द भी बोल न पाया। उसने दोनों हाथ बढ़ाकर दोनों पुत्रियों के माथे पर रक्खे, और मानो अग्नि से छू गये हों इस प्रकार दोनों हाथ वापस खींच लिये। जिन हाथों से बेटी के घुँघराले बालों को सहलाया था, उन हाथों से मस्तक की त्वचा का स्पर्श हुआ कि तत्काल ही जरासन्ध की आँखों में दावानल भभक उठा।

"पुत्रियो, आर्यावर्त में सभी मेरे नाम से काँपते हैं। मेरी पुत्रियों को वैधव्य देकर उस ग्वाले ने यदुकुल की नारियों के वैधव्य को निमन्त्रण दे दिया है। मैं उसका संहार करूँगा। उसकी सहायता करने आये लोग भी मुझसे नहीं बचेंगे।"

"पिताजी", अस्ति ने कहा, "रणभूमि में युद्ध करने के लिए घर से निकलने के अलावा जिन्होंने कभी भी भूमि पर पैर नहीं रक्खा था, उस नाथ को घास और धूल में धूसरित देखकर हमारे हृदय को क्या-क्या नहीं होता !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मुझे तो अभी भी समझ में नहीं आता, मानने को जी नहीं चाहता कि उस पन्द्रह वर्ष के ग्वाले ने महापराक्रमी कंस को सिंहासन पर से घसीटा कैसे ? उसने चाणूर मारा, ऐसा तुम कहती हो। वह कुवलयापीड तो कंस की राज-सवारी का हाथी था, है न ! उसका भी उसने वध किया ? मैं नहीं मानता, जरूर कहीं कोई दग़ाबाजी हुई है !" जरासन्ध ने कहा।

"नहीं पिताजी, कृष्ण ने ही उनका वध किया। एकदम बालक जैसे दिखायी देते उस मेघवर्ण किशोर को देखकर हमें तो कितनी दया आयी थी। चाणूर से वह छोकरा मुष्टियुद्ध में प्रवृत्त हुआ तब सभी लोग हा-हा कर उठे थे। ऐसा मनमोहन बालक अभी 'था', अभी 'नहीं था' हो जायेगा, ऐसा लगता था, पर किसे पता था कि इस रूपवान किसलय के अन्दर राक्षस की ताकत भरी होगी।" प्राप्ति ने कहा।

"हाँ पिताजी, देवदूत का मुखौटा लगाकर मानो काल स्वयं लड़ने आया था। हम तो अवाक् हो देखती रहीं और घड़ी के छठे भाग में उस कलमुँहे ने हमारे प्राणनाथ को सिंहासन पर से घसीट लिया और हमारे पति का सूर्य जैसी प्रभावशाली शोभा धारण करता मुकुट धूल में लोट गया।" अस्ति ने बात पूरी की।

जरासन्ध मानो समूचा दृश्य अपनी आँखों के आगे घटित हो रहा हो ऐसा अनुभव कर रहा था। उसने तुरन्त ही चीखकर कहा, "कहाँ है सहदेव ?"

एक सेवक सहदेव को बुलाने गया।

जरासन्ध ने पुत्रियों की ओर देखकर कहा, "बिटिया, तुम लोग अन्तःपुर में जाओ। जब तक मैं यदुकुल का नाश नहीं कर लूँगा, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा।"

अस्ति और प्राप्ति ने पिता को प्रणाम किया। श्वेत परिधानधारी दो पुत्रियों के मुख पर की व्यथा देखकर जरासन्ध का जी काँप गया।

कमरे में अकेला रह गया तब वह टहलकर खिड़की के पास जाकर खड़ा हुआ। राजमहल में अपार शान्ति फैली थी। सम्राट् खिड़की के पास खड़े हैं यह देखकर दूर द्वार पर खड़े सन्तरी सावधान होकर एक-दूसरे से बात किये बिना पहरा देने लगे। मगध से प्रवास पर आये और राजमहल देखने आये थोड़े से लोग बाहर ही खड़े थे। वे सम्राट् को देखकर शान्त हो गये। थोड़ी देर बाद उनमें से एक ने पुकारकर कहा, "मगधपति सम्राट् जरासन्ध की जय हो…" और 'जय हो' सभी ने सम्मिलित स्वर में कहा।

हमेशा से ये शब्द जरासन्ध के लिए मादक पेय का काम करते थे। वह जब भी थक जाता, तब खिड़की के पास जाकर खड़ा रहता और लोगों का जयनाद सुनकर अनोखा उत्साह अनुभव करता था। पर आज मानो लोगों के जयनाद में से जान निकल गयी हो ऐसा उसे लगा।

वह सोचने लगा—ये सन्तरी शायद गुपचुप बात करते होंगे, "देखो ये हैं हमारे सम्राट्। बेटियाँ विधवा होकर आँगन में बैठी हैं, फिर भी बैर पच नहीं रहा है !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और लोग भी हँसी उड़ाते होंगे—"मगधपति सम्राट् जरासन्ध यों तो समूचे आर्यावर्त को कँपाते हैं—और एक ग्वाले ने उनके दामाद की हत्या कर डाली फिर भी वे चुप क्यों बैठे हैं ?"

जरासन्ध ने जोर से खिड़की बन्द कर दी और पिंजरे में बन्द सिंह की तरह कमरे में चक्कर काटने लगा। इतने में द्वार पर थपथपाहट हुई।

जरासन्ध ने पूछा, "कौन ?"

"मैं सहदेव, पिताजी।" बाहर से उत्तर आया और सहदेव ने अन्दर प्रवेश किया।

सहदेव बाँका सशक्त जवान था, इस समय वह दिखती स्वस्थता के पीछे ज्वालामुखी-सा भरा बैठा हो ऐसा दिखाई पड़ रहा था।

"सहदेव, अपनी बहनों से मिले ?" जरासन्ध ने पूछा और सिर से पैर तक सहदेव पर दृष्टिपात किया।

"हाँ, पिताजी।" सहदेव ने कहा।

"तो अब क्या विचार है ?" जरासन्ध ने पूछा और सहदेव क्या उत्तर देता है यह सुनने को तत्पर होकर बैठ गया।

"और क्या विचार होगा, पिताजी ! मैंने तो अभी ही अपने मन्त्रियों, हंस और डिम्भक के साथ मन्त्रणा की है और सेना को तैयार करने हेतु सेनापति विचक्र को सूचना भी दे दी है।" सहदेव ने कहा।

पुत्र का उत्तर सुनकर जरासन्ध को सन्तोष हुआ। उसने कहा, "दूतों को तैयार करो और मैं जहाँ-जहाँ कहता हूँ वहाँ-वहाँ सन्देश भेजने का प्रबन्ध करो। करूष देश में दन्तवक्त्र को सन्देश भेजो। चेदि से शिशुपाल को बुलवा ले। कलिंग में पौण्ड्र से कहला दो कि अपनी सेना के साथ आ जाये। कुण्डिनपुर में भीमक—नहीं भीमक को नहीं, युवराज रुक्मि को सन्देश भेजो। मद्र के शल्य को और सौभ के शाल्य को बुला लो। गान्धार के सुबल और काश्मीर के गोनर्द को कहलवा दो। हस्तिनापुर भी एक दूत भेजना, भीष्म के पास नहीं, दुर्योधन के पास भेजना, वह मेरा सन्देश पाते ही आये बिना नहीं रहेगा।"

"पिताजी, ऐसी महाबलवान सेना किसलिए एकत्र कर रहे हैं—और वह भी एक ग्वाले को मारने के लिए ? मैं और सेनापति विचक्र अकेले ही उसके लिए काफी हैं।" सहदेव ने कहा।

जरासन्ध ने किंचित् स्मित किया। "सहदेव तू वीर है, पर इन दो ग्वालों के बल को मैं लेशमात्र भी कम करके आँकना नहीं चाहता।"

"पिताजी, तो क्या आप ऐसा मानते हैं कि मैं और विचक्र मगध की सेना लेकर जायें तो ये दो ग्वाले या यादवों की मुट्ठी भर सेना हमें मार भगायेगी ?" सहदेव ने कहा। "हम इन दोनों छोकरों को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दें रहे हैं, ऐसा लगता है !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"सहदेव…"

"पिताजी ! आप मेरे बाहुबल में और मगध की सेना की वीरता में विश्वास रक्खें।…"

"बेटे, तुम सबके वीरत्व के कारण ही तो मैं सम्राट् के रूप में प्रकीर्तित हुआ हूँ", जरासन्ध ने कहा, "पर चाणूर और मुष्टिक को मैं पहचानता था। मैं तो राजपुरुष था, अतः राजसभा के मल्लों के साथ युद्ध करने में शामिल नहीं हो सकता था, पर उन लोगों को अच्छे-अच्छे मल्लों के साथ लड़ते और उन्हें जमीन सुँघाते मैंने देखा है, और महापराक्रमी कंस का प्रताप और प्रभाव तो तुमने भी क्या नहीं देखा है ! इन दोनों छोकरों ने चाणूर और मुष्टिक को हराया। और चाणूर जैसे मल्ल के साथ थका देनेवाला युद्ध करने के बाद कृष्ण ने कंस को एक झटका देकर सिंहासन पर से नीचे पछाड़ दिया। इन दोनों का तिरस्कार करते हुए हम उन्हें ग्वाले भले कहें पर इनकी शक्ति के बारे में यों असावधान रहना, हमें नहीं पुसायेगा।"

"लेकिन, पिताजी…" सहदेव कुछ कहने जा रहा था, कि जरासन्ध ने उसे रोकते हुए कहा—

"सहदेव, तू अभी यादवों की कुशलता नहीं जानता। कंस के प्रभाव में अक्रूर, वसुदेव या उग्रसेन जैसे किसी के भी प्रताप से तेरा परिचय नहीं हुआ है। हम दोनों इस समय यहाँ बात कर रहे हैं और यह बात भी इस समय यादवों की अन्तरंग सभा में चर्चा का विषय बन चुकी हो तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। तुम और विचक्र सेना तैयार करो। आर्यावर्त के कितने ही राजा जरासन्ध को परास्त करने हेतु उत्सुक हैं, क्या तू यह नहीं जानता ? वे सब अब इस भगवान कहलानेवाले वसुदेव के पुत्र के नीचे इकट्ठे होकर, मगध सेना को परास्त करने का उपक्रम करेंगे।"

"हाँ, अब कुछ समझ में आया।" सहदेव ने कहा।

"और एक बार यदि मगध की पराजय हो गयी तो उस ग्वाले को भगवान कहकर पूजनेवाले गिरिब्रज में आकर उसके मन्दिर बनवायेंगे।" जरासन्ध ने कहा।

सहदेव को सारी परिस्थिति समझ में आ गयी। यादवों के साथ युद्ध केवल यादव और मागधों के बीच युद्ध नहीं था, वह तो जरासन्ध के सम्राट्-पद की कसौटी बननेवाला था। इसमें तनिक-सी भी जोखिम नहीं उठायी जा सकती। उसने प्रणाम करके कहा, "पिताजी, अब सब कुछ दीपक की भाँति स्पष्ट हो गया है। मैं अभी तुरन्त सर्वत्र दूत भेजने का प्रबन्ध करता हूँ।"

"इतना ही काफी नहीं है, पर अभी तत्काल हमें महारथियों की सभा बुलानी है।" जरासन्ध ने कहा।

"अभी !" सहदेव को आश्चर्य हुआ।

"हाँ, उस सभा में मुझे युद्ध की घोषणा करनी है, मगध की प्रजा को विश्वास हो जाये कि उसका सम्राट् चूड़ियाँ पहनकर नहीं बैठा है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मगध के राजप्रासाद में एक नगाड़े पर डौंड़ी पिटी। यह वहाँ से कोस भर दूर नगर-उद्यान में सुन पड़ी, वहाँ के रक्षक ने डौंड़ी पीटी, वह नगर के चौक में सुनाई दी। इस प्रकार थोड़े से समय में सारे नगर में समाचार पहुँच गया और गिरिव्रज में बस रहे सभी महारथी अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होकर राज-दरबार की ओर चल पड़े।

मगधपति जरासन्ध भी शस्त्र-सज्जित हो रहा था। युद्ध-क्षेत्र में जाता था तव वह जो प्रिय कवचं पहनता था, वही उसने पहना और कमर पर तलवार बाँधने से पहले उसने उसे म्यान से बाहर खींचकर देखा। उसकी चमकती धार में अपनी विकराल आँखों का प्रतिबिम्ब देखा और उस धार में कितने मनुष्यों का रक्त बहा था, इसकी उसे याद आयी। तलवार को म्यान में रखते हुए वह मन-ही-मन बोल उठा, "उस मेघश्याम वर्ण के किशोर को इसी तलवार से मैं रेत डालूँगा।"

और जरासन्ध की आँखों के आगे एक रूप खड़ा हुआ। मेघश्याम वर्ण का एक तरुण अमृतभरी आँखों से मृदु हास्य कर रहा था। प्राप्ति कह रही थी, "ऐसा मनमोहन बालक अभी 'था', अभी 'नहीं था' हो जायेगा''''" न जाने क्यों वह पति के हत्यारे की नहीं, बल्कि किसी और की बात कह रही थी। अभी भी जरासन्ध को मानो उस रूप का ध्यान करते हुए अपना सारा क्रोध पिघल जा रहा हो ऐसा लगा।

"महाराज।" विचक्र की आवाज सुनाई दी। जरासन्ध सीधा हो गया, उसने सिर घुमाकर पूछा, "कौन ?"

"मैं विचक्र हूँ, महाराज। राजसभा का समय हो गया है।"

जरासन्ध ने कहा, "जाइये, सभा में घोषणा कराइये कि कृष्ण और बलराम का काल यादवों का संहारक, रुद्र और आर्यावर्त की धरती को अपने पदप्रहार से कँपानेवाला, जरासन्ध राजसभा में आ रहा है।"

एक मन था—वह भी गया

कृष्ण को जिसका भय था वही होकर रहा। कृष्ण ही आते हैं, ऐसा मानकर उत्साह से भरकर सीमा तक दौड़ गयी यशोदा माता ने कृष्ण को नहीं देखा, अतः उन्मत्त होकर वह अपने आप से कुछ बोल रही थीं। कृष्ण के जाने के बाद अनेक बार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यशोदा माता ऐसी उन्माद-ग्रस्त हो जाती थीं।

"कौन, मथुरा के मेहमान आये हैं ?" यशोदा माता बोल रही थीं, "उन्हें बैठाओ। कृष्ण के बापू से कहो उनका स्वागत करें। कृष्ण अब आता ही होगा। अरी सुमति, जरा देख तो, गोधन आया कि नहीं। यह छोरा भारी नटखट हो गया है और उसके बापू तो उसे सिर चढ़ाते हैं, कुछ भी नहीं कहते। रात हो गयी। गाँव के सभी ढोर आँगन में बँध गये, तब यह कनैया कुँवर अभी सिवान पर चँदरी गाय को हँका कर बाँसुरी बजा रहा होगा।"

यशोदा ने आकर उद्धव और नारद के लिए माँजे हुए पात्र में जल लाकर रखा। उद्धव दीपक के मद्धिम प्रकाश में यशोदा का चेहरा देखते ही रह गये। उनकी आँखें पथरायी हुई थीं, उनके प्रौढ़ चेहरे पर आर्द्रता थी।

"माँ मैं मथुरा से आया हूँ, देवभाग का पुत्र उद्धव।" उद्धव ने कहा।

"अच्छा किया जो आया, मेरे लाल।" यशोदा ने उसकी आवभगत की और फिर नन्द से कहा, "आप यहाँ बैठे हैं, तो किसी को भेजिये न कि कृष्ण और बलराम को बुला लाये" और फिर आँगन में झाँककर गौशाला की तरफ देखा। "अरे इन गूँगे पशुओं की भी बुद्धि बड़ी तेज है, रात हुई नहीं कि खूँटे के पास आकर खड़े हो गये। पर इन दोनों लड़कों को तो घर की फिकर ही नहीं है। आज कोई गोपी बिचारी मथुरा में दही बेचने जाती रही होगी, उसके पास से लूटकर कुछ प्राप्ति की होगी, तभी घर याद नहीं आ रहा है। बाकी तो पेट में गड्ढा पड़ा कि फौरन ही घर में आकर तरह-तरह की बहानेबाजी करेगा—माँ, मुझे पेट में पीड़ा हो रही है, खाने को दे न !" इतना कहते-कहते यशोदा पुनः अन्दर के कमरे में चली गयी।

नन्द ने निःश्वास छोड़कर कहा, "अनेक बार उसे ऐसा हो जाता है। घण्टों तक वह इसी स्थिति में रहती है। कृष्ण और बलराम की राह देखती, आधी रात तक जागती बैठी रहती है।" फिर कोई कहता है, "भूल गयी, अक्रूर कृष्ण को लेकर गये थे। तब उसे होश आता है, पर उस समय का उसका मौन इस समय के उन्माद की अपेक्षा कहीं अधिक असह्य होता है।"

उद्धव मानो स्वयं अपराधी हों ऐसे बैठे थे। उसने कहा, "एक समय मैं भी कृष्ण के लिए विकल रहता था, पर कृष्ण के लिए ऐसा उन्माद तो मैंने कही नहीं देखा।"

नारद ने मन्द स्मित किया। अन्दर से थोड़ी-थोड़ी देर बाद यशोदा की आवाज सुनाई देती थी। "ये आन गाँव के मेहमान क्या सोचेंगे, इन लड़कों के बारे में ! घर की कोई परवाह ही नहीं है, दोनों को ? इनमें भी वह कृष्ण ! एक बार तो ऊखल से बाँधा था। कितना रोया था, बाप रे बाप ! सिसक-सिसककर रोता था और अब ऐसी शरारत नहीं करूँगा ऐसा कहता जाता था, लेकिन फिर वही का वही।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ोस की दो-एक स्त्रियाँ इस समय यशोदा के पास ही बैठी थीं और उसका मन दूसरी बातों में लगाने का प्रयत्न कर रही थीं।

"उद्धव", नारद ने कहा, "आप श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर आये हैं, सच है न !"

उद्धव ने कोई भी उत्तर नहीं दिया।

उद्धव को याद आया। वह और कृष्ण यमुना में नहाने गये थे और कृष्ण ने निःश्वास भर कर कहा था, "उद्धव, 'मोहे ब्रज बिसरत नाहीं'।"

"आप इतने धीर और गम्भीर होकर भी ऐसी पोची बात करते हैं।" उद्धव ने टिप्पणी की थी और कृष्ण ने स्मित सहित उद्धव को उत्तर दिया था—

"उद्धव, तुम एक बार ब्रजभूमि हो आओ, फिर कठोर मन रखने की बात करोगे तो मान जाऊँगा।"

कृष्ण के ब्रजप्रेम की बलराम खूब खिल्ली उड़ाते थे, "उद्धव, यह कृष्ण दिखता तो छोटा है, पर ब्रज में इसने कैसी-कैसी लीलाएँ की हैं, इसका तुम्हें क्या पता, अब श्रीमान् ऐसी सेर-सेर भर की साँसें ले रहे हैं।"

उद्धव स्वयं ऐसे उपहास में शामिल होते थे, यह उन्हें याद आया और फिर सोचा—मथुरा में जिस कृष्ण को देखा, और वृन्दावन में नन्दग्वाल के आँगन में बैठकर जिस कृष्ण को अनुभव कर रहा हूँ, इन दोनों में तो कोई मेल ही नहीं बैठता ! यहाँ यशोदा माँ की आँख की चमक में कृष्ण जीते हैं।

और देवकी ने तो कारावास में वर्षों तक कृष्ण के दर्शन हेतु तपस्या की थी, पर यशोदा की आँख में जो अलौकिक चमक अंजित है, उसका तो स्पर्श भी देवकी की आँखों में देखने को नहीं मिला था।

स्वयं उद्धव वर्षों तक कृष्ण को ढूँढ़ता रहा था। देवकी उद्धव को गोद में लेकर, उसके बालों में हाथ फेरते हुए उसके भाल का चुम्बन लेती और कहती, "मेरा लाल ठीक इस उद्धव जितना ही बड़ा हुआ होगा।" उद्धव तब बहुत छोटा था, तो भी समझ सकता था कि वह जिसके स्नेह का निमित्त बना है वह कोई असाधारण व्यक्ति है।

उद्धव थोड़ा बड़ा हुआ। अतः कोने-अतरे कही जाती बातें सुनता था, "देवकी का पुत्र तो कहीं गुप्त रूप से पल रहा है। वह तो भगवान विष्णु का अवतार है।" और उद्धव ने उसी क्षण से उस भगवान के अवतार की प्रतीक्षा में, और वह मिल जाये तो फिर उसकी सेवा में जीवन व्यतीत करने का संकल्प कर लिया था, और वह घण्टों पहरों कृष्ण के ध्यान में मग्न रहता था। कभी-कभार उसे अपनी तन्मयता के किसी क्षण में कृष्ण दिख भी जाते थे, पर वह स्वरूप उसके मन में एकदम ठीक से बैठता नहीं था। वह कृष्ण के दर्शन के लिए बिसूरता, मथुरा के राजमहल में स्वादिष्ट भोजन छोड़कर घण्टों यमुना के तट पर बैठा रहता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवकी का पुत्र यदि भगवान होगा, तो इन बहते जलों में से प्रगट होगा, झूमते वृक्षों की डालों पर से झाँकेगा, उड़ते पक्षी की भाँति आकाश में से उड़कर आयेगा। वह तो किसी भी ढंग से आ सकता है न ! ऐसी कल्पनाओं में डूबा उद्धव, उन क्षणों को याद कर रहा था।

पर उद्धव तो अकेला ही अकुलाता था। इस समय यहाँ केवल नन्द या यशोदा ही विकल नहीं थे, आँगन में बँधी गौएँ विकल थीं, दरवाजे पर लगे तुलसी चौरे विकल थे, बंशी के पोर विकल थे, मोरपंख के रंग विकल थे, झुका हुआ श्याम आकाश विकल था और आकाश के नक्षत्र विकल थे।

ब्रज के लोगों के साथ समस्त वातावरण, हरी-भरी प्रकृति मुरझा रही थी, इसका अनुभव चौपाल में पलंग डालकर नारद और नन्द के बीच सोया उद्धव कर रहा था।

वह ब्रजधाम आ रहा था तब कितना कुछ कहने-करने को सोच रखा था। सन्दीपन ऋषि के आश्रम में सीखे ज्ञानयोग के सूत्र मन में बैठाकर इस ब्रज के लोगों को कृष्ण की स्थूल-प्रीति त्यागकर, सूक्ष्म-प्रीति जोड़ने का उपदेश देने का उसने निर्णय किया था। कृष्ण सर्वत्र हैं, ऐसा कहने वह आया था। उसने अनुभव किया था कि कृष्ण सर्वत्र हैं। प्रातःकाल होने से पहले वह युमना-घाट पर स्नान करने गया तब यही प्रतीति उसे इससे भी अधिक तीव्रता से अनुभव हुई थी।

इन वन में बहती वायु मानो कृष्ण से लिपटने आ रही हो ऐसे ही उत्साह से अंग से लिपटती थी और अगले ही क्षण हताश होकर विखर जाती थी। वन में पीपल, बरगद, पलाश और अशोक के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष दूर-दूर कहीं कृष्ण दिखते हैं कि नहीं यह देखने हेतु एक दूसरे से ऊँचे हो उचक रहे हैं। ऐसा लगता था मानो नाग, पुन्नाग, चम्पा और आम के वृक्ष की हर डाल पर जैसे कोई कृष्ण छिड़क गया हो। कचनार, कदम्ब, केतकी के वृक्ष झुककर वायु लहरी का क्या कहना है, यह सुनने को कान लगाये हुए थे।

फूल ने भ्रमर से शायद कोई बात कह दी थी और भौंरे अपने गुंजन में वही बात कहते घूम रहे थे।

उद्धव भी कुछ ऐसे ही उन्माद की स्थिति में नारद से पूछ बैठा, "नारद, कहाँ है कृष्ण ? कृष्ण कहाँ है ?"

नारद हँस दिये। "उद्धव, मैं आपसे यह प्रश्न पूछूँ कि आप मुझसे पूछेंगे ? आप तो कृष्ण के पास से ही आ रहे हैं।"

उद्धव ने गहरा उच्छ्वास छोड़कर कहा, "नारद, यहाँ के वातावरण में कृष्ण इतने छा गये हैं कि मुझे, दिन-रात कृष्ण के साथ रहनेवाले को भी, कृष्ण के लिए तड़पने का जी करने लगता है।"

उद्धव की आँखें इस समय मानो वृन्दावन में कृष्ण को ढूँढ़ती हों इस प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चकरमकर कर रही थीं। मथुरा में तो कृष्ण और बलराम, यदुकुल के अग्रजों के साथ बैठकर जरासन्ध के व्यूह का प्रतिकार कैसे करना ऐसी योजना बना रहे थे। के राज्य में जिन पर भी अन्याय हुआ था वे न्याय करने की बात में जुटे रहते थे। कभी वह कुब्जा कृष्ण के लिए पुष्प और सुगन्धित द्रव्य लेकर आती तब कृष्ण थोड़ी देर मनबहलाव कर लेते। हाँ, मथुरा में कुब्जा में अपने सौन्दर्य के प्रति श्रद्धा प्रकट करके क्षणभर में उसे सुन्दर बना देनेवाले कृष्ण का थोड़ा मेल इस वातावरण के साथ बैठता था, पर मथुरा में वह कृष्ण तो शायद ही कभी-कभी दिखते थे।

नारद के साथ वृन्दावन के कुंजों में घूमते उद्धव की ज्ञान-गठरी की गाँठें एक-एक करके खुलने लगी थीं।

"इस कदम्ब पर बैठकर कृष्ण बाँसुरी बजाते थे।" नारद ने कहा। उद्धव ने वहाँ गौर करके देखा तो जिस डाल पर कृष्ण जमकर बैठते थे, उस डाल पर किसी ने मोरपंख रखकर उस पर नागचम्पा के पीले फूल चढ़ाये थे।

"यहीं यमुना किनारे खेलते-खेलते एक बार उससे गेंद खो गयी थी—कहते हैं यहाँ से वे कूदे थे और कालियानाग के घर में जाकर वह गेंद ले आये थे।" नारद ने कहा।

नारद के मधुर खनकते स्वरों में कृष्ण की कथा सुनने के लिए ही यमुना-तट पर झुके कचनार के वृक्ष पर एक गौरैया आ बैठी थी। वायु भी निष्कम्प बन गयी थी।

वे टहलते-टहलते एकदम गोवर्धन पर्वत के पास जा पहुँचे। नारद ने वहाँ पर्वत के नीचे एक बड़ी खोह की ओर उद्धव का ध्यान आकर्षित किया, "उद्धव, कहते हैं कि गोकुल पर जब इन्द्र का कोप हुआ और मेघराज ने मर्यादा त्याग दी, तब समूचा नन्दग्राम आश्रय लेने यहीं आया था। वह आश्रय पहले किसी ने नहीं देखा था। देखनेवाले तो कहते हैं कि ऐसी गुफा यहाँ पहले थी ही नहीं। कृष्ण ने छोटी अँगुली से यहीं से गोवर्धन को उठा लिया था।"

"देवर्षि, कृष्ण कहाँ हैं, कहाँ नहीं हैं ?" उद्धव पूछ ही बैठे।

नारद ने कहा, "उद्धव, मुझे भी यही पूछना है। आप तो सद्भागी हैं कि अपने चर्मचक्षु से कृष्ण के दर्शन कर सके हैं। मैं तो माधव को ढूँढ़ने निकला हूँ। वे न तो मथुरा के कारागार में थे, न मिले मधुवन के इन कुंजों में। उनके स्वरूप को मैंने थोड़ा देखा है यशोदा की फैली आँखों में और थोड़ा देखने को मिला राधा की शिथिल दृष्टि में।"

"राधा !" उद्धव ने धीमे से कहा, "कृष्ण यह नाम तो बारबार रटते हैं। उसके लिए तो मुझे सन्देश भी दिया है। कल सिवान पर सारा गाँव आया था, तब वह नहीं थी क्या ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"नहीं !" नारद ने उत्तर दिया, "पर यहाँ से अब हम वृषभानु के यहाँ ही चल रहे हैं। वहाँ हम ब्रज की देवी राधा से मिल सकेंगे।"

राधा ने उद्धव की ओर देखा। मानो अनेक युगों से वह उद्धव को पहचानती हो ऐसे सहज भाव से उसने कहा, "आओ, उद्धव।" न जाने कितने समय बाद स्मित के पक्षी ने राधा के होठ पर अपना नीड़ बनाया। "मथुरा के लोग वृन्दावन की बाट में अकारण ही भटक के तो नहीं आ गये होंगे ? आप क्या लेने आये हैं ?"

उद्धव के चेहरे पर से रंग उड़ गया। उसने राधा के लिए हर समय रुदन करती, अश्रुधार बहाती एक स्त्री की कल्पना की थी और बदले में उसने तो उद्धव से तुरत ही ऐसा पूछ लिया। उद्धव ने बिखर गयी स्वस्थता को समेटते हुए कहा, "मैं तो कृष्ण का सन्देश देने आया हूँ।"

"किसका ?" राधा ने पूछा

"कृष्ण का, वसुदेव और देवकी के पुत्र का।"

"ठीक से पहचानती तो नहीं, हाँ इस नाम के एक लड़के को मैं पहचानती थी, वह नन्द का बेटा था। पर हमारे यहाँ के लोग माँ-बाप के नाम नहीं बदल डालते।" राधा ने कहा।

"देवी," उद्धव ने कहा, "आप कृष्ण के साथ अन्याय कर रही हैं। वह तो नन्द और यशोदा को माँ-बाप से अधिक मानता है।"

"आपकी वाणी बड़ी मीठी है, देवभाग के पुत्र। माँ-बाप से अधिक, माने माँ-बाप तो नहीं ही न ! इतना तो हम गँवई गाँव के गँवार लोग भी जानते हैं। जाने दीजिए, मैं किसी वसुदेव के पुत्र को नहीं पहचानती और हम वृन्दावन की स्त्रियाँ अनजाने मर्दों के सन्देश नहीं सुनतीं। आप कोई और बात करें। हमारा गाँव अच्छा लगा आपको ? आप कुछ दिन यहाँ रुकेंगे न ?"

उद्धव को समझ में नहीं आया कि वह क्या जवाब दे। उसने कहा, "देवी, वृन्दावन आने के बाद मथुरा जाने का मन ही नहीं होता, पर कृष्ण को आपके समाचार पहुँचाने ही होंगे। परसों तो यमुना में स्नान करते हुए वे आपकी याद में अचेत भी हो गये थे।"

राधा की आँखों में न जाने कहाँ से बादल घिर आये। उसने मन को कठोर बनाने का प्रयत्न किया पर अनायास थोड़े से बिन्दु तो भूमि पर गिर ही पड़े।

"राधिकाजी" उद्धव ने कहा, "कृष्ण तो वहाँ फँस गये हैं। वह मधुवन का जीवन राजकाज के दाँव-पेंच में फँस गया है। वह मथुरा छोड़ दें तो कंस के मित्र मथुरा का नाश किये बिना चैन नहीं लेंगे। वह क्या करें ? यहाँ आ जायें तो वहाँ के लोगों का क्या होगा ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"उद्धव, आप तो मुझे नहीं पहचानते, पर कृष्ण तो पहचानते हैं। लीजिए, यह मेरी भेंट उन्हें दे दीजिएगा।" राधा ने हरे बाँस की एक बाँसुरी उद्धव के हाथ में रख दी। "यहाँ वे आधी रात वंशी बजाते, तब नंगे पैर झाड़-झंखाड़, साँप-बिच्छू या बाघ-भेड़िये का भय एक ओर रखकर हम सब यमुना-तट की ओर दौड़ जाती थीं। उनसे कहना कि गहरा निःश्वास हवा में न छोड़ें, उसे इस बाँसुरी में भरें। वह उसके पोर-पोर में घुट कर मेरे अन्तःकरण तक पहुँच जायेगा। वह वंशीनाद सुनकर मथुरा में क़ोई जागे या न भी जागे, वृन्दावन से एक बावरी तो अवश्य ही दौड़ी चली आयेगी।"

उद्धव एक क्षण राधा की चमकती आँखों की ओर और दूसरे क्षण अपने हाथ की वंशी की ओर देखते रह गये। उसने कहा, "देवी ! कृष्ण तो सर्वव्यापी हैं। उनका स्थूल-सम्बन्ध आप मन में क्यों बाँधे बैठी हैं ! उनके निर्गुण रूप के ध्यान से मन को जोड़िये।"

राधा ने उद्धव की ओर देखा। उस दृष्टि में असहनीय ज्वाला भरी थी। उसने कहा, "उद्धव, आप मथुरावासियों के दस-बीस मन होते होंगे। हमारा तो एक ही मन था और वह माधव के साथ चला गया !"

कृष्ण यहाँ नहीं हैं...

नारद ने ब्रजभूमि की रज आँखों पर लगायी और फिर हृदय-सरोवर में रख ली। उनके मुँदे हुए नेत्रों के समक्ष वृन्दावन में बीते दिन तैर रहे थे। इस पुण्य-भूमि में बिताया प्रत्येक क्षण मानो शब्द बनकर कहता था—'रुक जाओ'।

यमुना में पड़ती नारद की परछाईं आन्दोलित तरंगों में हिल उठी और किंचित् उपालम्भ सहित कह उठी—'भूल गये। आये थे तब तो कहा था कि कृष्ण यहीं है, यहीं उन्हें ढूँढूँगा। अब फिर कहाँ अभिसार करने चल पड़े हो ?

नारद को यह प्रश्न सहन नहीं हुआ, अस्तु व्याकुल होकर ऊपर देखने लगे और अनजाने ही उनकी अँगुलि वीणा से छू गयी और उसमें से भी ब्रजभूमि के वातावरण में बसा चीत्कार ही मानो जाग उठा।

यह भूमि छोड़ते हुए नारद के पैर उठ नहीं रहे थे। नन्द और यशोदा के साथ बिताये दिनों में वे कितनी ही बार कृष्ण के बहुत निकट आ गये थे। राधा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदय के सिवा कृष्ण कहीं और हो सकते हैं, यह माना ही नहीं जा सकता था। कृष्ण के साथ ओतप्रोत ब्रज के मानवों के स्नेह में भींजने के बाद नारद के लिए यहाँ से विदा लेने का काम अत्यन्त विकट था।

देवर्षि नारद ब्रजभूमि से विदा लेने का विचार कर रहे हैं, यह समाचार प्रवाहित हुआ कि ब्रज के लोगों की आँखों में उदासी छा गयी। किसी ने कुछ भी नहीं कहा। केवल सब लोग कुछ अधिक शान्त हो गये और इन सबकी शान्ति नारद को असह्य हो उठी।

ब्रजभूमि तो मानो अब वज्रपातों की आदी हो गयी थी। एक बार अक्रूर आये और बलराम तथा कृष्ण को लेकर चले गये।

उद्धव आये। आये तव तो ज्ञान की सरिता बहाते आये थे। पर गये तव एक हाथ में यशोदा माँ का दिया गोरस पात्र था, दूसरे हाथ में राधिकाजी द्वारा दी हुई बाँसुरी थी। उद्धव गये तो ब्रज में से मानो पुनः कृष्ण चले गये हों, ऐसा सव लोग अनुभव कर रहे थे।

और अब इतने दिनों तक जिनकी वीणा की झंकार ने इस ब्रजभूमि के वातावरण को सह्य बनाया था, वह देवर्षि नारद भी जाने की बात कर रहे हैं !

कृष्ण गये तव सब लोग रोये थे, रथ के पीछे दौड़े थे। उद्धव गये तब सब लोग गुमसुम वन गये थे, पर नारद जानेवाले हैं यह सुनकर न तो कोई रोया, न गुमसुम बना। वे सब केवल उदास हो गये और रुदन या अनमनेपन की अपेक्षा इस मौन उदासी का भार बहुत अधिक था।

"नारद, आपको लगता होगा कि ये ब्रज के लोग कैसे हैं कि इतना भी नहीं कहते, रुक जाइये," नन्द ने कहा।

नारद अपने अन्दर घुमड़ते प्रश्न को नन्द के मुख से निकलता सुनकर चौंक उठे। वे स्वस्थ हों, इससे पहले ही नन्द ने कहा, "देवर्षि, आप जैसे सुरलोक के अतिथि जितने दिन भी रहे, हमारा उतना अधिक भाग्य, पर हमारे बीच से कृष्ण जैसे बसन्त को गँवा देने के बाद इस सूखे उपवन में हमारे दुर्भाग्य का हिस्सा बटाने के लिए किसी और को हम रोकें भी तो कैसे ?"

नन्द के ये शब्द सुनकर नारद विह्वल हो उठे। उन्होंने कहा, "नन्द, कभी-कभी जी करता है कि यहीं रह जाऊँ। पर कृष्ण से मिलकर मुझे बहुत कुछ समझना है और उनके साथ इस मृत्युलोक में मेरी एकाध भेंट हो जाय तो दुखी मानव जाति के उद्धार हेतु कोई रास्ता निकल सकेगा।"

नन्द ने कहा, "देवर्षि, इस ब्रजभूमि के कण-कण में कृष्ण से मिलने की उत्कण्ठा है। पर आप इस उत्कण्ठा की बात कृष्ण से मत कहियेगा।"

नारद को आश्चर्य हुआ। उन्होंने नन्द की ओर देखकर कहा, "क्यों, ऐसा क्यों कहते हैं ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"देवर्षि", नन्द बोले, "मेरे साथ तो विधाता ने भी दगा करके रातोंरात मेरे पुत्र को पराया बना दिया। पर उसके पीछे छुपा संकेत अब समझ में आ रहा है। इसी से अब कृष्ण के विरह की वेदना तो है पर उसके लिए कोई आग्रह नहीं है। आज जरासन्ध और अन्य अधर्मी राजा आर्यावर्त का नाश करने को तैयार हुए हैं; और कृष्ण पुनः एक बार गोवर्धन धारण करके खड़े हैं, पर इस समय उनकी छोटी अँगुली की स्थिरता पर मुट्ठी भर ग्वालों का नहीं, समूचे आर्यावर्त का आधार है। ब्रजभूमि का ध्यान करके वे तनिक भी दबें या डिगें, यह मैं नहीं चाहता।" नन्द ने बात पूरी की, फिर दूसरी ओर मुँह करके आँख के कोने में छलक आये आँसू पोंछ डाले।

अब वृन्दावन की सीमा पूरी हुई थी। नन्द ठहरे। नारद को अब विलग होना था। नारद ने एक बार फिर ब्रज की धूलि हाथ में ली और कहा, "नन्द, इस भूमि की धूलि मैं मस्तक पर चढ़ाता हूँ, इसका कारण यह नहीं कि कृष्ण कभी इस भूमि पर चले थे। इसका कारण तो यह है कि यह भूमि नन्द, यशोदा और राधा के आँसुओं से भीजी है, इसी कारण यह पवित्र है और युग-युगान्तर तक पवित्र रहेगी।"

इतना कहकर नारद मथुरा की दिशा में आगे बढ़ गये। अब पीछे की ओर तरसती आँखों से नारद को देख रहे नन्द से आँख मिलाने का नारद में साहस न था। उन्होंने स्नेह के अश्रु से गीली बनी इस पगडण्डी पर हृदय कठोर करके पैर उठाये थे।

नारद इसी प्रकार न जाने कब तक कहाँ तक चलते ही चले जाते, पर एकाएक उनकी गति में विक्षेप पड़ा। एक अत्यन्त चमकती कान्तिवाला तरुण मार्ग में आकर, प्रणाम करके कहने लगा—

"देवर्षि, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।"

"सुखी रहो, वत्स।" नारद ने कहा।

"देवर्षि, इस समय तो मध्याह्न सन्ध्या का समय हो गया है, सूर्य को अर्घ्य देने के बाद हमारे साथ ही प्रसाद लें, ऐसी बिनती है।" उस तरुण ने मृदु और मोहक स्वर में कहा।

अब नारद की दृष्टि युवक पर स्थिर हुई। मानो सूर्य का तेज शीतल बन गया हो, ऐसी आभा युवक के चेहरे पर फैली हुई थी। उसके चमकते काले केश और उसकी हीरे-सी जगमग करती आँखें देखकर नारद को किसी की याद आ रही थी।

"तुम्हारा परिचय क्या है, वत्स ?" नारद ने पूछा।

"देवर्षि, मैं तो कुरुकुल के युवराज महाराज सुयोधन का मित्र अंगराज कर्ण हूँ। मेरे स्वामी सुयोधन आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे।" कर्ण ने कहा।

"सुयोधन—कुरुश्रेष्ठ धृतराष्ट्र का पुत्र, है न ?" नारद ने पूछा, "आप लोग यहाँ कैसे ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"इस समय आर्यावर्त में क्या चल रहा है, लगता है आपको इसकी जानकारी नहीं है।"

"नहीं, अंगराज। मैं तो अब तक ब्रज में था।"

"ब्रज में ?" कर्ण के चेहरे पर थोड़ी लाली दौड़ गयी। "तीर्थयात्रा करने गये होंगे !" यहाँ शब्दों में थोड़ी उपहास की ध्वनि मिश्रित थी।

"अंगराज, तीनों लोक में इस जैसा कोई तीर्थ नहीं है,··· यह तो श्रद्धा की बात है। लेकिन आप किस तीर्थ को जा रहे हैं ?" नारद ने पूछा।

"इस तीर्थ का सम्बन्ध भी कृष्ण से ही है।" कर्ण ने कहा।

"आप मथुरा जा रहे हैं ?" नारद को अजीब-सा लगा।

"नहीं, मथुरा से चार योजन दूर, हमें सम्राट् जरासन्ध से मिलने का संकेत दिया गया है। हमारी सेना मुख्य मार्ग से गयी है, हम छोटे रास्ते से जा रहे हैं। सम्राट् के साथ व्यूह के सन्दर्भ में पहले से थोड़ी मन्त्रणा करनी है, इसलिए।"

"सेना, व्यूह और मथुरा से चार योजन दूर। यह किस बात की तैयारी है, अंगराज ?"

"सम्राट् जरासन्ध उनकी पुत्रियों को विधवा बना देनेवाले यादवों के वंश को निर्मूल करने हेतु मैदान में उतरे हैं। मथुरा के राजा कंस द्वारा निर्मित स्वर्णमण्डित कंगूरे अब उसके ही श्वसुर के हाथों लूटे जायेंगे।" कर्ण ने कहा।

"कर्ण, कौन··देवर्षि पधारे हैं ?"

शिविर में से भारी आवाज आयी और इसके साथ ही एक सुन्दर युवक बाहर आया। उसने देवर्षि को प्रणिपात किया और कहा, "देवर्षि, आज हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।"

"महाराज सुयोधन, मैं कभी आपका आतिथ्य ग्रहण करने हस्तिनापुर आऊँगा। अभी तो मैं जल्दी में हूँ। शाम होने से पहले मुझे मथुरा पहुँच जाना है।"

"मथुरा पहुँचने की आपकी जल्दी समझ में आनेवाली है। वह भस्मीभूत हो जाय उससे पूर्व उस मनोहर नगर को एक बार देखने का मेरा भी जी चाहता है। पर मैं तो असहाय हूँ। वहाँ नहीं आ सकता।" कर्ण ने कहा।

"अंगराज, मैं कृष्ण से मिलूँगा तो आपकी असहायता की जानकारी उन्हें दूँगा।" नारद ने कहा।

कर्ण थोड़ा चौंका, फिर वह तनकर बैठ गया। उसने कहा, "साथ ही साथ मेरी शक्ति की बात भी कहियेगा, जिससे हस्तिनापुर की राजनीति में किस पक्ष का साथ देना है इस पर भी वे विचार कर लें।"

"हाँ, देवर्षि", सुयोधन ने कहा, "आप मथुरा जा ही रहे हैं तो कृष्ण से कहियेगा कि वह जरासन्ध का सामना करने निकलेगा तब उसे युवराज सुयोधन और अंगराज कर्ण का भी सामना करना पड़ेगा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"युवराज, पुनः एक बार आप राज-पुरुषों ने बाजी बिछायी है और उसमें आर्यावर्त की प्रजा, प्रजा का धर्म और संस्कृति सभी कुछ आपके मोहरे बने हैं। मुझे दुःख होता है कि आपकी और अंगराज जैसे तेजस्वी तरुणों की जिन्दगी का प्रारम्भ ही इस विषमय धरातल पर हो रहा है।" नारद ने निःश्वास त्याग कर कहा।

"प्रारम्भ की बात करते हैं, देवर्षि। हमारा तो जन्म ही विषमय धरती पर हुआ है। मैं पैदा हुआ तब अन्धे पिता का पुत्र था। यद्यपि सबसे बड़ा था तो भी युवराज पद मुझे न देकर उस युधिष्ठिर को दिया गया। अभी आपके कृष्ण ने अक्रूर को हस्तिनापुर भेजा, अपनी बुआ के पुत्रों का हक कायम है या नहीं, यह देखने के लिए। नारद, पुत्रों की शूरता बेजोड़ रहे इस वास्ते उस एकलव्य का अँगूठा काट लिया गया, और इस अंगराज कर्ण की भी यही दशा होती यदि मैं इसकी मदद को न पहुँच गया होता।" सुयोधन ने कहा।

"भगवान आप सबको सन्मति प्रदान करें, युवराज। आप धर्म के पक्ष में रहेंगे तो अन्त में आपकी ही विजय होगी।" नारद ने कहा, "आपके साथ आज की दोपहरिया बिताते मुझे आनन्द हुआ होता, पर मुझे साँझ होने से पहले मथुरा पहुँचना है। आपकी यात्रा कल्याणकारी हो।"

युवराज सुयोधन और कर्ण ने देवर्षि को प्रणाम किया और कर्ण ने कहा, "देवर्षि, उत्तेजनावश कुछ अप्रिय कहा हो तो क्षमा कर दीजियेगा।"

रास्ते भर नारद इस परिस्थिति पर विचार करते रहे...सत्य किसके पक्ष में है, यह नारद को समझ में नहीं आ रहा था। धृतराष्ट्र के साथ अन्याय करके पाण्डु को राजगद्दी दी गयी यह हकीकत तो थी ही और पाण्डवों के मित्र दुर्योधन की ओर शत्रुभाव से ही देखते थे, अस्तु उसे प्रतिरोध में प्रपंच रचने ही पड़े ऐसी परिस्थिति थी। कौरवों और पांचालों में बैर था। यादवों और मागधों में बैर है। कौरव मगध की मदद को जा रहे हैं। आर्यावर्त का एक भी राज्य ऐसा नहीं है जो सुलग न रहा हो। धर्म, नीति सभी कुछ रसातल में जाने को तैयार बैठा है, तब कृष्ण क्या करेंगे ? जिसके बारे में ब्रज में इतनी सारी बातें सुनी थीं, वह कोमल मेघश्याम वर्ण का किशोर इन सम्राटों और शूरवीरों के समक्ष दो-दो हाथ कर सकेगा क्या ?

सोचते-सोचते वे न जाने कब मथुरा के द्वार पर पहुँच गये, इसका नारद को पता ही न चला। मथुरा के दुर्ग के द्वार बन्द थे। यह देखते ही नारद को समझ में आ गया कि यहाँ भी युद्ध की तैयारियाँ चल रही हैं।

दुर्गपाल ने देवर्षि को पहचाना और उन्हें अन्दर आने के लिए खिड़की खोल दी। मथुरा के किले के अन्दर सैनिक अपने तीरों के फ़लों की धार चोखी कर रहे थे, शस्त्र बन रहे थे और तीरन्दाजी तथा गदा-युद्ध के दाँवपेंचों में ताजे होने के लिए सैनिक अभ्यास कर रहे थे। शायद ही किसी को राह से गुजरते वीणाधारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्त को पहचानने या प्रणाम करने की भी सुध आयी हो !.

मार्ग में नारद को कर्णोपकर्ण समाचार मिलने लगे। यादवों का साथ देने के लिए कितनी अक्षौहिणी सेना आ पहुँचेगी, इसके आँकड़े सबको कण्ठस्थ थे। जरासन्ध के पक्ष में कौन-कौन से राजा खड़े होंगे, इसके अनुमान लगाये जा रहे थे। कोई मानता था कि बलराम और कृष्ण चमत्कार करेंगे और जरासन्ध और उसकी तेईस अक्षौहिणी सेना क्षण भर में फुर्र हो जायेगी, तो कोई कृष्ण और बलराम को ही दोष देता था। इन दोनों ने मथुरा के सुखी लोगों को दुखी बना दिया। नाहक ही कंस की हत्या की और मथुरा ही नहीं, समूचे आर्यावर्त पर यह आफत बुला ली।

रास्ते में नारद का ध्यान जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते युयुधान पर गया। जल्दी में जरूर था तो भी देवर्षि को देखते ही वह रुका और प्रणाम करके कहा, "देवर्षि, आप यहाँ कैसे ?"

"मैं कृष्ण से मिलने आया हूँ।" नारद ने कहा।

"तो चलिये मेरे साथ", युयुधान ने कहा, "मैं भी राजसभा में ही जा रहा हूँ। वहाँ इस समय बलराम तथा अन्य यादवों के बीच मन्त्रणा चल रही है। उद्धव ने मुझे तत्काल वहाँ उपस्थित होने को कहा है।"

वे दोनों जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते, राजसभा के प्रांगण में प्रविष्ट हुए। सर्वत्र शान्ति थी। सन्तरी पहरा दे रहे थे और रक्षक चारों ओर स्थापित हो गये थे। युयुधान और नारद को देखकर द्वार पर खड़े सन्तरी एक ओर हट गये, भाले झुकाकर दोनों का अभिवादन किया और उन्हें अन्दर प्रवेश करने दिया।

पर मन्त्रणा-कक्ष के द्वार बन्द थे। युयुधान अशान्त हृदय से बाहर खड़ा रहा। नारद स्वस्थ मन से आँखें मूँदकर भगवान की प्रार्थना कर रहे थे। अभी शीघ्र ही ये द्वार खुलेंगे और उन्हें कृष्ण के दर्शन होंगे। ब्रज में जिन्हें उत्कट अभिलाषा से ढूँढ़ा था, उस कृष्ण से मिलने की घड़ी इतनी पास आ पहुँची है, इसका हर्ष नारद के कण्ठ को अवरुद्ध-सा कर रहा था, तो दूसरी ओर इस समय भयंकर युद्ध की ज्वालाओं के बीच कृष्ण की स्थिति कितनी अकुलाहट भरी होगी इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

युयुधान की बेकली उसकी भारी पदचाप में मुखर थी। वह अकुला रहा था। उसने सन्तरी से पूछा, "अन्दर कौन है ?"

"कृष्ण, बलराम, राजा उग्रसेन, वसुदेव, अक्रूर, सत्राजित तथा कुछ और लोग।" सन्तरी ने कहा।

नारद ने तो इसमें से केवल पहला कृष्ण का नाम ही सुना और कृष्ण की छवि उनकी आँखों में तैरकर समूचे वातावरण में फैल रही थी।

दरवाजे की चरमराहट सुनाई दी।

नारद और युयुधान दोनों चौंके। दरवाजा खुला। कुछ देर तक उसमें कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखाई नहीं पड़ा, अन्त में उसमें से उद्धव बाहर आये। युयुधान उद्धव को देखकर उसकी ओर दौड़ पड़े। पर उद्धव की नजर देवर्षि पर पड़ी। उद्धव ने युयुधान की ओर स्मित किया और फिर आगे बढ़कर देवर्षि नारद को प्रणाम किया।

"उद्धव, अन्ततः कृष्ण के दर्शन की मेरी अभिलाषा आज पूर्ण होगी !" नारद ने कहा।

उद्धव की चिन्ताभरी आँखों से बह रही जल की धारा देखकर नारद का मन शंका-कुशंका से घिर गया।

"देवर्षि", उद्धव आगे बोल न पाये। वह देवर्षि की ओर देखकर स्तब्ध हो गया था। उसके मुख पर छायी दिग्मूढ़ता देखकर नारद ने पूछा, "क्या हुआ, उद्धव ? क्यों इतना अकुला रहे हो ?"

"देवर्षि", उसने भग्न आवाज में कहा, "देवर्षि ! कृष्ण और बलराम…"

"मुझे पता है उद्धव, वे इस समय महत्त्वपूर्ण मन्त्रणा में व्यस्त हैं। युयुधान ने ही मुझे बताया था। मुझे अभी तत्काल ही उनसे मिलने की जल्दी नहीं है। रात को मिल लूँगा या सबेरे !"

"नहीं देवर्षि, वे यहाँ नहीं हैं।" उद्धव ने कहा। उद्धव जानता था कि नारद को कृष्ण से मिलने की कितनी तीव्र उत्कण्ठा है। और इसी से वह यह समाचार देने में डर रहा था।

"क्या कहते हो, उद्धव ?"

"हाँ देवर्षि, अभी राजसभा में कृष्ण ने कहा कि जरासन्ध को तो केवल मुझसे और बलराम से बैर है। यदि हम मथुरा छोड़ दें तो जरासन्ध मथुरा को घेरने के बजाय हमारा पीछा करेगा।"

"पर वे इस समय तो मन्त्रणा-कक्ष में हैं न ?" नारद ने आतुरता से पूछा।

"नहीं", उद्धव ने कहा, और फिर आसपास कोई सुन तो नहीं रहा है, इसकी जाँच कर ली। "मन्त्रणा-कक्ष में से एक गुप्त द्वार मथुरा से बाहर निकलता है और इसमें से कृष्ण तथा बलराम आधा घण्टा पहले ही निकल चुके हैं। बाहर उनके लिए रथ तैयार खड़े थे। अतः इस समय तो वे विद्युत्-गति से प्रवर्षण पर्वत की दिशा में बढ़ रहे हैं।"

नारद का मन चकरा रहा था। उग्रसेन, वसुदेव आदि बाहर आये और 'देवर्षि प्रणाम' ऐसे शब्दों के साथ वंदन करने लगे। पर नारद का ध्यान मथुरा से दूर जा रहे दो रथों के साथ भाग रहा था और उद्धव के शब्द उनके कान में गूँज रहे थे, 'कृष्ण यहाँ नहीं हैं !' 'कृष्ण यहाँ नहीं हैं !' 'कृष्ण यहाँ नहीं हैं !…

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रिवक्रा के भवन में कृष्ण

महल के प्रांगण में खड़े वृक्षों से भरी मंजरियों के मृदु स्पर्श से नारद जागे। वे एक भव्य राजमहल के प्रांगण में साधु-सन्तों के अनुरूप सादे, किन्तु जगमग बिस्तर पर सोये थे। अभी प्रभात का सितारा पूर्ण तेजी के साथ चमक रहा था। आकाश के अन्य तारे परिचित मित्र की भाँति नारंद के समक्ष मन्द स्मित कर रहे हों, ऐसा प्रतीत होता था। प्रातःकाल की सुगन्ध समीर का शीतल स्पर्श पुलकित कर रहा था।

'अव कृष्ण यहाँ नहीं हैं' यह विचार नारद के मन में कौंधा और चौंककर उठ बैठे। वे सोचने लगे कि वे कहाँ हैं। उन्होंने आजूवाजू देखा और ध्यान आया कि यह तो वसुदेव का महल है। साँझ की घटना इस समय स्वप्नवत् लग रही थी। उद्धव ने कृष्ण नहीं है, यह खवर दी और नारद क्षुब्ध हो उठे थे। उसके बाद जो कुछ हुआ, वह सव धुँधला-धुँधला-सा याद आ रहा था। उग्रसेन, वसुदेव, सात्यकि, सत्राजित—इन सबने नारद का अभिवादन किया और वसुदेव ने नारद को महल में आने को आमन्त्रित किया।

जिस क्षण वे कृष्ण से साक्षात्कार की राह देख रहे थे, उसी क्षण वे अदृश्य कैसे हो गये ? होठों तक आया अमृत चषक अचानक मृगजल क्यों बन गया ? वृन्दावन, मथुरा, कृष्ण—यह सव स्वप्न जैसा लगने लगा।

उस क्षण नारद को लगा कि वृन्दावन की पावन भूमि में प्रतिपल अनुभव होती कृष्ण की उपस्थिति का वातावरण छोड़कर यहाँ आने में अवश्य भूल हुई है। कृष्ण यहाँ कहीं नहीं दिखते। मथुरा के मार्ग पर उन्होंने अपने-अपने काम से आते-जाते लोग ही देखे। कृष्ण मथुरा में थे तथापि मथुरा के लोगों के मन में कृष्ण की लगन नहीं थी। यहाँ राजनीति की चालें चलते राजनयिक थे, क्योंकि कृष्ण ने उन्हें कंस के त्रास से मुक्त कराया था और सुखी बनाया था।

मथुरा में सभी कृष्ण की पूजा करते थे, क्योंकि सब कृष्ण से डरते भी थे। अभी कल ही मथुरा के धुँधले रास्ते देखे थे और बात की बात में कृष्ण के अनेक चित्र दुकानों और महालयों पर अंकित हुए देखे थे। ब्रज में तो 'किसी चितेरे से कृष्ण का चित्र अंकित कराया जा सकता है', इतना भी किसी को नहीं सूझा था। मोरपंख, कदम्ब का पेड़, यमुना का तट, कुंजगली—ये सब कृष्ण की छवि बने दिखते थे। वहाँ किसी की दीवार पर कृष्ण का चित्र नहीं था। फिर भी कोई ऐसा हृदय नहीं था जिसमें कृष्ण की छवि न हो।

कुछ ऐसे ही विचारों से भरे नारद बिस्तर से नीचे उतरे। अभी ब्राह्म मुहूर्त आने में थोड़ी देर थी, फिर भी नदी तट की ओर चल पड़े। समूचा नगर सो रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। ब्रज में इस प्रकार निकलते तब वे वीणा पर कोई आनन्द भरा गीत छेड़ते। इस गीत का गुंजन अन्धकार के पंख पर बैठकर वृक्षों की डाल-डाल, पत्र-पत्र तक पहुँचता और वहाँ सोये पक्षी के सचेत मन में यह गुंजन नीड़ बनाता। थोड़ी ही देर में मानो उस वीणा के रव की ही प्रतिनिधि हो इस प्रकार प्रत्येक वृक्ष से पक्षियों की चहचहाहट गूँज उठती।

इस नगर के सँकरे मार्गों पर वीणा के स्वर मानो कारावास में बन्द हों ऐसा प्रतीत होता था। गीत के गुंजन को तो अवकाश ही कहाँ था। शायद कहीं कोई तेज मिजाज यादव सरदार जागकर 'यों, कौन नींद खराब कर रहा है ?' ऐसा पूछ बैठे, अतः वे गुपचुप 'नारायण' मन्त्र का जप करते चले जा रहे थे।

यमुना के तट पर वीणा रखकर, उन्होंने शीतल जल में प्रवेश किया। यह वही यमुना थी न, जो गोकुल, वृन्दावन के पास से बहती थी ? जल के स्पर्श से वहाँ कृष्ण के आलिंगन का बोध होता था। यमुना के श्याम जल के साथ ब्रजवनिताएँ मानो वह कृष्ण ही हों इस प्रकार खिलवाड़ करती थीं। यहाँ यमुना थी तो वही की वही, पर अपने किनारों पर जो कुछ भी घटित होता था, उससे एकदम निर्लिप्त रहकर बहती थी।

शायद मथुरा की यमुना भी मथुरा के लोगों जैसी ही थी। कृष्ण का आदर करते थे पर कृष्ण के साथ तन्मय नहीं होते थे। कल ही तो वसुदेव जिस स्वस्थता से प्रणाम कर रहे थे उससे भी नारद को विस्मय हुआ था। उनके स्थान पर नन्द होते तो··· ? वे तो कृष्ण को इस प्रकार जाने ही न देते। पर यह तो राजपुरुषों का नगर था।

मथुरा से कुछ ही कोस की दूरी पर, जरासन्ध की तेईस अक्षौहिणी सेना तैयार खड़ी थी। हंस और डिम्भक नामक किसी भी अस्त्रशस्त्र से मारे न जा सकें ऐसे जरासन्ध के वीर सचिव विचक्र जैसा व्यूहबाज सेनापति, चेदिकुमार शिशुपाल, दुर्योधन, धनुर्धारी कर्ण, भद्रराज, शाल्व, युवराज रुक्मी जैसे कितने ही वीर इस सेना में थे।

अब कृष्ण तो नहीं है, अतः यह सेना मथुरा को रौंदने का प्रयत्न करेगी या प्रवर्षण पर्वत की ओर जायेगी। कृष्ण और बलराम कितने ही सबल हों पर अकेले दम इस सेना का मुकाबला कर सकेंगे क्या ? और कदाचित् कृष्ण को कुछ हुआ तो··· ?

भरे जाड़े के ब्राह्म मुहूर्त में हिमालय के किसी हिमानी निर्झर का प्रवेश हुआ हो इस प्रकार नारद सिर से पैर तक काँप गये। क्या होगा कृष्ण का ? कृष्ण को बचाने के लिए मुझे प्रवर्षण पर्वत पर जाना चाहिए, ऐसा भी विचार उन्हें आया।

स्नान सन्ध्या से निवृत्त हुए तब हल्का-सा उजास फूटने लगा था। हवा में भी कुछ परिवर्तन आया था। नगर की जागृति का कोलाहल धीमे-धीमे वातावरण में प्रविष्ट हो रहा है, ऐसा लग रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद ने वीणा हाथ में ली और वापस महल की ओर जाने की सोच ही रहे थे कि वहीं कुछ दूर पर वृक्ष की डाल का सहारा लेकर खड़ा एक आकार उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। वे जल्दी-जल्दी डग भरते, उस आकार के निकट पहुँचे।

वह उद्धव था। न जाने कब से वह वहाँ खड़ा था। नारद को अपनी ओर आता देखकर वह चौंका। आगे बढ़कर उसने प्रणाम किया और कहा, "देवर्षि, आप बड़े सवेरे उठ गये ?"

"हाँ उद्धव, मुझे आज ही यहाँ से चल देना है।" नारद ने उत्तर दिया।

"क्यों ?" उद्धव ने साश्चर्य पूछा, "अभी कल शाम को ही तो आये हैं !"

"मुझे कृष्ण से मिलना है। और अब तो जरासन्ध का घेरा भेदकर वे न जाने कब मथुरा वापस लौटें ! उस समय तक मैं राह नहीं देख सकूँगा। मैं प्रवर्षण पर्वत पर ही जाऊँगा।" नारद ने कहा।

उद्धव कुछ देर तक नारद की ओर देखता रहा। फिर उसने कहा, "देवर्षि, कृष्ण गये, उसके बाद का ब्रज हम दोनों ने देखा है, कृष्ण के जाने के बाद मथुरा में वैसा कोई अन्तर नहीं आयेगा। हमें, नगर के लोगों को अपने प्रियजनों के लिए मुरझाना नहीं आता। इस समय आपकी आँखों में, अरे ! अणु-अणु में, मैं कृष्ण के लिए आतुरता देख सकता हूँ। मुझे भी थोड़ा झुराना सिखाइये जिससे जीने की राह पर चल सकूँ !" उद्धव ने कहा और उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। पर दूसरे ही क्षण उसने खाँसकर स्वस्थता प्राप्त कर ली।

"उद्धव, शायद मेरी दिखाई पड़ती आर्तता की अपेक्षा तेरे अन्दर विद्यमान वेदना अधिक हृदयस्पर्शी हो सकती है। जो आँसू आँख में से छलक नहीं जाते, वे अग्नि बनकर अन्तर में जलते रहते हैं।" नारद ने कहा और उद्धव की ओर देखा। नारद की दृष्टि का स्पर्श उद्धव को माता के हाथ की भाँति, सान्त्वना दे रहा था।

"देवर्षि", उद्धव ने कहा, "आप मथुरा से जायें उससे पहले आपको एक आँगन पवित्र करना पड़ेगा।"

"किसका आँगन ?" नारद ने पूछा, "देवभाग के पुत्र का ?"

"नहीं," उद्धव ने कहा, "देवभाग का पुत्र इतना सौभाग्यशाली नहीं है, किन्तु आपने वृन्दावन में कृष्ण के लिए सूखती राधा देखी है, मथुरा में त्रिवक्रा से मिले बिना आप नहीं जा सकेंगे।"

"त्रिवक्रा ? तुमने ब्रज में जिसकी चर्चा की थी वही न !"

"हाँ, वही जो एक समय नगर की सबसे ज्यादा कुरूप नारी थी।"

"सुना है वह कृष्ण की सबसे बड़ी भगतिन बन गयी है।" नारद ने कहा।

"लोग तो इससे भी आगे बढ़कर बातें करते हैं। वे कहते हैं कि यह त्रिवक्रा कृष्ण की प्रिय पटरानी है।" उद्धव ने कहा, "आखिर हैं तो ये मथुरा के लोग ! यह ब्रज थोड़े ही है कि राधा कृष्ण का नाम रटा करे और तिस पर भी लोगों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपवाद न फैले।" उद्धव ने कहा।

नारद कुछ सोचने लगे।

उद्धव ने कहा, "देवर्षि, आपको त्रिवक्रा के भवन तक जाने में कोई आपत्ति तो नहीं है ?"

"नहीं, उद्धव, मैं कुछ और ही सोच रहा था", नारद ने कहा, "पर चलो, हम अभी ही वहाँ हो आयें, मुझे अब और नहीं रुकना है।"

नारद के लिए यह एक अनूठा ही अनुभव था। त्रिवक्रा के आँगन में फूलों से सुन्दर रंगोली बनायी गयी थी। त्रिवक्रा पूजा-घर में बैठी थी। सामने कृष्ण का चित्र था और वह आँखें मूँदे तन्मयता से कृष्ण का नाम जप रही थी।

नारद ने उसकी ओर देखा। वह गीले वस्त्र पहने थी। उसके चेहरे पर एक अनोखा सलोनापन था। उसके केश सुन्दरता से गुँथे थे। उसकी भौंहें लम्बी और घनी थीं। आँखें काजल के कारण अपेक्षाकृत बड़ी और आकर्षक लग रही थीं।

नारद और उद्धव दोनों थोड़ी देर तक द्वार पर ही खड़े रहे। उद्धव ने एक कदम आगे बढ़ाया। पदचाप सुनते ही त्रिवक्रा ने आँखें खोलीं और मुड़कर पीछे देखा। उद्धव और नारद को देखकर उसकी आँखें विस्मय से फैल गयीं। वह उठी और आगे आयी।

"आइए देवर्षि, आओ उद्धव, लगता है कृष्ण के चरणस्पर्श होने के बाद मेरे भवन के भाग खुल गये हैं कि ऐसे महापुरुष मेरे आँगन को धन्य करते हैं। आइए, आपकी क्या सेवा करूँ ?" त्रिवक्रा ने खनकते नूपुरों जैसे स्वर में पूछा।

"त्रिवक्रा, उद्धव ने तेरी खूब प्रशंसा की, तो मुझे इच्छा हुई कि चलूँ कृष्ण की इस भगतिन का भी दर्शन कर लूँ।" नारद ने कहा।

"मैं, कृष्ण की भक्त ? देवर्षि, मैं तो कृष्ण की दासी हूँ। कृष्ण ने मुझे नया अवतार दिया है।" त्रिवक्रा ने कहा।

"नया अवतार ? वह कैसे ?" नारद ने पूछा।

"मुझे लोग इस शहर की सबसे कुरूप स्त्री के रूप में जानते थे।" त्रिवक्रा ने कहा।

त्रिवक्रा का मन अतीत में उतर गया—उसकी कुरूपता का कोई पार न था, वह कृष्ण से पहली-पहली बार मिली तब उसके हाथ में चन्दन और सभी सुगन्ध द्रव्य थे, पर त्रिवक्रा स्वयं एकदम सीधीसादी थी, उसके सिर के बाल उलझे होते थे और चेहरे पर एक प्रकार की उदासी छायी रहती थी। आँख के चारों ओर काले घेरे पड़े थे और झुककर चलने के कारण कन्धे पर बोझ लदा हो ऐसा लगता था।

कृष्ण और बलराम सामने से आ रहे थे। लोग इन दोनों भाइयों के रूप को जी भरकर पी रहे थे, पर कंस के भय के कारण कोई उनके पास जाकर बात करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का साहस नहीं कर पा रहा था। कंस इन दोनों भाइयों का शत्रु है और इन दोनों के साथ तनिक-सी मैत्री दिखानेवाला कंस के राज्य में सलामत नहीं रह सकेगा, ऐसा माना जाता था। इसी कारण ये दोनों भाई त्याज्य जैसे मथुरा के रास्ते पर चल रहे थे।

त्रिवक्रा कंस के लिए सुगन्धी द्रव्य और पुष्पमालाएँ लेकर जा रही थी, तभी किसी ने कहा, "लो, यह अच्छी जोड़ी बनेगी—काले कृष्ण और कुबड़ी त्रिवक्रा की।"

कृष्ण और त्रिवक्रा दोनों ने यह बात सुनी। कृष्ण ने त्रिवक्रा की ओर देखा। कृष्ण की दृष्टि में कुछ ऐसा समभाव छलक रहा था कि त्रिवक्रा कंस का भय और लोकलाज त्यागकर कृष्ण के पास गयी और कंस के लिए ले जा रही सभी सामग्री कृष्ण के चरणों में रख दी और बोली, "नाथ, इस गरीब दासी का उपहार स्वीकार करें।"

"सुन्दरी, तुम्हें कंस का भय नहीं लगता ?"

"भगवान ने मुझे रूप दिया ही नहीं है। फिर सुन्दरी कहकर लोगों के उपहास की पात्र इस दासी का आप और अधिक उपहास किसलिए करते हैं ?" त्रिवक्रा ने कहा।

कृष्ण की वह समभाव भरी दृष्टि त्रिवक्रा को कृष्ण के सामने खड़े होने का सम्बल था।

"सुन्दरी !", कृष्ण ने कहा।

इन शब्दों में आदेश का बल था। त्रिवक्रा को मानो वह सचमुच ही सुन्दर हो ऐसा मानने का मन हुआ। ये शब्द उसके कान में पड़े और वर्षों से झुककर चलने के कारण दोहरी हो गयी त्रिवक्रा तनकर खड़ी हो गयी, उसकी देह किसी अनोखी स्फूर्ति से झनझना गयी। झुककर चलने पर कुरूप दिखती यह नारी, सीधी खड़ी हुई तो उसके अंग की छटा ही बदल गयी। वह कृष्ण की सम्मोहक वाणी आँखों से पीने लगी।

"तू अपने रूप को लोगों से छुपाती क्यों फिरती है ? ये तेरे कोमल केश देखरेख के अभाव में सूखकर काँटे जैसे हो गये हैं। काजल बिना तेरे नेत्र कैसे छोटे-छोटे हो गये हैं ? तुझसे किसने कहा कि तू कुरूप है ?" कृष्ण ने कहा और फिर कुछ कुतूहल से देख रहे लोगों की ओर देखकर एक वात और जोड़ी, "इन लोगों ने ? तेरे रूप का रहस्य तेरे ही पास है। उसे यदि तुझे प्रकट करना हो तो किसी भी क्षण कर सकती है।"

कृष्ण के ये शब्द त्रिवक्रा के लिए चमत्कार जैसे बन गये। उसने हाथ से केश ठीक किये, आँखें फैलायीं, होंठ बन्द किये और चेहरे पर एक नयी ही दीप्ति से वह आलोकित हो उठी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी क्षण—

त्रिवक्रा इस समय सोच रही थी। उस क्षण के बाद मथुरा के लोग आश्चर्यचकित होकर देखते रह गये। त्रिवक्रा जो कुरूप नारी मानी जाती थी, अचानक सुन्दरी बन गयी।

"देवर्षि, मेरी कुरूपता और मेरे सौन्दर्य के बीच आत्मश्रद्धा के सेतु की जरूरत थी और वह सेतु श्रीकृष्ण ने बाँध दिया और मैं सुन्दर हूँ यह आस्था प्रदान की। भगवान कभी भी कोई असुन्दर वस्तु बना ही नहीं सकते; यह श्रद्धा मेरे मन में बस गयी।" त्रिवक्रा ने अपनी बात पूरी की।

नारद ने पूछा, "त्रिवक्रा, कृष्ण ने तुझे सौन्दर्य दिया, इसलिए तू उनकी भक्ति करती है, क्यों ठीक है न ?"

"नहीं देवर्षि, रूप तो अगले जन्म में भी मिलता, पर जन्मजन्मान्तर की साधना के बाद ही जो मिल पाती है ऐसी भक्ति भी कृष्ण ने मुझे दी।"

"तुझे पता है त्रिवक्रा, कि कृष्ण तो मथुरा छोड़कर चले गये हैं !"

"हाँ कोई ऐसा कहता तो था, पर आज प्रातः मैं पूजा करने बैठी तब इस छवि का आकार धीमे-धीमे बाहर आया, और मुझसे कहने लगा—'सुन्दरी, तेरे रूप का रहस्य तेरे ही पास है।' और मुझे लगा कि यह अफवाह झूठी है।"

समूची मथुरा नगरी में कृष्ण कहीं नहीं हैं। वे कहीं यहाँ आकर छुप तो नहीं गये हैं, ऐसा विचित्र विचार नारद के मन में कौंधा।

जरासन्ध की राजसभा में अक्रूर

मथुरा से कुछ दूर नदी के तट पर स्थित धवलपुरी के विशाल मैदान में अनगिनत शिविर लगे थे। और इनमें से कितने ही शिविरों पर उत्तराखण्ड के सुख्यात राजाओं के राजचिह्नयुक्त ध्वज लहरा रहे थे।

मगध का ध्वजवाला शिविर इनमें सबसे विशाल था। इस समय उसके सामने सबसे अधिक हलचल दिखाई पड़ रही थी। सम्राट् जरासन्ध के मथुरा की ओर कूच करने का निर्णय करने के बाद, विभिन्न देशों के राजा धवलपुरी के पास आकर उससे मिलें, ऐसी जरासन्ध की योजना थी। इसी के अनुसार अधिकतर राजा पधार चुके थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समय सम्राट् ने मोर्चे पर राजसभा आहूत की थी। अलग-अलग राजाओं के लिए एक जैसे आसन लगाये गये थे और जरासन्ध का आसन सबके बीच था।

प्रत्येक राजा के पास उसके मन्त्री भी बैठे थे। जरासन्ध के पास उसके मन्त्री हंस और डिम्भक बैठे थे, और उनके दाहिनी ओर जहाँ से राजाओं के आसन शुरू होते थे जरासन्ध का बड़ा बेटा सहदेव बैठा था।

सहदेव ने खड़े होकर घोषणा की, "आर्यावर्त के पराक्रमी राजाओ, आप जानते हैं कि कृष्ण और बलराम को हमें सौंप देने की माँग के साथ, यादवों से मिलने, हमारे दूत कल मथुरा गये थे। आज इन दूतों के सन्देश का प्रत्युत्तर लेकर यादवों के मन्त्री अक्रूर आये हैं। अक्रूर क्या उत्तर देते हैं इसके आधार पर ही हमारे युद्ध की भावी रणनीति का निर्णय होगा। आप सबकी उपस्थिति में ही यादवों के मन्त्री से मन्त्रणा करना सम्राट् को अधिक समीचीन प्रतीत हुआ।"

"कौन, अक्रूर आये हैं ?" शाल्व ने पूछा।

"अभी हाल में हस्तिनापुर आये थे वही न !" दुर्योधन ने बगल में बैठे कर्ण से धीरे से पूछा।

"हाँ।" कर्ण ने धीमे से कहा।

"इन सन्त से दिखाई पड़नेवाले लोगों से सँभलकर चलना चाहिए। यह बात सम्राट् को समझ में आ जाय तो अच्छा।"

"अक्रूर को सभा में बुलाया जाय उससे पहले किसी को कुछ कहना है ?" सहदेव ने पूछा, और आसपास बैठे राजाओं की ओर देखा।

"यादव अब कृष्ण और बलराम को सौंपना चाहते हैं या युद्ध करना चाहते हैं यह जाने बिना क्या कहा जा सकता है ?" सौ वीरों के राजा शल्य ने कहा।

सहदेव ने द्वार के पास खड़े प्रतिहारी को बुलाया और आज्ञा दी, "यादवों के मन्त्री अक्रूर बाहर खड़े हैं, उन्हें सम्मानपूर्वक अन्दर ले आओ।" और फिर सहदेव ने अपना आसन ग्रहण किया।

मथुरा के यदुराज्य के मन्त्री अक्रूर ने सभा में प्रवेश किया। अक्रूर के चेहरे पर प्रसन्न स्मित था। उन्होंने सभा में आकर चारों तरफ दृष्टि डाली। उत्तराखण्ड के महापराक्रमी राजा इस मण्डप में एकत्र हुए थे, इनमें कितने ही तो अक्रूर के परिचित चेहरे भी थे। महाराज शल्य के साथ उसका पुराना परिचय था, कुण्डिनपुर के राजा भीमक ने, अक्रूर से नजर मिली तो मन्द स्मित किया। कलिंग के पौण्ड्र ने अक्रूर को देखकर गर्व से मूँछों पर ताव दिया। और अभी हाल में जब वे हस्तिनापुर गये थे तब दुर्योधन और कर्ण के साथ तो घण्टों मन्त्रणा की थी।

अक्रूर स्वस्थता से सबकी ओर देखकर मुस्कराते रहे या सबको झेलते रहे, यह देखकर सभी को विस्मय हुआ। ऐसे प्रतापी शत्रुओं के साथ युद्ध करने की कल्पना मात्र से छाती दहल गयी होगी, ऐसा वे मानते थे। अक्रूर ने जरासन्ध और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभी राजाओं की विधिपूर्वक वन्दना की और सभा के बीच में रक्खे आसन पर बैठ गये।

"सम्राट् जरासन्ध और उत्तराखण्ड के प्रतापी राजाओं की ओर से मैं आपका स्वागत करता हूँ।" सहदेव ने कहा।

"आपका स्वागत मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ।" अक्रूर ने कहा, "सम्राट् आप और यह सब राजा कुशल से तो हैं न ?"

"हाँ अक्रूर, आप अकेले ही आये हैं।" जरासन्ध ने पूछा।

"हाँ, महाराज !"

"आपको मेरा सन्देश मिला था ?" जरासन्ध ने पूछा।

"हाँ, महाराज।"

"उसमें कृष्ण और बलराम को बाँधकर मेरे सामने हाजिर करने की मैंने माँग की थी, इसका अर्थ समझे थे न ?" जरासन्ध ने तनिक ऊँची आवाज में कहा।

"हाँ, महाराज", अक्रूर ने पूर्ण स्वस्थता से उत्तर दिया, "पर आपके सन्देश पर विचार करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।"

"क्यों ?" जरासन्ध ने पूछा।

"कृष्ण और बलराम इस समय मथुरा में नहीं हैं।" अक्रूर ने उत्तर दिया और सारी सभा स्तब्ध रह गयी। 'कृष्ण नहीं है ? यह प्रश्न इन राज-पुरुषों के बीच एक कान से दूसरे कान में फुसफुसाकर सुनते-सुनते सारे वातावरण में फैल गया।

जरासन्ध के पास बैठा डिम्भक उठ खड़ा हुआ, उसने कहा, "ये दोनों भाई राजसभा के गुप्त मार्ग से भाग गये, यह समाचार हमारे लिए नया नहीं है।"

"वे कायर भाग गये, क्यों ?" जरासन्ध ने विस्मयपूर्वक डिम्भक की ओर देखा और फिर अट्टहास किया, "मेरा सामना किये बिना मुझे पीठ दिखा दी।"

"नहीं महाराज, वे भागे नहीं हैं। भार्गव-श्रेष्ठ परशुराम का सन्देश आया था, उन्होंने कृष्ण-बलराम को मिलने हेतु बुलाया था। दोनों यदुनन्दन पूरा चौमासा प्रवर्षण पर्वत पर बितायेंगे।" अक्रूर ने कहा।

"यदुनन्दन···" जरासन्ध ने कटाक्ष में कहा, "कुलांगार कहो, प्रपंच से मामा की हत्या करनेवाले इन कुल-हत्यारों के लिए यदुनन्दन कहना शोभा नहीं देता।"

"महाराज", अक्रूर ने आवाज सख्त करके कहा, "हम इस समय कृष्ण या बलराम के चरित्र का फैसला करने नहीं बैठे हैं। आप उनके बारे में क्या सोचते हैं, यह सुनने के लिए मैं यहाँ नहीं आया हूँ।"

"तो फिर आप यहाँ क्यों आये हैं ?" सहदेव ने पूछा।

सहदेव की ओर देखे बिना ही अक्रूर ने जरासन्ध की ओर देखा और कहा, "महाराज, यादवों को कृष्ण-बलराम को सौंपना कि नहीं सौंपना, यह निर्णय करने आया होता तो और बात थी। इसका निर्णय यादवों ने अपने गौरव और प्रतिष्ठा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अनुरूप किया होता, पर इस समय ये दोनों पराक्रमी बन्धु मथुरा में नहीं हैं। मथुरा की सुसज्ज सेना आर्यावर्त के धर्मनिष्ठ राजाओं के सहयोग के कारण आप सबका राजकीय स्वागत करने में पीछे नहीं हटेगी। मैं तो केवल इतना जानने आया हूँ कि कृष्ण और बलराम विहीन मथुरा से आपको युद्ध करना है कि क्या करना है ?"

"मथुरा तो मैं जलाकर राख कर दूँगा।" जरासन्ध ने कहा। "मेरी बेटियों की माँग का सिन्दूर ही नहीं मिटा है, मथुरा के ललाट पर लगा भाग्यतिलक भी मिट गया है। आप यादवगण चाहें तो शरणागत हों, चाहे तो रणक्षेत्र में आवें। मथुरा में आग लगाकर ही मैं प्रवर्षण पर्वत पर जाऊँगा··· और आपके इन पराक्रमी यदुनन्दनों को सामने छाती खोलकर कैसे लड़ा जाता है, यह पाठ पढ़ा दूँगा।"

जरासन्ध के ये शब्द सुनकर राजसभा विस्मित हो उठी। सुवल ने शल्य की ओर देखा, शल्य ने भीमक की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि डाली, भीमक ने गोनर्द की ओर देखा। गोनर्द उठ खड़ा हुआ और उसने कहा, "महाराज, हमें लड़ना तो कृष्ण और बलराम से था, यदि वे मथुरा में न हों तो यादवों को छेड़ने से क्या लाभ होगा ?"

"हमें महाराज गोनर्द की बात ठीक लगती है।" भीमक ने कहा। "यदि कृष्ण मथुरा में न हो तो मथुरा के नागरिकों के साथ अकारण हिंसा क्यों की जाय ?"

"हिंसा-अहिंसा की बात मुझे समझ में नहीं आती। ग्वाले चले गये फिर भेड़ों पर टूट पड़ने में हमारी शोभा नहीं है। अस्तु मैं तो इतना जानता हूँ कि मुझे तो आर्यावर्त के श्रेष्ठ धनुर्धारियों में स्थान पानेवाले कृष्ण से लड़ने की चाह थी, मथुरा का कचूमर निकालने का मुझे कोई चाव नहीं है।" कर्ण ने कहा।

जरासन्ध की आँखें क्रोध से जलने लगीं। उसने कहा, "जिस कृष्ण ने मथुरा के स्वामी और हमारे स्वजन महाराज कंस की हत्या की, उसकी पूजा करनेवाले नगर का नाश किये बिना मैं तो चैन भी नहीं लूँगा···"

"महाराज, इस प्रकार यदि मथुरा पर आक्रमण होगा तो हम यथाशक्ति आपका स्वागत करेंगे।" अक्रूर ने दृढ़ता से कहा, "पर कंस की हत्या करने में कृष्ण ने कोई अनीति नहीं बरती है, यह तो इस राजसभा में मुझे स्पष्ट करना ही चाहिए। आपने तो केवल उड़ती-उड़ती बातें ही सुनी हैं, मैं तो कृष्ण बलराम की हत्या करने के कंस के समूचे व्यूह का साक्षी हूँ, वृन्दावन से कृष्ण को बुलावा भेजा गया था उसी घड़ी से।"

"वह व्यूह क्या था ?" गोनर्द ने पूछा।

"काश्मीर नरेश, ये दोनों युवक मथुरा की राजसभा में आयें इससे पहले मदोन्मत्त हाथी कुवल्यापीड को छोड़ा गया था। इससे बचें तो इन दोनों वीरों को मुष्टिक और चाणूर जैसे कसे हुए मल्ल ललकारें ऐसा निर्णय किया गया था। कृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और बलराम ने इन दोनों को परास्त किया तब कंस स्वयं ही कृष्ण को मारने के लिए उठ रहा था। उस वक्त यदि पहला वार कृष्ण ने न किया होता कंस के पहले वार का वे शिकार हो गये होते। यहाँ उपस्थित राजा राजनीति और युद्धनीति दोनों ही जानते हैं। कृष्ण के कदम को वे कुलजन हत्या का कदम मानेंगे क्या ?" अक्रूर ने पूछा।

अक्रूर की वाणी और कृष्ण का नाम दोनों ही मिलकर एक अनोखी माया रच रहे थे।

"जिस प्रकार यह बात कही गयी है, उसे देखते हुए तो नहीं।" गान्धार नरेश सुबल ने कहा।

समूची चर्चा का सूत्र अक्रूर के हाथ में आ गया है, इसका खयाल मन्त्री हंस को आ गया। उसने डिम्भक की ओर देखा। डिम्भक की ओर से संकेत मिलते ही हंस उठा। उसने कहा—

"अक्रूरजी, कंस और कृष्ण के बीच जो कुछ हुआ, उसका विस्तृत विवरण हमने ध्यान से सुना। उस क्षण तो मैं भी आपकी मीठी वाणी के जाल में फँस रहा था। पर सम्राट् की पुत्रियों की आँसूभरी आँखें याद आयीं। आँसुओं में धुली कथा जिसने सुनी है, उसे आप की बातें बहुत भरमा न सकेंगी।"

"हंस", जरासन्ध ने बीच में टोकने की कोशिश की।

"महाराज, आप धैर्य रक्खें। आपको क्या कहना है यह मैं जानता हूँ।" हंस ने कहा, "अक्रूरजी, आप तो राजनीति को घोटकर पी चुके हैं। सम्राट या यहाँ एकत्र हुए राजा शौर्य के शिखर पर खरा सोना सिद्ध हुए हैं, चतुराई उनका क्षेत्र नहीं है।"

"चतुर श्रेष्ठ हंस, मैं कोई चतुराई के व्यूह का खेल खेलने यहाँ नहीं आया हूँ। मैं तो केवल इतना ही जानने आया हूँ कि सम्राट् मथुरा के साथ युद्ध करना चाहते हैं क्या ?" अक्रूर की आवाज में दृढ़ता थी।

"बकरा, शेर के मुँह में जाने को तैयार हो जाय इसलिए सिंह को दहाड़ मारना ही चाहिए ऐसा आप क्यों मान लेते हैं ?" हंस ने पूछा।

जरासन्ध कुछ बोलने ही जा रहा था, पर डिम्भक ने उसके पास जाकर कुछ समझाया, अतः वह स्वस्थ होकर बैठ गया।

"अक्रूरजी, मथुरा का दमखम हमें पता है। हमें जिस क्षण कृष्ण बलराम भाग गये…"

"वे भागे नहीं, गये हैं। जो अतापता बताकर जाय उसे भगोड़ा नहीं कहते।" अक्रूर ने कहा।

"अतापता भले दे गये हों, पर मथुरा छोड़ी तब क्या वह यह बात नहीं जानते थे कि सम्राट् आ रहे हैं।" हंस ने पूछा, "हमारे यहाँ क्षत्रिय युद्ध का स्वागत करते हैं, युद्ध से भागते नहीं हैं।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"हंस..." अक्रूर कुछ कहना चाहते थे।

"नहीं, मुझे इस बात पर विवाद नहीं करना है, अक्रूरजी।" हंस ने कहा, "सम्राट् को मथुरा से शिकायत है, पर सम्राट् दयालु हैं। मथुरा के साथ उत्पन्न हिसाब वे कभी अवश्य चुकायेंगे, पर अभी नहीं।"

"सम्राट् जब भी मथुरा से हिसाब करना चाहें, हम सदा तैयार रहेंगे।" अक्रूर ने कहा, "पर मेरी एक और प्रार्थना है।"

"क्या ?" जरासन्ध ने पूछा।

"यदि हम युद्ध न करनेवाले हों तो हम दुश्मन नहीं हैं; तब सम्राट् और सभी राजा जो कष्ट करके इतनी दूर तक आये हैं मथुरा का आतिथ्य स्वीकार करके ही जायें ऐसी उग्रसेन की विनती है। उग्रसेन इस समय प्रजा-कल्याण यज्ञ कर रहे हैं, उसके दर्शन का आप सबको लाभ प्राप्त होगा।" अक्रूर ने कहा।

"हम निमन्त्रण के लिए उग्रसेन का आभार मानते हैं, पर सम्राट पहले तो मथुरा से छटक गये उन दोनों कायरों की अकल ठिकाने लगाना चाहते हैं। वे यदि भगवान परशुराम के आश्रम में होंगे तो वहाँ, नहीं तो प्रवर्षण पर्वत पर हम उन्हें ढूँढ़ निकालेंगे।" हंस ने कहा, "उन दोनों कैदियों को साथ लेकर लौटते हुए हम अवश्य मथुरा में रुकेंगे।"

सभी राजाओं ने हंस के इस उत्तर का एक स्वर से स्वागत किया।

अक्रूर अपने आसन से उठे, उन्होंने पुनः एक बार सभी को वन्दन करके कहा, "तब मैं मान लूँ कि यादवों और मागधों के बीच इस समय तत्काल किसी युद्ध का प्रश्न नहीं है।"

अक्रूर को विदा देने सहदेव और डिम्भक दरवाजे तक गये। ज्योंही अक्रूर बाहर निकले कि तुरन्त जरासन्ध ने हंस से कहा, "हंस मुझे मथुरा को जला डालना है..."

"महाराज, यह आसान नहीं है। पांचाल से धृष्टद्युम्न तीन अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा आया है, नागराज बाहुक की सेना भी मथुरा से कुछ ही दूर पर डेरा डाले पड़ी है। इन सबसे लड़कर भारी नुकसान उठाकर हमें विजय मिलेगी, मथुरा भी मिलेगी, लेकिन इस लड़ाई से थके सैनिकों ने अभी थोड़ा विश्राम भी न लिया होगा कि पाण्डवों तथा आर्यावर्त के अन्य राजाओं और अन्य लोगों की कुमक जुटाकर कृष्ण और बलराम हमें घेर लेंगे। इससे तो अच्छा है कि हम चुने हुए शत सहस्र जवान लेकर प्रवर्षण पर ही कृष्ण बलराम से भिड़ जायें तो कैसा हो ?"

"लेकिन..." जरासन्ध कुछ कहने चला।

"महाराज, मथुरा को आग लगाने के बदले हम प्रवर्षण पर्वत को ही जला डालें तो कैसा हो ? या तो कृष्ण उसमें जलकर मर जायेगा या फिर भागकर बाहर आयेगा।" अब तक चुप बैठे शिशुपाल ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तुमने ठीक कहा, शिशुपाल," जरासन्ध ने कहा, "अब मैं प्रवर्षण पर्वत ही जलाऊँगा !"

देखना है, कृष्ण किसे मिलते हैं !

सोमरस के नशे में चूर वह लाल आँखोंवाला युवक आम्रवृक्ष की छाया में एक करवट लेटा हुआ था। एक ओर वारुणी और दूसरी ओर श्रीदेवी नामक दो रमणीय ग्राम-कन्याएँ उसके पास बैठी थीं और थोड़ी-थोड़ी देर बाद युवक माँगता तो वे पात्र में सोमरस भरकर देती थीं।

"वारुणी···" युवक ने कहा।

"जी !" वारुणी ने पूछा। उसकी आँखें माथे पर लटक आयीं। श्याम केश की लटों से भय पातीं, आकुल व्याकुल लगती थीं।

"तू क्यों नहीं पीती ?" जवान ने पूछा।

"पीती हूँ, पर आप जितनी पीने लगूँ तो आपको सोमरस भर कर देने का होश भी कहाँ रहेगा !" वारुणी ने श्रीदेवी की ओर देखकर मीठी हँसी बिखेरते हुए कहा।

युवक ने दोनों युवतियों को अपने पास खींचा और अपने पात्र से दोनों को सोमरस पिलाया।

"आप तो अब आजकल में चले जायेंगे, है न ?" श्रीदेवी ने पूछा।

"कल नहीं, आज ही। शायद अब तो किसी भी पल।" युवक ने कहा, "पर मैं वापस आऊँगा, तुम दोनों से मिलने के वास्ते। तुम दोनों की श्याम आँखें जिसमें डूबकर तैर रही हैं ऐसा सोमरस पीने के लिए भी मैं ज़रूर आऊँगा।"

युवक की अधखुली आँखों पर झुककर वारुणी ने एक मृदुचुम्बन अंकित किया और फिर कहा, "आप इतने रसिक हैं, पर आपके छोटे भाई इतने रूखे क्यों हैं ?"

"कौन ?" युवक ने नजर उठाकर पूछा।

"आप गोरे हैं, सुदर्शन हैं, पर आपके भाई तो बाँके छबीले और मनमोहन हैं, फिर भी एकदम अरसिक हैं। गुफा में बैठे-बैठे न जाने क्या कर रहे हैं कि बाहर निकलते ही नहीं !" वारुणी ने उत्तर दिया।

युवक मुस्कराया और कहा, "तुझे वह बहुत अच्छा लगता हो तो जा, सोमरस का पात्र लेकर उसे दे आ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"गयी थी !" भग्नस्वर में वारुणी ने कहा और फिर लम्बी साँस छोड़ी।

"ऐसा ? तो उसने क्या कहा ?" युवक ने पूछा।

"वे तो घन निहाई लेकर कुछ ठोंकने बैठे थे। मुझे देखकर बोले, 'माता'। मेरे हाथ के पात्र में भरे सोमरस की समूची मादकता इन शब्दों के स्पर्श से ही उड़ गयी। वे आगे बोले, 'माता, मैं तो यहाँ काम में आकण्ठ डूबा हूँ, आप मेरे बड़े भाई को तृप्त करें, वह कई दिन से सोमरस का प्यासा है।' और मैं यहाँ चली आयी। एकदम अरसिक ! अरे, मेरी ओर एक बार देखा तक नहीं।" वारुणी ने अपनी यौवन मदमाती देह पर दृष्टि डालकर कहा।

"वह ऐसा ही है," युवक ने मन्द स्मित करके कहा, "वैसे का वैसा मूर्ख ! हमारे गाँव में भी वह गौओं के झुण्ड के बीच पड़ा रहता था। एकदम जड़भरत है।"

"पर है बड़ा नमकीन !" श्रीदेवी ने कहा, "प्रेम करने का मन हो जाय ऐसा।" इतने में एक ऋषिकुमार वहाँ आया। युवक को श्रीदेवी और वारुणी के बीच लेटा देखकर वह संकोचवश ठिठक गया।

"आओ, यहाँ आओ।" युवक ने कहा।

ऋषिकुमार ने कुछ भयभीत नेत्रों से वारुणी और श्रीदेवी की ओर देखा।

युवक ने हँसकर कहा, "अरे डरता क्यों है ? ये कोई डाइनें नहीं हैं कि तुझे खा जायेंगी !"

ऋषिकुमार शरमाता हुआ आगे आया। उसके हाथ में एक गदा और एक हल के आकार का एक आयुध था। उसने कहा, "जरा देखिये तो ये शस्त्र ठीक बने हैं न ?"

युवक ने लेटे-लेटे ही हाथ बढ़ाकर गदा ले ली और उसे आकाश में उछाला। अभी सिर पर गिरेगी कि क्या, ऐसे भय से श्रीदेवी और वारुणी दोनों घबरा गयीं, पर तभी युवक ने हल पर उसे रोक लिया और कहा—"बढ़िया है" और फिर हल द्वारा गदा को खींचकर दोनों आयुध ऋषिकुमार को सौंप दिये। ऋषिकुमार वापस लौट गया।

"बाप रे, मुझे तो इत्ता डर लगा···" वारुणी ने कहा।

"मुझे तो ऐसा लगा कि गदा मेरे सिर पर ही आ गिरेगी।" श्रीदेवी बोली।

दोनों को अपने और पास खींचकर उसने कहा, "मेरा भाई ये खिलौने बना ले, फिर एक क्षण भी यहाँ रुकने नहीं देगा। तब तक जितना चाहो मुझे सोमरस पिला दो। एक लम्बी नींद ले लूँगा।"

अभी वह युवक आँखें मूँदे कि उससे पहले ही उसने देखा कि सामने की दिशा से दो रथ आ रहे हैं। वह चौंककर उठ बैठा। वारुणी और श्रीदेवी से आँखों के इशारे से चुप रहने को कहा। वह चाहता था कि रथ सीधे ही निकल जायें तो अच्छा हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर रथों की गति धीमी पड़ती गयी, अतः उसने श्रीदेवी से कहा, "तू गुफ़ा के पास जा। अभी कोई बाहर न निकले, इसका ध्यान रखना।" फिर वारुणी से कहा, "सोमरस के पात्र तैयार रखना, देखें कौन अतिथि आ रहे हैं।"

रथ आम्रवृक्ष के पास आकर ठहर गये, पर युवक तनिक भी क्षुब्ध हुए बिना जैसे का तैसा पड़ा रहा।

"अरे, कौन है वहाँ ?" आगे के रथ में बैठे एक पुरुष ने पूछा।

युवक ने आँखें खोलीं, आधी उठंगकर बैठते हुए एक हाथ से वारुणी के कन्धे का टेका लिया और प्रश्नकर्त्ता की ओर देखा। उस प्रश्नकर्त्ता के पीछे एक और रथ था। उसमें एक प्रचण्ड बाहुबल वाला आदमी बैठा था। उस आदमी को देखकर युवक की आँखें चमक उठीं। उसने कृत्रिम उपेक्षा से कहा—

"क्या काम है ?"

"अरे भाई, शूर्पारक किस ओर स्थित है, ये बतायेंगे क्या ?" आगे के रथवाले ने पूछा। "पहले नीचे तो उतरिये। अरे वारुणी, इन अतिथियों के लिए सोमरस के पात्र तैयार कर। शूर्पारक पहुँचते तो इन्हें साँझ हो जायेगी।" युवक ने कहा।

"साँझ हो जायेगी ?" प्रश्नकर्त्ता को आश्चर्य हुआ। उसने कहा, "हमें तो किसी ने ऐसा बताया था कि आप इस दिशा में थोड़े आगे बढ़ेंगे तो घड़ी दो घड़ी में ही शूर्पारक आ जायेगा।"

"घड़ी दो घड़ी में शूर्पारक !" युवक ने अट्टहास किया, "कहीं भगवान विष्णु के गरुड़ विमान पर चढ़कर तो नहीं आये हैं ?"

"युवक, मुँह सँभाल के जवाब दो। तुम नहीं जानते कि किसके साथ बात कर रहे हो !" पीछे के रथ में बैठे व्यक्ति ने रूखे स्वर में कहा।

"किसके साथ माने ? आप कहां मगध के जरासन्ध हैं कि कोल्हू में डालकर पेर देंगे !" युवक ने थोड़ी बेपरवाही से कहा।

पीछवाले रथ में बैठा आदमी लाल-पीला हो गया। वह कुछ बोलने ही जा रहा था, पर आगे के रथ में बैठे व्यक्ति ने कुछ संकेत किया, अस्तु वह रुक गया।

"आप बतायेंगे भाई, कि शूर्पारक किस दिशा में है ?" आगेवाले रथ में बैठे व्यक्ति ने एक बार फिर पूछा।

"आपको तो किसी ने बताया था न कि सीधे चलेंगे तो घड़ी दो घड़ी में शूर्पारक आयेगा। तो फिर चल पड़िये।" उस युवक ने बेदरकारी से कहा, "अरे वारुणी, सोमपात्र ला, मुझे तो नींद आ रही है।"

"यात्रियों को सीधा जवाब न देना हो तो कहो कि हम जायें !"

"जवाब चाहिए और न मिले ?" युवक ने कहा, "आपको यदि मुझ पर विश्वास हो तो यहाँ से बायीं ओर मुड़िये, वहाँ से क्षारपट्टी से आगे बढ़ें कि बस शूर्पारक में भगवान जामदग्नेय के यज्ञ का धुआँ दिखाई पड़ेगा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आगे के रथ में बैठा आदमी उतरकर पीछेवाले रथ के पास गया और धीरे से कहा, "सम्राट्, मुझे इस आदमी की बात सच लगती है।"

"हंस, तुझे जो करना हो वह कर, पर इस विवेक-विहीन आदमी के पास से रथ दूर ले चल। जी करता है कि जाने से पहले इस आदमी को कुछ दिखाता जाऊँ।"

"सम्राट्, इस अजनान पथ में इस प्रकार मैदान में उतरने लगे तो पहचान लिए जायेंगे। हम सेना से चुपके से फूटकर जिस उद्देश्य से यहाँ आये हैं, वह उद्देश्य ही खत्म हो जायेगा।" हंस ने कहा और फिर अपने रथ पर जा बैठा। वह युवक तो पुनः तन्द्रा में डूब गया था।

जरासन्ध और हंस कुछ दूर चले तब हंस ने कहा, "सम्राट्, इस प्रकार सेना से अलग चलने में आपने भारी जोखिम उठाया है, ऐसा नहीं लगता क्या !"

"हंस, मेरा इरादा इन दोनों को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारने का है, कृष्ण से मैं निपट लूँगा, तू बलराम को सँभाल लेना।" जरासन्ध ने कहा।

"महाराज, यदि ऐसा ही करना था तो मैं और शिशुपाल ही काफी थे। और सब तो ठीक, पर भगवान परशुराम की नजर के सामने द्वन्द्व-युद्ध करना बड़ा विकट काम है ?" हंस ने कहा।

युवक द्वारा बताये रास्ते पर वे वहुत दूर तक आगे बढ़ गये। वह समूचा निर्जन मार्ग शनैः-शनैः शुष्क मरुस्थल प्रदेश में परिवर्तित होता गया। दोपहर बीतने आयी तब एक आदमी सामने से आता दिखाई पड़ा।

"शूर्पारक कहाँ है, भाई ?" हंस ने उससे पूछा।

"शूर्पारक। इसके लिए तो आप जिस रास्ते से आये हैं उसी रास्ते वापस जाना होगा। आप इधर कहाँ चले आये !" उस आदमी ने कहा।

हंस ने जरासन्ध की ओर देखा, "सम्राट्, वह युवक कौन था, इसका अनुमान कर सकते हैं ?"

"नहीं," जरासन्ध ने विस्मयपूर्वक कहा।

"चलिये वापस चलें," हंस ने कहा, "यह तो अच्छा हुआ कि और अधिक दूर जाने से पहले ही चेत गये।"

दोनों ने रथ पीछे घुमाये। साँझ होने में थोड़ी देर थी, तब उस आम्रवृक्ष के पास वापस पहुँचे। वहाँ इस समय कोई नहीं था, उस युवक या उन ग्राम-कन्याओं में से किसी का भी पता न था।

"मुझे सन्देह है, सम्राट्, कि वह युवक शायद बलराम था।" हंस ने कहा।

"तभी इस प्रकार मुँहफट बनकर बोल रहा था।" जरासन्ध ने कहा। "वह कहाँ गया होगा ?"

"यहाँ तक आये हैं तो थोड़ा आगे भी चलें। शायद वह अभी भगवान जामदग्नेय के पास ही हो।" हंस ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और वास्तव में घड़ी दो घड़ी बाद ही हंस को यज्ञ का धूम्र दिखने लगा।

वे वीणा नदी के किनारे स्थित अनेक शाखा-प्रशाखाओं वाले उत्तम, विशाल, पुराने वटवृक्ष के नीचे आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने तेजो-राशि, कन्धे पर परशु, मस्तक पर जटा और शरीर पर वल्कल धारण किये अग्निशिखा जैसे गौर वर्ण, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्र जैसे प्रचण्ड, त्रिविध अग्नि का सेवन करनेवाले, त्रिकाल स्नान से स्निग्ध शरीरवाले और तेजस्वी बृहस्पति हों ऐसे प्रभामय परशुराम को वटवृक्ष के नीचे बैठे देखा।

परशुराम के बगल में देवर्षि नारद बैठे थे। मन्दार पर्वत पर जैसे सूर्य शोभायमान होता है, वैसे ही वे शोभित हो रहे थे।

जरासन्ध और हंस के रथों को ठहरा देखकर परशुराम ने कहा, "देवर्षि कृष्ण का पीछा करते आप अकेले ही नहीं निकले हैं। लीजिए ये मगधपति भी आ पहुँचे, कृष्ण का पगहा थामकर।"

"सम्राट् !" हंस ने जरासन्ध को एक ओर ले जाकर धीमे से केवल वे ही सुन सकें इस प्रकार कहा, "यहाँ अधिक बोलियेगा नहीं। चुपचाप, मैं जो कहूँ वही करियेगा। नहीं तो इन भगवान परशुराम का क्रोध झेलना भारी पड़ जायेगा। यह अकेला ब्राह्मण हमारी तेईस अक्षौहिणी सेना पर भी भारी पड़े ऐसा है।"

दोनों पास आये। दोनों ने परशुराम और नारद को विधिवत् प्रणाम किया।

"कुशल तो है न, जरासन्ध। आप भटककर शूर्पारक कहाँ आ गये ?" परशुराम ने पूछा।

"भगवन्", हंस ने उत्तर दिया, "कृष्ण और बलराम सम्राट् से डरकर इस मार्ग से भाग निकले हैं। सम्राट् सेना सहित उनका पीछा करने निकले हैं। मार्ग में आपका आश्रम पड़ता था, अतः सोचा कि भगवान के आशीर्वाद लेते चलें।"

"पर कृष्ण और बलराम तो यहाँ नहीं हैं। वे तो चले गये।"

"कृष्ण और बलराम यहाँ से चले गये ? कब गये ?" जरासन्ध ने अधीर होकर पूछा।

परशुराम ने मन्द-मन्द हँसते हुए कहा, "सम्राट्, आप जिधर से आये उस रास्ते पर भेंट नहीं हुई ? आज दोपहर तक तो यहाँ से एकाध योजन दूर पर वे रुके थे। उन्हें विदा देने गये ऋषिकुमारों ने तो मुझे ऐसा भी बताया कि वहाँ बलराम और जरासन्ध के बीच थोड़ी दिल्लगी भी हुई थी। बलराम ने उन्हें सोमरस-पान करने का निमन्त्रण भी दिया था।"

"ओह···वह युवक फिर एक बार मिल जाये तो···" जरासन्ध ने दाँत पीसकर कहा।

"माने," परशुराम ने हँसकर कहा, "आपने बलराम को पहचाना नहीं था।"

"नहीं। महाराज, उसी ने हमें गलत मार्ग पर बढ़ा दिया था और भटकते-भटकते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ पहुँचते शाम हो गयी।" हंस ने कहा।

"पर कहाँ जायेगा वह। अपनी सेना को मैंने इस प्रकार व्यूहात्मक ढंग से गठित किया है कि किसी न किसी पक्ष से उसकी भेंट हो ही जायेगी।"

"यह तो आपकी सेना की जैसी तकदीर।" परशुराम ने कहा।

नारद अन्यमनस्क बने बैठे थे। ढलती साँझ की कालिमा ने नारद के चेहरे पर छायी निराशा को और अधिक गहरा बना दिया था।

"नारद !" परशुराम ने कहा, "आप जिस उत्कटता से कृष्ण को ढूँढ़ रहे हैं, इसकी खबर कृष्ण को मिल चुकी है। आप मथुरा आ रहे हैं यह खबर यदि कृष्ण को एक घड़ी पहले मिल गयी होती तो वे आपसे मिले बिना निकलते ही नहीं, ऐसा भी वे कह रहे थे।"

"कृष्ण मुझे याद कर रहे थे ?" नारद ने गद्गद होकर कहा, "वे और क्या कह रहे थे ?"

"उन्होंने यह भी कहा, कि देवर्षि से कहियेगा कि वे श्रम न करें। इन सब सांसारिक झंझटों से मुक्त होने के बाद वे अवश्य ही जहाँ भी देवर्षि होंगे वहाँ आकर मिल लेंगे।"

"कृष्ण हमसे मिलने आयें, इसकी प्रतीक्षा में बैठे थोड़े ही रहा जा सकता हैं। हमें ही कृष्ण को ढूँढ़ने जाना ही होगा।" नारद ने कहा।

"हंस", जरासन्ध ने कहा, "हमें अब चलना चाहिए। नहीं तो शत्रु दूर निकल जायेंगे।"

"नारद !" परशुराम ने हँसकर कहा, "कृष्ण को भी कैसे-कैसे उद्देश्य से लोग ढूँढ़ते हैं। जरासन्ध भी कृष्ण से मिलने को तड़प रहा है, आप भी कृष्ण के लिए तरस रहे हैं। देखना है कृष्ण किसे मिलते हैं, किस रूप में मिलते हैं !"

यह खोज किसके लिए !

"जरासन्ध, आप ठहरते तो मुझे अच्छा लगता। पर आपका भविष्य तो कृष्ण से जुड़ा है, अस्तु जाने दे रहा हूँ। इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। सुखपूर्वक जायें" परशुराम ने कहा।

"भगवन्, हमें आशीर्वाद प्रदान करें कि हम विजय प्राप्त करें।" हंस ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"हंस, आप तो पण्डित हो। आप जानते हो कि युद्ध में प्रवृत्त दोनों पक्ष आशीर्वाद माँगने आयें, तब इतना ही कहा जा सकता है कि आप पूरे पराक्रम से लड़ियेगा। उसके बाद विजय आपके पराक्रम से जुड़ जाती है।" परशुराम ने कहा।

"और इस युग में पराक्रम का सम्बन्ध जरासन्ध से है।" जरासन्ध ने खुमारी से कहा। "कृष्ण और बलराम को जीतकर जब वापस लौटूँगा, तब राह इधर से न जाती हो तो भी यहाँ होकर ही जाऊँगा।"

दोनों रथ छूटे, और घड़ी भर में तो क्षितिज पर उड़ती धूल ही रथों की स्मृति के रूप में उड़ती रही।

"वाह रे कृष्ण !" परशुराम ने मन-ही-मन कहा, "लोग आपसे मिलने के लिए कैसे-कैसे बहाने ढूँढ़ते हैं।"

वनपथ पर ऐसे ही विचारों में डूबे वे चले जा रहे थे। इतने में वीणा नदी के तट पर छोटी-सी यज्ञवेदी बनाकर आहुति दे रहे नारद को उन्होंने देखा और वे उस ओर मुड़ गये !

नारद के मधुर स्वरों में वेदमन्त्रों का गान सुनने के लिए यज्ञवेदी की अग्निज्वालाएँ नारद के मुख तक आ-जा रही थीं। मधुर गान सुनने के लिए पक्षी डालियों पर ही रुक गये थे। नारद की आहुतियाँ स्वीकार करने हेतु मानो देवता स्वयं उपस्थित हुए हों, ऐसा वातावरण बन गया था।

नारद की दृष्टि परशुराम पर पड़ी। वे अन्तिम आहुति दे रहे थे, अस्तु आहुति देकर अनायास ही बोल उठे, 'श्रीकृष्णार्पणमस्तु।'

"नारद," परशुराम ने हँसकर कहा, "अन्त में तो शान्ति-पाठ करने की परम्परा है, उसके बदले वेद-वेदान्त में नहीं है, ऐसा यह कौन-सा मन्त्र आपने ढूँढ़ निकाला है ?"

नारद परशुराम की ओर अन्यमनस्क भाव से देखते रहे। परशुराम के शब्दों के मर्म ने नारद के कान तक पहुँचने में मानो काफी समय लिया, फिर वे बोले, "भगवन्, उस घड़ी मेरा अपनी जीभ पर वश न था।"

"नारद," परशुराम ने यज्ञवेदी में अपने हाथों से समिधा इकट्ठी करते हुए कहा, "मेरे मन में एक प्रश्न उठता है, पर सोचता हूँ कि आपसे यह प्रश्न पूछूँ या नहीं ?"

"भगवान जामदग्नेय, आपके प्रश्न का उत्तर मैं दे सकूँगा या नहीं यह मैं नहीं जानता। पर उत्तर देने का प्रयत्न तो अवश्य करूँगा।" नारद ने कहा।

"आप आये तब से मैं आपकी हालत देख रहा हूँ। आप अतीव उत्कटता से कृष्ण को ढूँढ़ रहे हैं। ऐसी उत्कटता इस युग में तो विरल ही है।"

"भृगुबन्धु ऐसा न कहें। आप एक बार वृन्दावन हो आयें तो उत्कटता किसे कहते हैं यह जान सकेंगे।" नारद ने कहा और उनके स्मृतिपटल पर नन्द, यशोदा और राधा के चित्र तैर गये।

"होगा ! मैंने उसे नहीं देखा है, पर आपकी तड़पन तो मैं अपनी आँखों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देख रहा हूँ। आप कृष्ण को ढूँढ़ने मथुरा के कारावास में गये, तपोवन और अयोध्या में भटके, ब्रज में गये, वहाँ से पुनः मथुरा गये और वहाँ से धरती नाप कर यहाँ शूर्पारक तक चले आये। क्यों ? किसलिए नारद ? क्यों इस तरह भटक रहे हैं ?" परशुराम ने पूछा।

"किसलिए नारद, किसलिए ?" परशुराम का यह प्रश्न मानो समूचे वातावरण में छा गया हो, ऐसा नारद को लगा। वीणा नदी की कम्पित लहरें पूछ रही थीं "किसलिए नारद, किसलिए ?"

यज्ञवेदी में से लपकती ज्वालाएँ पूछ रही थीं "किसलिए ?"

वनकुंजों में अचानक पक्षियों ने शोर मचा दिया। उसमें से एक ही आवाज उभर रही थी "किसलिए ?"

"किसलिए ?" नारद अचानक बोल उठे। ये शब्द अब समूचे वातावरण पर विजय प्राप्त करके नारद के मन में धँस रहे थे और अणु-अणु से, रोम-रोम से प्रकट हो रहे थे।

"भगवान जामदग्नेय, मुझे भी समझ में नहीं आता कि मैं किसलिए कृष्ण की खोज में भटक रहा हूँ ?" नारद ने कहा, उनकी आवाज में व्याकुलता का कम्पन था।

परशुराम नारद के मन की स्थिति समझ सके थे, अस्तु चुपचाप दूसरी ओर देखकर वीणा नदी के तट पर खेल रहे बालकों की क्रीड़ा निरखने लगे।

"भगवन्", नारद ने कहा, "यह कृष्ण, जिसे मैं ढूँढ़ रहा हूँ, वह कौन है ? वसुदेव का पुत्र ? नन्द का लाड़ला, कंस का काल—वह कौन है ? और मैं उसे क्यों ढूँढ़ रहा हूँ ?"

और थोड़ी देर चुप रहकर स्वयं ही अपने सवाल का जवाब दे रहे हों, इस प्रकार नारद बोले, "भगवन्, आपने तो अब अपने सक्रिय वर्ष पूरे कर लिये हैं। आपने यह दुनिया क्षत्रिय-विहीन करने का प्रयत्न किया, पर सफल नहीं हुए। अब एक क्षत्रिय इस दुनिया में ब्रह्मणत्व की स्थापना करने आया है। देखें, वह कितना सफल होता है।"

"आप किसकी बात करते हैं, नारद ?" परशुराम ने पूछा।

"कृष्ण की। आप सुखी हैं भगवान कि इस वीणा नदी के तट पर आप अलग आवास में दुनिया को भुलाकर रह सकते हैं। दुनिया आज बदल गयी है। आपने चक्रवर्ती भरत का आर्यावर्त देखा था। आज आर्यावर्त के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, कुरु पांचाल से ईर्ष्या करते हैं, पांचाल मगध की ओर जाती नदी की धारा मोड़ रहे हैं, यादवों की चेदिराज से अनबन है, चेदि का युवराज कुण्डिनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी पर नजर गड़ाये बैठा है, मगध को अपना साम्राज्य का विस्तार करना है। भरत के वंशज आपस में ही झगड़ रहे हैं। पाण्डु ने उनके प्रति जो अन्याय किया, उसका बदला दुर्योधन चुकाये, यह धृतराष्ट्र चुपचाप बैठे देखते रहते हैं। उधर धर्मावतार माने जाते युधिष्ठिर दुर्योधन के हक छीनने के प्रयास कर रहे हैं। द्रोण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुरुओं और पांचालों के बीच उगी विष-बेल को पराक्रम के जल से सींच रहे हैं। भगवान जामदग्नेय, आज आर्यावर्त एकजुट नहीं रहा है। उसके खण्ड-खण्ड हो रहे हैं—और अभी भी कहाँ कोई चैन से बैठा है !"

"नारद, आप यह क्या कह रहे हैं ? भिन्न-भिन्न राज्य तो हो सकते हैं, पर धर्म के शासन की दृष्टि से वे एक हैं।" परशुराम ने कहा।

"धर्म का शासन।" नारद फीकी हँसी हँसे, "बहुत मीठे शब्द हैं, भगवन्। पर आज धर्म के शासन को कौन मानता है ? अपने कल्याण से ऊपर उठकर दूसरा कोई धर्म हो सकता है क्या, यह प्रश्न जरा जाकर शाल्व से पूछियेगा। करवीरपुर के शृंगाल से जाकर पूछें कि अपने आपकी—'भगवान वासुदेव' के रूप में पूजा करवाने के बदले वह धर्म की पूजा क्यों नहीं करवाता। धर्म का शासन विशाल दृष्टिवालों के लिए है। आज तो आर्यावर्त में सभी टुच्चे बन गये हैं। भीष्म या द्रुपद जैसे महारथी भी संयोग की प्रबलता के समक्ष अपना महत्त्व गँवा बैठे हैं।"

"नारद, परिस्थिति बिगड़ रही है, यह तो मैं यहाँ बैठे देख सकता हूँ, पर वह इस हद तक बिगड़ चुकी है इसका मुझे पता नहीं था।" परशुराम ने कहा। उनके विशाल नेत्रों पर चिन्ता के बादल घिर आये।

"इतना ही पर्याप्त नहीं है, भगवन्। इस देश के शासक संकुचित मनोवृत्ति के हो गये हैं, और जनता अविश्वसनीय हो गयी है। लोग प्रेम करना भूल गये हैं, रोना भूल गये हैं, हँसना भूल गये हैं। अब वे जहाँ हँसना नहीं चाहिए, वहाँ हँसते हैं, जहाँ कोई उपाय नहीं सूझता वहाँ रोते हैं, किसी मृत तत्त्व से प्रेम करते हैं।" नारद ने कहा। उनके होंठ कठोरता से भिंच गये थे। "मैं तो इस पृथ्वी पर भटकता रहता हूँ। जहाँ भी जाता हूँ वहाँ विधिवत् मेरा सत्कार भी होता है, पर मेरे चरण पखारने हेतु राजा स्वर्णपात्र में जो जल भरकर लाते हैं वह ढुलक जाता है। इसी से देखिये इस पैर के तलुवे में लगा मैल धुल नहीं सका है।"

"नारद, तनिक स्वस्थ होइए।" परशुराम ने कहा। और नदी किनारे पानी की मटकी भरने आये एक ऋषि कुमार से कहा, "सुशेल, जलपात्र यहाँ लाना। देवर्षि के लिए…"

सुशेल द्वारा लाये जल को एक झटके से गटगटा पीकर नारद ने कहा, "भगवन्, आप पूछते हैं, मैं किसलिए कृष्ण को ढूँढ़ रहा हूँ। मैंने भी अपने आप से यह सवाल पूछा है। मुझे इस देश में राज्य नहीं करना है, राजपुरोहित बनकर पुजवाना नहीं है, तब यमुना-तट पर स्थित अपने आश्रम को छोड़कर मैं क्यों निकल पड़ा हूँ ?"

नारद की आँखें मानो किसी दिव्य तेज-प्रभा को देख रही हों इस प्रकार चमक रही थीं। आँखें आकाश में लहराते नील धवल रंग को समेट लेने को विकल थीं। उन्होंने कहा, "मैने सुना था कि एक तारनहार अवतरित होनेवाला है, जो यादवों को कंस के सन्त्रास से मुक्त करेगा। उसके जन्म की मैं प्रतीक्षा कर रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवकी की आठवीं सन्तान की मैं राह देख रहा था और एक दिन सबेरे कंस ने मुझसे कहा, "नारद देवकी की आठवीं सन्तान तो हवा की गुड़िया थी।" और मेरी श्रद्धा जागी। मुझे विश्वास हो गया कि तारनहार कहीं पैदा हो गया है, नहीं तो कहीं स्त्रियाँ हवा की गुड़िया पैदा करती हैं ?" नारद मानो किसी देव-वाणी का उद्घोष कर रहे हों, इस प्रकार धाराप्रवाह बोल रहे थे। ऋषिकुमार सुशेल भी वहाँ खड़ा रह गया था। पर नारद अटके तब उसे ध्यान आया कि देवर्षि और भगवान जामदग्नेय जब बात कर रहे हों तब वहाँ बीच में खड़ा रहना विवेकयुक्त नहीं होगा, अस्तु प्रणाम करके वह चला गया।

नारद ने कहा, "और जामदग्नेय, फिर मैं ब्रज गया, वृन्दावन गया, वृन्दावन की धरती पर पहली बार मैंने प्रेम के दर्शन किये। सँकरे मनवाले राज-प्रतिनिधियों और अपने आपके प्रेम से आगे न बढ़ पाते कूपमण्डूक प्रजाजनों में मैंने कहीं भी प्रेम नहीं देखा था, पर ब्रज में मैंने यमुना के प्रवाह से अधिक वेगवान गोप-गोपियों के प्रेम का प्रवाह देखा। माता-पिता की ममता किसे कहते हैं इसका अनुभव किया और मुझे लगा कि यह चमत्कार जिस बालक की उपस्थिति से हुआ है, वह अवश्य दुनिया को बदल सकेगा।"

"अकेला कृष्ण क्या कर सकेगा ?" परशुराम ने पूछा, "अभी ही जरासन्ध यहाँ से गया है। उसके पास तेईस अक्षौहिणी सेना है। घड़ी-दो घड़ी में वह कृष्ण को मात दे देगा तब ?"

"नहीं, वह कृष्ण को मात नहीं दे सकेगा।" नारद ने कहा। उनकी आवाज में विश्वसनीयता का बल था, दृढ़ता थी।

"वह कैसे ?" परशुराम को आश्चर्य हुआ।

"क्योंकि जरासन्ध कृष्ण से डरता है और उसे अपनी सेना पर भरोसा नहीं है। इसलिए तो वह कपट से कृष्ण को मारा जा सकता है या नहीं, इसका पता लगाने सेना से विलग होकर यहाँ आया था। वह जानता है कि कृष्ण को मगध नहीं चाहिए। कृष्ण को गिरिव्रज पर यादवों का झण्डा नहीं फहराना है। इसी से वह कृष्ण से डरता है। उग्रसेन से वह नहीं डरता, भीष्म या द्रुपद से भी नहीं डरता, पर कृष्ण से उसे भय लगता है। क्योंकि कृष्ण अपने लिए नहीं लड़ रहे हैं, आर्यावर्त के लिए लड़ रहे हैं। वे लोगों से प्रेम करते हैं, वह भी यहाँ तक कि कंस के राजमहल की कुबड़ी दासी भी कृष्ण को अपना प्रियतम मानकर पूजा करती है।"

"वह कौन है ?" परशुराम ने सहज हँसकर पूछा।

"त्रिवक्रा। पर उस त्रिवक्रा को कृष्ण वास्तव में मिले थे, पर जिन्होंने कृष्ण को देखा भी नहीं है ऐसी इस देश की कितनी ही सुन्दरियों को कृष्ण के रूप में श्रद्धा प्रदान की है। कृष्ण के पीछे मैं जहाँ-जहाँ भी गया, वहाँ-वहाँ यह व्यक्ति कैसे चमत्कार करता है यह देखता आया हूँ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद ने कहा, "मैं कृष्ण को किसलिए ढूँढ़ रहा हूँ इसका तो मेरे पास कोई उत्तर नहीं है, पर भगवान परशुराम, मुझे लगता है कि छिन्न-भिन्न हो रहा यह देश शायद कृष्ण के सान्निध्य में एक हो सकेगा। यह तार-तार हो गया जीवन-वस्त्र कृष्ण के प्रेम में अपनी दृढ़ता प्राप्त कर सकेगा...आहत मानव शायद कृष्ण के पास जायेगा और स्वस्थ हो जायेगा।"

परशुराम नारद के शब्दों को वातावरण में गूँजते सुन रहे थे। ये भविष्यवाणी जैसी दृढ़ता से कहे गये शब्द थे। परशुराम अभी कल ही कृष्ण से मिले थे। पर नारद की बात सुनने के बाद वह मन-ही-मन शंका कर रहे थे कि मैंने कृष्ण को तो देखा, पर शायद मैं उन्हें पा नहीं सका। कृष्ण अवतारी पुरुष हैं, ऐसा लोग कहते हैं और ऐसी ही दीप्ति तो परशुराम ने भी इस युवक के चकाचौंध करनेवाले व्यक्तित्व में देखी थी ! पर इस आदमी में इस छिन्न-भिन्न देश को एक करने की प्रतिभा होगी, इसकी तो कल्पना भी परशुराम को नहीं थी।

"नारद", परशुराम ने कहा, "मैं तो कृष्ण से कल ही मिला था, पर आप तो इस समय भी उनके साथ हैं। अब मुझे अपने प्रश्न की निरर्थकता समझ में आ रही है। आप किसलिए कृष्ण को ढूँढ़ रहे हैं, यह महत्त्व का प्रश्न नहीं है। मैं और अन्य सभी लोग कृष्ण को क्यों नहीं ढूँढ़ते, मुझे तो अब यही प्रश्न सार्थक लगता है।"

शिष्यों के अध्यापन का समय हो गया था, अतः परशुराम उठ खड़े हुए और कहा, "देवर्षि रात को हम चन्द्र के प्रकाश में बैठकर आगे बात करेंगे !"

"भगवन्, आपकी स्नेहभरी छाँह में आज की रात तो क्या, आनेवाली सभी रातें व्यतीत करना मुझे अच्छा लगेगा, पर आज रात तो आपको मुझे अनुज्ञा देनी ही पड़ेगी। मैं थोड़ी ही देर में यहाँ से प्रयाण करूँगा।" नारद ने कहा।

"देवर्षि, अब तो कृष्ण जरासन्ध के साथ युद्ध में रत रहेंगे। प्रवर्षण पर्वत का घेरा महीनों तक चलेगा, ऐसा लगता है। आप जल्दबाजी न करें। कुछ दिन आश्रम में ठहरें, तो शिष्यों को भी आप जैसे सन्त की संगति का लाभ प्राप्त होगा।" परशुराम ने कहा।

"नहीं जामदग्नेय," नारद ने विवेकपूर्ण दृढ़ता से कहा, "मेरी इस शोधयात्रा का अन्त मैं सन्निकट देख रहा हूँ। एक महान संहार-सत्र आरम्भ होने के शंखनाद सुनायी दे रहे हैं। कुरुओं में भातृयुद्ध की स्थापना हो चुकी है, द्रुपद राह देखकर बैठा है कि द्रोण जिसका साथ दें, उसके विरोधी का वह साथ दे।"

"मान लिया नारद, कि यह युद्ध होगा—तो आप या कृष्ण उसे किस प्रकार रोक सकेंगे ?" परशुराम ने कहा।

"मैं अकेला तो यह संहार नहीं रोक सकूँगा, पर यह महायुद्ध मचे उससे पहले यदि कृष्ण मुझे मिल जायें तो शायद हम दोनों मिलकर युद्ध रोक लें।" नारद ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"और मान लो न मिलें, तो ?"

"तो मुझे नहीं लगता कि इस युद्ध में कोई भी बचेगा और बचा भी तो जीवित शव के समान रहेगा।"

"कृष्ण भी ?" परशुराम ने धारदार सवाल पूछा।

नारद ने एक क्षण परशुराम की ओर देखा और फिर दृढ़तापूर्वक होठ बन्द किये और कहा, "यदि महायुद्ध होगा तो कृष्ण भी नहीं बचेंगे, धर्म भी नहीं बचेगा।"

पर्वत पर आग लगी

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि आप मुझे बन्दी बनाकर रखना चाहते हैं।" नारद ने सख्ती से कहा।

इस भूतल पर कभी भी किसी राजा ने उनके साथ ऐसा व्यवहार करने की धृष्टता नहीं की थी। नारद के क्रोध और विस्मय की सीमा न थी।

"देवर्षि, आप तो पूजनीय हैं" डिम्भक ने वाणी में यथासम्भव मिठास घोलकर उत्तर दिया, "आपके समान प्रातःस्मरणीय विभूति को कोई कारावास में बन्द कर सकता है ? हम तो जितने दिन भी सम्भव हो आपके आतिथ्य का लाभ उठाना चाहते हैं !"

भगवान परशुराम के आश्रम से निकले, तब नारद को मार्ग में जरासन्ध की बात एकदम ही विस्मृत हो गयी थी। मार्ग में कितने ही गाँवों में दो तेजस्वी तरुण भाइयों द्वारा किये गये पराक्रमों की मजेदार बातें सुनते-सुनते वे प्रवर्षण पर्वत के पास आ पहुँचे, तब वहाँ एक विराट सैन्य छावनी डाले पड़ा था। इसे देखते ही नारद को याद आया : अरे, यहाँ तो कृष्ण और जरासन्ध के बीच मुकाबला होनेवाला है।

नारद किसी से भी मिले बिना सीधे ही पर्वत पर जाना चाहते थे, पर जरासन्ध और उसके मन्त्रियों ने नारद से रुक जाने का आग्रह किया।

"मैं तो आपके शत्रु से मिलने जा रहा हूँ।" नारद ने कहा।

"पर आप हमारे मित्र हैं, उसका क्या होगा ?" हंस ने कहा।

और नारद एक रात रुक गये।

उस रात जरासन्ध ने कुछ अधिक मात्रा में मदिरा-पान किया था। भोजन के बाद वह बात करने बैठा, कुछ चिड़चिड़ाहट से और कुछ आत्मश्लाघा भरकर उसने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूछा, "देवर्षि, आप समझते हैं कि ये दोनों भाई पर्वत पर जा बैठे हैं, इससे अविजेय हैं ?"

जरासन्ध ने पर्वत पर चढ़ने के अनेक प्रयत्न किये, पर उन सभी को कृष्ण और बलराम ने निष्फल कर दिया। जरासन्ध की अच्छी-खासी सेना की टुकड़ी इसमें मारी गयी, यह नारद ने सुना था, उन्होंने मन्द स्मित के साथ उत्तर दिया, "अविजेय कौन है, यह तो बराबर का खेल खेला जाये, तभी समझ में आयेगा। पर सम्राट्, तलहटी में खड़े लाखों सैनिकों के मुकाबले शिखर पर बैठा एक व्यक्ति भारी पड़ता है, युद्धनीति का यह पाठ तो सुविदित है न !"

"देवर्षि, आप ऋषि-मुनिजनों को युद्धनीति के पाठ पढ़ाने में हमारे जितनी विशेषज्ञता नहीं हो सकती।" जरासन्ध ने मूँछ पर मुर्रा देते हुए कहा।

"होगा, पर राजन्, राजपुरुष ऋषियों के आश्रमों में ही युद्धनीति की शिक्षा पाते रहे हैं, इसका क्या अर्थ ?" नारद ने पूछा।

"वह तो युद्धनीति है देवर्षि, मैं तो युद्ध की अनीति बरतनेवाला हूँ।" जरासन्ध ने अट्टहास करते हुए कहा।

"सम्राट्…" डिम्भक ने जरासन्ध को रोकने का प्रयास किया।

पर जरासन्ध ने डिम्भक के शब्दों पर ध्यान नहीं दिया और कहा, "देवर्षि क्या आप मानते हैं कि इस पर्वत के चारों ओर घेरा डालकर मैं महीनों तक पड़ा रहूँगा ?"

"सम्राट्, आप किस प्रकार से युद्ध करनेवाले हैं, यह जानने का काम मेरा नहीं है।" नारद ने कहा, "अपना यह रहस्य आप प्रगट न करें, इसी में आपका और मेरा कल्याण है।"

"मैं आपसे, आपके कृष्ण या बलराम से डरता नहीं…" जरासन्ध बोला।

"महाराज…" हंस ने जरासन्ध को रोकने का प्रयास किया, पर जरासन्ध इस समय किसी की भी सुनने की स्थिति में नहीं था। उसने कहा, "देवर्षि, मैं समूचे प्रवर्षण पर्वत को जला डालूँगा। इस समय मेरे गुप्तचर व्यूहात्मक स्थलों पर स्थापित हो गये हैं। मेरा संकेत मिलते ही समूचा पर्वत भभककर जल उठेगा। आपका कृष्ण, आपका बलराम और उसे आश्रय देनेवाले प्रवर्षणवासी इस विराट यज्ञ में अग्निदेव की आहुति बन जायेंगे।"

जरासन्ध के शब्द सुनकर नारद काँप उठे। जरासन्ध की बात में उन्हें रुचि नहीं लेनी थी, फिर भी पूछ ही बैठे, "फिर उन गुप्तचरों का क्या होगा ? वे कैसे बचेंगे ?"

"उन्हें कौन बचाना चाहता है। वे सब भी कृष्ण और बलराम के साथ भस्म हो जायेंगे।" जरासन्ध ने क्रूरतापूर्वक हँसकर कहा।

"पर वे तो आपके आदमी हैं !" नारद को मानव-प्राणों के लिए इतनी विडम्बनापूर्वक बात करते हुए जरासन्ध के लिए घृणा टपक रही थी।

"मेरे आदमी मेरे लिए प्राण नहीं देंगे, तो और कौन देगा ?" जरासन्ध ने पूछा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारी रात नारद ने काकनिद्रा में व्यतीत की। जरा-सी आँख लगती कि लहू की नदियाँ बहती दिखने लगतीं। समूची छावनी में मानो शवों की दुर्गन्ध भर गयी थी। आदमी के प्राणों की आदमी इस हद तक अवहेलना कैसे कर सकता है, यह बात नारद की समझ में नहीं आ रही थी।

अर्धजागृति और अर्धतन्द्रा अवस्था में उन्हें आग की लपकती ज्वालाएँ और उनमें होम होते सैनिकों के आर्तनाद सुनाई देते रहे। इस दुःस्वप्न से वे ब्राह्म मुहूर्त में जाग उठे और स्नान-सन्ध्या करके यथाशीघ्र इस वातावरण से दूर हो जाने का संकल्प किया।

सम्भवतः जरासन्ध पर्वत में आग लगाये, और वे स्वयं भी उसमें होम हो जायें, तो !''सहसा यह प्रश्न नारद के मन में कौंध गया।

तत्काल ही उनके मन ने पलटकर सवाल किया, "नारद तुम्हें प्राण बहुत प्यारे हैं ? यदि इस आग में कृष्ण और बलराम भस्मीभूत हो जानेवाले हों तो फिर तुम किसके लिए बचे रहना चाहते हो ?"

नारद ने हाथ में वीणा ली और 'नारायण' मन्त्र का जाप करते हुए बाहर निकल आये, तभी वहाँ एक शस्त्रधारी सैनिक ने उनकी राह रोक ली, "देवर्षि, मन्त्रिवर डिम्भक आपसे मिलने आ रहे हैं, अस्तु कृपा करके आप यहीं रुके रहें ऐसी उन्होंने विनती की है।"

"उन्होंने क्यों तकलीफ की।" नारद ने कहा, "जाते-जाते मैं स्वयं ही उनसे मिल लेता।"

इधर जरासन्ध, हंस और डिम्भक गम्भीर मन्त्रणा में व्यस्त थे। नारद प्रवर्षण पर्वत को जला देने की योजना जानते हैं और यदि वे कृष्ण को इस बारे में बता देंगे तो वे बचने की कोई योजना ढूँढ़ निकालेंगे, अस्तु किसी भी युक्ति से नारद को वहाँ जाने से रोकना ही होगा, ऐसा हंस ने सोचा।

"पर कितने समय तक उन्हें रोका जा सकेगा ?" डिम्भक ने पूछा, "कल रात ही वे बड़ी मुश्किल से रुके थे !"

"तो उन्हें कारावास में डालेंगे !" जरासन्ध ने कहा।

"महाराज, ये कोई ऐसे-वैसे अतिथि नहीं हैं, देवर्षि नारद हैं। वे यदि कुपित हो गये तो इस समय हमारे पक्ष में आये राजाओं में से एक भी हमारे पक्ष में खड़ा नहीं रहेगा।" हंस ने कहा।

"आपके आर्यावर्त की यही तो मुसीबत है : इन ब्राह्मणों ने उसे कुतर डाला है।" जरासन्ध ने कहा, "ठीक है तो फिर फुसला-पटाकर उन्हें रोक रखिये।"

"डिम्भक, तुम जाओ और देवर्षि को रोक रक्खो। मैं तब तक कोई तरकीब सोचता हूँ।" हंस ने कहा।

डिम्भक जब देवर्षि नारद के पास पहुँचा, तब वे अधीर होकर बैठे थे। "आपकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राह देखते-देखते मैं थक गया। मुझे तत्काल ही प्रस्थान करना है। सम्राट् यदि मन्त्रणा से निवृत्त हो चुके हों तो उनसे मिलकर जाऊँ—नहीं तो आप ही मेरे बदले क्षमा माँग लीजियेगा !"

"सम्राट् ने आपसे कुछ दिन और रुकने का अनुरोध किया है।" डिम्भक ने कहा।

"उनकी अतिथिप्रियता के लिए मैं ऋणी हूँ। पर आज मेरे लिए जाना अनिवार्य है।" नारद ने कहा।

"देवर्षि, आप हमारा अनुरोध स्वीकार कर लें तो अच्छा होगा; क्योंकि इसमें मेरा, आपका और सबका हित सन्निहित है।" डिम्भक ने कहा।

"कैसे भला ?"

"देवर्षि, धृष्टता लगे तो क्षमा करेंगे, पर सम्राट् ने मुझे आज्ञा दी है कि मुझे आपको साग्रह रोकना है।" डिम्भक ने डरते-डरते कहा।

"मुझे आपके सम्राट् की आज्ञा पालन करनी ही होगी क्या ?" नारद ने उच्च स्वर में पूछा, "डिम्भक, वे आपके लिए सम्राट् होंगे, पर मेरे लिए तो आर्यावर्त के अनेक राजाओं में से वे केवल एक हैं, और वह भी बहुत अच्छे तो नहीं ही हैं।"

"देवर्षि, मैं निरुपाय हूँ। आपकी सुरक्षा के लिए भी मैं आपको यहाँ से आगे बढ़ने देना नहीं चाहता। आप चाहें तो यहाँ से कुछ दूर पर तुलसी-तीर्थ है, वहाँ कुछ समय तक रह सकते हैं और इसके लिए मैं उत्तम प्रबन्ध कर दूँगा। सम्राट् नहीं चाहते कि आपके समान पूजनीय ऋषि किसी प्रकार के जोखिम में फँस जायें।" डिम्भक ने कहा।

"जिसे अपने आदमी आग में भस्म हो जायें इसकी चिन्ता नहीं है, वह जरासन्ध साधु-सन्तों के जोखिम की कब से चिन्ता करने लगे हैं ?" नारद ने प्रश्न किया।

"आपको जो भी मानना हो, मानें" डिम्भक ने अपनी आवाज में दृढ़ निश्चय का बल प्रकट करते हुए कहा, "पर अब कुछ दिन आप यहाँ से आगे नहीं जा सकेंगे।"

नारद यह बात सुनते ही उठकर खड़े हो गये। उनकी आँखें दोपहर की सूर्यकिरणों के समान अंगारे बरसा रही थीं, उनके होठ काँप रहे थे, उनकी वीणा भी अनजाने स्पर्श कर गयी उनकी अँगुलियों की शिकायत कर रही हो इस प्रकार वेदनाभरी झनक रही थी।

नारद ने कहा, "मैं देखता हूँ कौन मुझे रोकता है।"

"देवर्षि आप मुझे दुविधा में न डालें।" डिम्भक ने कहा।

"आप मुझे···" नारद फीकी हँसी के साथ बोले, "कर देखिये प्रयत्न। आप अपने आदमियों को बुलाइये, तब तक मैं खड़ा हूँ।"

"नहीं, देवर्षि···"

"डिम्भक, आपकी वाणी बड़ी मीठी है। लेकिन शायद आप नहीं जानते कि मुझे कोई भी बाँध नहीं सका है। मैं जहाँ जाना चाहूँगा जाऊँगा।" नारद ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"देवर्षि, आप इसे अविनय मानेंगे तो मेरा दुर्भाग्य ही होगा। प्रवर्षण पर्वत पर जाने में बहुत जोखिम है, और आपको वहाँ जाने से हम जैसे भी हो सकेगा, रोकेंगे।"

"और मेरा भी संकल्प है कि किसी भी हालत में मैं प्रवर्षण पर्वत की ओर बढ़ूँगा।" नारद ने कहा।

पूनम की रात मेघमण्डल में आवृत्त चन्द्रमा की भाँति नारद का चेहरा वेदना से घिर गया है। उन्होंने जरासन्ध की छावनी से बाहर निकलने के संकल्प के साथ पैर बढ़ाया।

डिम्भक को समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसने अपने सैनिकों को संकेत किया, और पाँच हजार सैनिक पूर्व-सूचना के अनुसार पर्वत की ओर जाते मार्ग में दीवार की भाँति खड़े हो गये। इन सैनिकों के हाथों में नंगे फलवाले भाले सूर्य के प्रकाश में चमक रहे थे, और इन चमकते शस्त्रों के कारण मानो सूर्यकिरणों का महासागर लहरों के साथ उद्वेलित हो उठा हो, ऐसा लग रहा था।

नारद ने यह दृश्य देखा। इस दिवाप्रकाश से भासमान दृश्य की ओर उन्होंने अपलक दृष्टि जमायी और हाथ में विद्यमान वीणा पर 'नारायण' मन्त्र झंकृत किया। वीणा की यह झंकार रणक्षेत्र में उन्मत्त नरसिंघे की भाँति गरजी और नारद आगे बढ़े। ऐसा लगा मानो नारद के चमकते ललाट में, शस्त्रों से परावर्तित होता तेज समा गया है। नारद की गति देखते ही सैनिक हतप्रभ हो गये। नारद जिसके पास भी आते, वे सब जैसे आग को देखकर सर्प भागता है, उस प्रकार मार्ग दे रहे थे। पाँच हजार सैनिकों के इस मार्गावरोध को नारद जिस स्वस्थता से पार कर रहे थे, उसे देखकर डिम्भक का मस्तक भी आदर से झुक गया। अब इस ऋषि को रोकना अपनी औकात से परे है, यह बात उसे समझ में आ गयी।

नारद सैनिकों की बाड़ वेधकर बाहर निकले, तब उनके नेत्र, हविष होमने से जैसे अग्नि उग्र बनती है, उस प्रकार अत्यन्त तीव्रता से प्रज्वलित हो रहे थे।

अग्नि बरसाते नेत्र लिये नारद उस बाड़ से बाहर निकले कि तत्काल ही उनके कानों में जरासन्ध की आवाज आ टकरायी—

"लगता है बड़ी जल्दी में हैं देवर्षि। मैं आपसे मिलने आ रहा था, और जाना ही चाहते हों तो विदा देने आ रहा था।"

नारद अटके।

देखा सामने जरासन्ध खड़ा था। एक क्षण तो उसकी ओर देखे बिना चले जाने की नारद को इच्छा हुई, पर आर्य परम्परा के विवेक का नारद उल्लंघन न कर सके। और नदी का प्रवाह जैसे किसी शिला से टकराकर रुकता है, ऐसी खलबलाहट के साथ वे रुक गये।

"हमारे आतिथ्य में क्या कोई कमी आ गयी ?" जरासन्ध ने पूछा।

"आपके पास तो तेईस अक्षौहिणी सेना है, जरासन्ध, तब इस मुठ्ठी भर सैनिकों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को ही क्यों मेरे आतिथ्य के लिए नियुक्त किया। जरा देखना चाहता था कि आपकी समूची सेना भी मुझे रोकने में समर्थ हो सकती है या नहीं ?" नारद ने कहा।

"देवर्षि", जरासन्ध ने कहा, "मेरी सेना निःशस्त्र के सामने कभी भी शस्त्र नहीं उठाती। इसी से इन सभी ने आपको मार्ग दे दिया।"

"किसने कहा कि मैं निःशस्त्र हूँ। मेरे हाथ में वीणा है--और मेरे आसपास इस वीणा से झंकृत नारायण शब्द का स्वर कवच है, तनिक भी डरे बिना आप शस्त्र उठायें। आप तो अनीति के युद्ध में विश्वास करते हैं। आपको भला शस्त्र-निःशस्त्र का भेद क्यों ?" नारद ने पूछा।

"मुझे आपसे जबान नहीं लड़ानी है। नारद, मैं तो आपका कल्याण चाहता था। इस भभककर जलनेवाले प्रवर्षण पर्वत पर मैंने आपको जान-बूझकर जाने दिया, कोई ऐसा कहे, यह मुझे स्वीकार नहीं है।"

"या फिर आपको भय है कि मैं आपकी योजना से कृष्ण को अवगत करा दूँगा। जरासन्ध आपने जितने युद्ध लड़े हैं, उनसे कई गुना अधिक युद्ध मैंने देखे हैं। आपको मेरी देह की चिन्ता नहीं है, अपने व्यूह की चिन्ता है। आपको अभी भी मुझे रोकना हो तो आप आड़े आ सकते हैं। अपने शस्त्र तैयार रखिये।" नारद ने कहा और वे आगे चल पड़े।

ऐसा लगता था मानो जरासन्ध इस तेजस्वी ऋषि के समक्ष अपना समूचा ओज खो बैठा है। उसने कहा, "देवर्षि धीरे चलिये, प्रवर्षण पर्वत की ओर जानेवाले मार्ग तक मैं आपके साथ चल रहा हूँ।"

नारद को जरासन्ध के इस विवेक से विस्मय तो हुआ, पर तनिक भी विचलित हुए बिना वे धीमे कदम से आगे बढ़ते गये। तलहटी में सैनिकों द्वारा किये गये विनाश को देखकर नारद का जी जल गया। इस प्रदेश की समूची शोभा जरासन्ध की प्रचण्ड सेना ने हरण कर ली थी। और दूर दिखाई पड़ते प्रवर्षण पर्वत पर इस समय लकड़ियाँ, घास, बाँस और सूखी डालवाले वृक्ष चारों ओर से जुटा दिये गये हैं, यह नारद देख सकते थे। जरासन्ध यदि यह सब कर सका है तो और क्या कुछ नहीं कर सकेगा ! यहाँ से काटे गये जंगलों का उपयोग उसने पर्वत पर सूखी लकड़ियों के ढेर लगाने में किया था, ऐसा स्पष्ट दिखता था।

जरासन्ध नारद के इस अवलोकन को सूक्ष्म दृष्टि से देख रहा था और नारद के चेहरे पर घिरते चिन्ता के बादलों को देखकर वह मन-ही-मन मुदित हो रहा था।

और फिर वह सहसा ठिठक गया। नारद को इस प्रकार अटक गये जरासन्ध की गति समझ में नहीं आयी। जरासन्ध ने हाथ में धनुष लेकर एक तीर पर्वत की दिशा में चलाया—वह तीर हवा में झपट रहा था, तभी उसकी नोक पर रक्खा विस्फोटक पदार्थ सुलग उठा। यह सुलगता तीर ऐसा लग रहा था जैसे कोई गगन-पक्षी आकाश में उड़ रहा हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद को कुछ समझ में आया। यह जरासन्ध का संकेत था। जरासन्ध विजेता की दृष्टि से पर्वत की ओर एकटक देख रहा था। थोड़ी ही देर में तो पर्वत पर असंख्य स्थानों पर अग्नि भड़क उठी। पर्वत के चारों ओर हर क्षेत्र में वायु का अनुसरण करके लगायी अग्नि, धुएँ से मुक्त ज्वालाओं की पंक्तियों द्वारा, समूचे आकाश को शोभित कर रही थी।

इस पर्वत को पलभर में भड़ककर जलते देखकर नारद को समझ में नहीं आया कि वे क्या करें। पर्वत का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं था, जो अग्नि से बचा हो। अग्नि के कारण पर्वत में से बड़ी-बड़ी शिलायें उखड़कर, लाल भभूका आयुधों की भाँति उछलकर, भूमि पर गिर रही थीं और सूर्य जैसे अपने तेज से बादलों को रंग देता है, उसी प्रकार अग्नि से युक्त होकर चतुर्दिक् ज्वालाओं में से उछल रहा यह पर्वत मानो विधिवत् सब कुछ लील रहा हो, इस प्रकार अपने प्रकाश से सर्वत्र व्याप्त हो रहा था। पहाड़ में विद्यमान धातु पिघलने लगी थी, वृक्ष सुलगने लगे थे और पशु व्यथा से चीत्कार करते आग में समा रहे थे और इस कारण महा-पर्वत व्यथित होकर मानो चीख रहा हो, ऐसा लग रहा था।

पर्वत की चीख-पुकार के साथ ही एक और आवाज नारद को सुनायी दी, वह मानो किसी का अट्टहास थी। नारद ने घूमकर देखा तो जरासन्ध जैसे पागल हो गया हो इस तरह हँस रहा था। उसने प्रलय-काल की अग्नि जैसी प्रभा से चमकते पर्वत की ओर इंगित करके स्तब्ध बनकर खड़े नारद से कहा, "नारद, आपको कृष्ण से मिलने जाना है न ! जाइये ! इन ज्वालाओं की पगडण्डियों पर से होकर ऊपर चढ़ जाइये, इस प्रवर्षण-पर्वत पर !" और जरासन्ध का अट्टहास मानो दिशाओं को बहरा कर देगा, इस तरह चारों ओर फैल गया।

लोकोत्तर वाणी

जरासन्ध के अट्टहास की प्रतिध्वनि चतुर्दिक् से टकरा रही थी। उस सुलगते पर्वत की गगनगामी ज्वालाओं को देखकर वह हँस रहा था। उसने विजेता के गर्व से नारद की ओर देखा, और उसका हास्य अटक गया।

उसने आशा की थी कि इस समय नारद हतप्रभ बन गये होंगे। उनके चेहरे का नूर उड़ गया होगा। पर नारद अधिक स्वस्थ और प्रसन्न दिख रहे थे। उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होठ पर मृदुहास्य खेल रहा था। उनकी चमकती आँखों को मानो कोई आश्वासन मिल गया था।

एक तरफ थी भीषण आग, दूसरी ओर इस आग से भी अधिक दाहक अट्टहास था, इसके बीच पिसकर नारद क्षुब्ध हो गये होंगे, जरासन्ध को ऐसी उम्मीद थी, पर नारद मानो इस समूचे दृश्य से परे हों, ऐसा मन्द स्मित कर रहे थे।

यह देखकर जरासन्ध क्षुब्ध हो उठा। उसका हास्य उस आग में पिघल गया। उसे थोड़ा डर भी लगा। उसने नारद की ओर देखा और पूछा, "आप क्यों हँस रहे हैं, नारद ?"

"जरासन्ध, तुम्हारे ललाट पर मैं पराजय के लेख पढ़ रहा हूँ। तुम्हारे अट्टहास की ध्वनि खोखली प्रतीत होती है। इस आग की ज्वाला में सुलग रहे तुम्हारे आदमियों की चीख-पुकार तुम्हें सुनाई नहीं दे रही है ?"

जरासन्ध ने कान लगाये, आग में जल रहे पशुओं और मनुष्यों की करुण चीखें सुनाई पड़ रही थीं।

"जरासन्ध, ये जो सुलग रहे हैं, इन्हीं में से किसी व्यक्ति ने शायद कभी तुम पर किये गये तीर का प्रहार अपनी छाती पर झेला होता। तुम पर गदा प्रहार करने आये शत्रु को पीछे से झटककर मार दिया होता। जरासन्ध, ये तुम्हारे आदमी नहीं मर रहे हैं, इनमें से प्रत्येक आदमी के साथ तुम भी थोड़ा-थोड़ा मर रहे हो।"

"नारद, आप मुझे डराना चाहते हैं ?" जरासन्ध का गला सूख रहा था, उसे सूझ नहीं रहा था कि वह क्या कहे।

"नहीं, मैं तो जो दिख रहा है, उसे ही पढ़ रहा हूँ। इन सुलग रहे आदमियों के मित्र तुम्हारी सेना में होंगे। तुम्हारी सेना में धर्म और नीति को माननेवाले सेनानायक भी होंगे। वे सब इससे कुपित हो जायेंगे। तुम मगध से इतनी दूर पड़े हो और अब तुम्हारी यह सेना तुम्हारी नहीं है ?" नारद ने कहा।

"नारद, मेरी सेना मेरे आदेश में है", जरासन्ध ने गरजकर कहा, पर ये शब्द हवा में घुमड़कर जरासन्ध का उपहास कर रहे थे।

नारद ने वीणा के तार झंकृत करके कहा, "तुम पर दया आती है, जरासन्ध। पर तुम्हें यहाँ असहाय छोड़कर मुझे जाना ही पड़ेगा।"

"आप कहाँ जायेंगे देवर्षि ? सामने तो आग लगी है।" जरासन्ध ने कहा।

"सामने कृष्ण भी हैं, जरासन्ध, और इसी से मुझे श्रद्धा है कि इस भभककर जलते पर्वत की परिक्रमा करूँगा तो कहीं कोई पगडण्डी मिल ही जायेगी।" और नारद चल पड़े।

जरासन्ध शून्य आँखों से उस दिशा में देखता रह गया। अग्नि से प्रज्वलित उस पर्वत की दिशा में चले जा रहे नारद सूर्य से मिलने जा रहे शीतल चन्द्र से दिख रहे थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"सम्राट् !" पीछे से हंस का स्वर सुन पड़ा। जरासन्ध के कान से यह आवाज टकरायी, पर उसका अर्थ मन तक न पहुँच सके, इस हद तक उसकी इन्द्रियाँ बहरी हो गयी थीं।

"सम्राट्" हंस ने पास आकर कहा।

"हँ" मानो नींद से चौंककर जागा हो इस प्रकार अचकचाकर उसने हंस की ओर देखा, "क्या है हंस ?"

"महाराज, विश्वास करने लायक तो नहीं है पर सुना है, और जो सुना है वह सच भी लगता है।" हंस ने कहा।

"क्या सुना है ? क्या सच है ?" जरासन्ध ने पूछा।

हंस की जीभ लड़खड़ा रही थी। उसने कहा, "कृष्ण और बलराम पिछले छत्तीस घण्टों से हमारी छावनी में ही थे।"

"हमारी छावनी में ? कृष्ण और बलराम ?" प्रवर्षण पर्वत पर स्वयं जो सुलगता तीर छोड़ा था, वह मानो उसके अपने ही हृदय में चुभ गया हो, ऐसा जरासन्ध को अनुभव हुआ।

"हाँ, सम्राट्।"

"उन्हें पकड़ लिया गया ?"

"नहीं, वे अदृश्य हो गये, उसके बाद ही पता चला।"

"मन्त्री श्रेष्ठ हंस और डिम्भक को भी पता नहीं चला ? क्यों ?" जरासन्ध की आँखें गुस्से से लाल हो गयीं।

हंस थर-थर काँप रहा था। उसने कहा, "सम्राट, परसों रात हस्तिनापुर से एक दूत आया था, दुर्योधन और कर्ण के लिए सन्देश लेकर।"

"मुझे पता है, पर वह तो उनके परिवार की किसी महत्त्वपूर्ण घटना का सन्देश था, ऐसा ही कल दुर्योधन ने कहलवाया था।" जरासन्ध ने कहा।

"आपको कल दुर्योधन ने नहीं, कृष्ण ने ही कहलवाया था···" हंस ने कहा।

"क्या कहते हो हंस ? यह कैसे सम्भव है ?"

"दूत का सन्देश गम्भीर था। यदि मुझे मिली खबरें सच हैं तो वारणावत में पाण्डु की पत्नी और उसके पाँचों पुत्र जिस मकान में रहते थे उसमें आग लगी और वे जलकर भस्म हो गये। यह निर्देशक सन्देश था और दुर्योधन और कर्ण किसी भी औपचारिकता की परवाह किये बिना आधी रात में बिदा हो गये··· हमें उनके बिदा होने का सन्देश पहुँचाने का काम दूत और अपने खेमे के रक्षक को सौंपकर···।" हंस ने कहा।

"पाण्डव जल गये ?" जरासन्ध के लिए यह विश्वास करने योग्य खबर नहीं थी।

"हाँ, और यह खबर सुनकर दुर्योधन और कर्ण चले गये। तब उस दूत और रक्षकों को आपके पक्ष में लेकर कृष्ण और बलराम उस खेमे में रहे और उन्हींने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्योधन के नाम से आपको सन्देश भेजा था। यदि कोई मिलने भी गया तो उसे अस्वस्थता का बहाना बताकर वे कल बाहर निकले ही नहीं।"

"तुम्हें किसने बताया ?"

"मुझे अभी ही एक रक्षक ने आकर कहा कि दुर्योधन और कर्ण के खेमे में जो आदमी हैं वे दुर्योधन या कर्ण हों, ऐसा नहीं लगता। मैं जानकारी प्राप्त करने वहाँ गया, तो खेमा खाली था। वहाँ न दुर्योधन था, न कर्ण, न बलराम या कृष्ण, रक्षक भी नहीं थे।" हंस ने कहा।

"तो यह आग व्यर्थ ही लगायी।" जरासन्ध की आवाज भर्रा गयी, "हंस, तुम्हारे मन्त्रीपद को धिक्कार है···"

"सम्राट्, यह भाई इतने कुशल···"

"मुझे उनकी तारीफ नहीं सुननी है। आसपास के वन में ही वे छुपे होंगे, वे जहाँ भी हों, उन्हें ढूँढ़ निकालो !" जरासन्ध ने आज्ञा दी।

"सम्राट्" एक परिचित आवाज सुनायी दी।

"कौन ?" जरासन्ध ने पीछे देखा तो उसका पुत्र सहदेव खड़ा था। पुत्र के मुख से 'सम्राट्' का सम्बोधन सुनकर जरासन्ध को आश्चर्य हुआ, "क्यों सहदेव क्या है ?"

"सम्राट, सैन्य क्षुब्ध हो गया है, कोई भी हथियार उठाने को तैयार नहीं है !" सहदेव ने कहा।

"ऐसा ?" जरासन्ध इन एक के बाद एक-एक करके आते समाचारों से आकुल-व्याकुल हो गया था। "जो हथियार उठाने से इनकार करे उसे काट डालो।"

"सम्राट्, आपकी सेना में राजा हैं, सेनापति हैं, धर्मनीति से युद्ध करनेवाले सैनिक हैं, पर हत्यारों या कसाइयों को लाना हम भूल गये···"

"सहदेव, यह तू बोल रहा है ?"

"हाँ सम्राट्···"

"तू मेरा पुत्र और मुझे सम्राट् कहकर बुलाता है ?" जरासन्ध अब इस शब्द से भी दग्ध हो रहा था।

"हाँ सम्राट्, इस समय मैं आपकी सेना का एक सेनापति हूँ, और आपके समक्ष मेरी टुकड़ी में रोष की जो ज्वाला भड़क उठी है, उससे आपको अवगत कराने आया हूँ।" सहदेव ने कहा।

"सहदेव, सर्वोच्च सेनापति के रूप में मैं तुझे आज्ञा देता हूँ कि तेरी कमान में जो सैनिक हैं उन्हें शस्त्र-सज्जित रख, न जाने कब युद्ध करना पड़ सकता है।" जरासन्ध ने आज्ञासूचक आवाज में कहा।

"मेरी कमान के सैनिकों में से आपने पचास आदमी प्रवर्षण पर्वत पर भेजे थे।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"हाँ, पर इससे क्या ?"

"हमारी समूची सेना में से पाँच सौ से अधिक आदमी पर्वत पर आग लगाने की सा।मग्री संगठित करने गये थे।"

"हाँ, सहदेव, पर···"

"वे वापस लौट आयेंगे उसके बाद ही पर्वत पर आग लगाने का संकेत दिया जायेगा, ऐसा वचन आपके मन्त्रियों ने उन्हें दिया था और इसके साक्षी मैं, शिशुपाल और विचक्र तीनों हैं।"

"सहदेव, युद्ध के व्यूह में कभी-कभी अकल्पित परिवर्तन करना पड़ता है।" जरासन्ध ने कहा।

"अकल्पित परिवर्तन माने इतने सारे लोगों की आग में आहुति ?"

सहदेव ने उच्च स्वर में कहा, "जिस सर्वोच्च सेनापति को अपने सैनिकों के प्राण प्रिय नहीं हैं, उसके लिए शस्त्र उठाने को मेरे सैनिक तैयार नहीं हैं। मैं उन्हें कर्तव्य पालन करने को नहीं कहूँगा।"

"शिशुपाल क्या कहता है ?"

"उन्हें भी यह अचानक लगी आग से आश्चर्य हुआ है। युद्ध में महत्त्वपूर्ण निर्णय सेनापति से पूछकर ही लिये जाते हैं !" सहदेव ने कहा।

जरासन्ध का सिर चकरा रहा था। उसे नारद के शब्द याद आ रहे थे। 'जरासन्ध, तुम्हारे ललाट पर मैं पराजय के लेख पढ़ रहा हूँ।' उसके होठ गुस्से से फड़क रहे थे, उसका गला सूख रहा था। उसने चीखकर कहा, "सहदेव, मैं जरासन्ध, तेरा पिता, तुझे आज्ञा देता हूँ···"

"पिताजी, पुत्र होने के नाते मैं आपके साथ खड़ा रहूँगा। मैं अपने प्राण देकर भी आपकी रक्षा करूँगा। सेनापति के रूप में अपने सैन्य को कोई आज्ञा दे सकूँ, ऐसा अधिकार मेरे पास नहीं रहा है। मेरी टुकड़ी के एक नायक का अट्ठारह वर्ष का पुत्र उस प्रवर्षण पर्वत पर गये लोगों में से एक था। मेरे सर्वश्रेष्ठ तीरन्दाज रुकच का भाई भस्म हो गया। मैं किससे कहूँ ?"

जरासन्ध ने कहा, "तुम सब निकम्मे हो। तू, हंस, डिम्भक, शिशुपाल, विचक्र सबके सब कायर हो। मुझे किसी की जरूरत नहीं है।" और उसने अपने पास खड़े अंगरक्षक को आज्ञा दी, "मेरी गदा ले आओ, मैं अकेले कृष्ण और बलराम को ढूँढ़ने निकलूँगा। देखता हूँ वे कहाँ तक छुपते फिरते हैं !"

जरासन्ध ने हाथ में गदा ली। कन्धे पर धनुष और तरकश धारण किया।

तभी पास की ऊँची झाड़ियों में से कोई बड़ा हाथी आ रहा हो, ऐसी सरसराहट सुनाई पड़ी। जरासन्ध की नजर उस ओर गयी। एक कद्दावर युवक सामने से आ रहा था। जरासन्ध को लगा कि इस युवक को शायद कहीं देखा है। उसके कन्धे पर हल के आकार का एक बड़ा शस्त्र था, हाथ में गदा थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मदोन्मत्त हाथी की भाँति झाड़-झंखाड़ कचरता वह बाहर आया और कहा, "जरासन्ध, तुझे मुझसे अकेले लड़ना है न ?" अपनी वजनदार गदा उसने तिनके की भाँति हवा में उछाली—सोने से मढ़ी वह गदा एक ओर से सूर्य किरणों को और दूसरी ओर से प्रवर्षण पर्वत की ज्वालाओं को प्रतिबिम्बित कर रही थी।

जरासन्ध की आँखें एकाध पल को चौंधिया गयीं। जरासन्ध को लगा मानो साक्षात् रुद्र ही सामने आकर खड़े हो गये हैं। पर दूसरे ही क्षण उसने अपनी गदा उछाली और वह भी उस युवक की गदा जितनी ही ऊँची उछली।

कुछ क्षणों तक दोनों ने अपनी-अपनी गदाएँ उछाल-उछालकर लपक लीं। जरासन्ध ने आहत बाघ की भाँति गर्जना की और कहा, "बलराम, तेरा काल अब निकट आया है, अपने इष्ट देव को याद कर ले। मुझे बड़ा लम्बा हिसाब चुकाना है।"

"वही करने तो मैं आया हूँ।" बलराम ने स्वस्थ भाव से कहा, और अचानक धँसकर जरासन्ध द्वारा किये गये प्रहार को अपनी गदा पर झेला। जैसे दो पर्वत एक दूसरे से टकरा रहे हों, ऐसा धमाका हुआ और दोनों दो-दो कदम पीछे हटे। जरासन्ध और बलराम का यह युद्ध देखने के लिए सब लोग मार्ग से हटकर घेरा बनाकर खड़े हो गये। हंस, डिम्भक, शिशुपाल, सहदेव, विचक्र और अन्य राजपुरुष तथा सेनापति खबर सुनते ही वहाँ आ गये।

"आप सब लोग दूर रहियेगा। मैं अकेला ही काफी हूँ।" जरासन्ध ने कहा।

दो उन्मत्त सिंह एक दूसरे को घात में लेने के लिए ताक में हों, इस प्रकार दोनों घेरे में चक्कर लगा रहे थे। तभी बलराम ने एक प्रहार किया।

फिर एक बार दो मेघ-खण्ड टकराये हों, ऐसी गर्जना हुई। दोनों के बाहुद्वय विशाल पर्वत शिखरों जैसे लगते थे। महाबलवान जरासन्ध बायीं ओर चक्कर काटकर बलराम की ओर धँसा, अतः विद्युत्-वेग से बलराम दाहिनी ओर घूम गये।

युद्धरत हाथी जैसे परस्पर दन्त-शूल से प्रहार करते हैं, उसी प्रकार गदा-युद्ध में कुशल ये दोनों योद्धा सिंहनाद करके दसों दिशाओं को कँपाते हुए एक दूसरे पर गदा प्रहार कर रहे थे।

जरासन्ध के चरणों पर बलराम की गदा का प्रहार होने पर वज्र के आघात से फटते पर्वत जैसी प्रचण्ड ध्वनि सुनाई दी। पवन जैसे विन्ध्य पर्वत को डिगा नहीं सकता, उसी प्रकार जरासन्ध के हाथ से गदा श्रेष्ठ गदाधारी बलराम को तनिक भी डिगा नहीं सकी। मगधराज जरासन्ध भी अपने पराक्रम से बलराम की गदा का वेग सहन कर रहा था और पलटकर प्रहार कर रहा था।

दीर्घकाल तक विविध दाँवपेंच आजमाते, दोनों थकते, तब थोड़ा खड़े रहकर साँस लेते और फिर एक दूसरे पर टूट पड़ते।

लगता था इन दोनों में से कोई भी कभी भी थकेगा नहीं, पर इसी क्षण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जरासन्ध ने काफी पीछे हटकर बगल में खड़े एक रक्षक का भाला खींच लिया और विजली की तरह वह चमका। बलराम असावधान थे, पर एक क्षण में वे जरासन्ध के निशाने से परे हटे और वह भाला जहाँ से बलराम खिसक गये थे वहाँ, धरती में, बड़ी गहराई तक घुस गया।

बलराम ने वड़ी जोर से हुंकार की और गदा छोड़कर मूसल उठा लिया। कुपित हुए बलराम के हाथ में अमोघ बल और भयंकर आकृति के मूसल को देखकर जरासन्ध घबरा गया। अब काल निकट आ गया है, इस आभास के साथ उसने आँखें मूँद लीं।

उसी क्षण एक आवाज सुनाई दी।

यह आवाज इस लोक की है या परलोक की, जरासन्ध को समझ में नहीं आया, पर यह आवाज इतनी मधुर थी कि वह अन्य लोक से ही आ रही होगी, ऐसा जरासन्ध को प्रतीत हुआ। वह आवाज कह रही थी–

"वड़े भाई, उसे जीने दीजिए। इसकी मृत्यु का रूप विधाता ने कुछ भिन्न ही तय किया है..."

जरासन्ध चेतना की दुनिया छोड़ अचेत होकर धरती पर गिर पड़ा।

कृष्ण से विपरीत दिशा में

भीम को जलाशय ढूँढ़ने में अच्छा-खासा समय लगा। सन्ध्या होने में कुछ ही विलम्ब था, तभी उसने एक सिंह को आलस-भरी अँगड़ाई लेकर आगे जाते देखा। भीम ने उसी दिशा में पक्षियों को भी उड़ते देखा। सिंह के कदमों का अनुसरण करते हुए उसे जलाशय मिल गया।

आधे घण्टे से वह पानी ढूँढ़ रहा था। माता कुन्ती को प्यास लगी थी। युधिष्ठिर के होठ सूख रहे थे। अर्जुन का गला शुष्क हो रहा था। नकुल-सहदेव थक गये थे।

वह मटकी में पानी भरकर वापस लौटा तब पूर्णिमा के चन्द्र के उजियाले में बरगद के नीचे घासपात की शय्या बिछाकर चारों भाई और माता प्रगाढ़ निद्रा में सो चुके थे। अर्जुन भी पहरा देने के लिए जाग नहीं रहा था, अतः कितना थका रहा होगा! जागेगा तब पानी पियेगा, ऐसा सोचकर भीम ने मटकी ढककर तने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोखले में रख दी और इस निद्राधीन परिवार की रक्षा के लिए वहाँ पड़ी एक शिला पर जा बैठा।

माँ और भाई जमीन पर सो रहे हैं, यह देखकर भीम का हृदय भर आया। वसुदेव की बहन, भोज की पुत्री, सम्राट् विचित्रवीर्य की पुत्रवधू, महात्मा पाण्डु की पत्नी और पाँच पराक्रमी पुत्रों की माता, कोमल शय्याओं की आदी, इस समय थककर जमीन पर ढल गयी थी। एक ओर त्रिभुवन का राज्य करने योग्य धर्मराज सो रहे थे, दूसरी ओर वीर अर्जुन थे। अभी जो पुष्प नहीं बने, ऐसे कलियों-जैसे नकुल और सहदेव माँ के मस्तक और पैरों के पास सोये थे। चार प्रतापी पुत्रों के बीच सोयी माँ इस समय असहाय और दीन लग रही थी। कुन्ती के निद्रस्थ चेहरे पर उदासीनता का आवरण पड़ा था।

भीम की आँखें क्रोध से भभक उठीं।

इन आँखों की आग यदि हस्तिनापुर में फैले तो समूचा नगर भस्मीभूत हो जाय, इतना क्रोध वह अनुभव कर रहा था।

आर्यावर्त में भी पाण्डवों के साथ कौन है ?

रह-रह के भीम का मन अपने मामा के पुत्रों की ओर मुड़ता था। बलराम और कृष्ण को उसने कभी देखा नहीं था, पर उनके पराक्रमों के किस्से सुनायी देते थे। अक्रूर हस्तिनापुर आये तब कृष्ण का विशेष सन्देश लाये थे। इससे पाण्डवों को आशा बँधी थी। यदि कुरुओं में गृहयुद्ध हो तो यादव पाण्डवों के पक्ष में खड़े होंगे ऐसी सम्भावना उदित हुई थी। तभी बाजी पलट गयी।

पाण्डवों को वारणावत में देश-निकाला मिला, कृष्ण को देशत्याग कर प्रवर्षण पर्वत पर जाना पड़ा।

पाण्डवों की भाँति बलराम-कृष्ण को भी कहाँ चैन था ! पाण्डवों को लाक्षागृह की आग में फँसना पड़ा, पर विदुर ने उनके उद्धार का मार्ग ढूँढ़ रखा था।

आज दोपहर ही एक दूत खबर लाया था कि कृष्ण-बलराम ने जिस पर्वत पर आश्रय लिया था उसमें आग लगा दी गयी है, समूचा पर्वत भभककर जल रहा है और कहीं कुछ बचा होगा, इसकी सम्भावना बहुत कम है।

कैसी विचित्र बात है ! ममेरे-फुफेरे भाई एक जैसा नसीब लेकर जन्मे हैं। कृष्ण और अर्जुन जैसे धनुर्धर और बलराम तथा भीम जैसे गदाधारी एक हो जायें तो समूचा आर्यावर्त उनसे काँप उठेगा। पर इतने वर्ष बीत गये हैं, पाण्डव अपने सच्चे मित्रों से मिल भी नहीं सके थे।

कृष्ण का विचार आते ही भीम को लगा कि उसका मन किसी अपूर्व सुरभि से सराबोर हो गया है। भीम सुवासित पुष्पों की मनोहारी सुगन्ध से मस्त हो गया। यह सुवास कृष्ण की स्मृति की है या फिर किसी और की, इस विचार के साथ भीम ने आसपास देखा और वह चौंक उठा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके पीछे एक युवती खड़ी थी। उस युवती के कण्ठ में झूलती पुष्पमाला और बाजुओं में धारण किये पुष्प-कंगन की महक समूचे वातावरण में फैल गयी थी।

भीम उठकर दो कदम पीछे हटा। चाँदनी के पिघलते प्रकाश में उसने इस युवती को घूरकर देखा। उसने कमर पर काले हिरण का चर्म बाँध रखा था। बाकी देह निरावृत थी। उसके उन्नत और आँखें भर दे ऐसे उरप्रदेश पर झूलती पुष्प-माला श्वासोच्छ्वास के साथ उछल रही थी।

"कौन है तू ?" भीम ने पूछा। "यहाँ क्यों आयी है ?"

भीम का मन अनेक शंका-कुशंकाओं से भर गया। यह स्त्री कौन होगी ? इस घोर वन में रहनेवाली इतनी रमणीय स्त्री प्रेत होगी, यक्षी होगी या मानवी होगी ?

"यह सवाल तो मुझे आपसे पूछना चाहिए", उस स्त्री ने कहा, "मैं तो इस वन की स्वामिनी हूँ, आगन्तुक तो आप हैं···।"

"वन में ब्राह्मण आगन्तुक नहीं कहे जाते, वन तो ब्राह्मणों का आवास है", भीम ने कहा। लाक्षागृह की सुरंग में से निकलकर पाण्डवों ने पहचान छिपाने के लिए ब्राह्मण-वेश धारण कर रखा था।

उसी स्त्री ने भीम के सिर पर बँधी जटा, उसकी सशक्त काया, विशाल आँखें और मांसल भुजाओं पर दृष्टि डाली और फिर भीम के गाल स्पर्श करके कहा, "ब्राह्मणों का मांस तो हमें विशेष रूप से अच्छा लगता है। जब मेरे भाई को पता चलेगा कि यह हृष्ट-पुष्ट आदमी ब्राह्मण है तो वह तुम्हारे हृदय में नख खोंसकर ताजा गरम खून पीने के लिए उतावला हो उठेगा।"

भीम क्रोध से काँप उठा। उसने सुना था कि गंगा के इस तीर पर स्थित जंगल में आर्यों के संस्कारों से बिलकुल अलग-थलग रहनेवाले मानवभक्षी लोगों का एक गिरोह रहता है। यह सुन्दर स्त्री इसी दल की होनी चाहिए। इसके बावजूद आवाज में कम्पन लाये बिना भीम ने कहा—

"अपने भाई को बुला। उससे मिलने को मैं कब का तरस रहा हूँ। मेरी इन भुजाओं ने बहुत समय से किसी को भींचा नहीं है। माँ को पीने का पानी देने के लिए हथेली से नारियल का पिचक्का कर-करके ऊब गया हूँ। शत्रु के मस्तक पर पिचक्का करने के लिए हाथ खुजला रहे हैं।"

भीम को इस प्रकार उत्तर देते सुनकर वह युवती स्तब्ध हो गयी। उसने भीम का हाथ अपने हाथ में ले लिया, पर भीम ने तुरन्त उसे छुड़ा लिया, "अरे देवी, तुम इस तरह हाथ में हाथ लोगी और कहीं मेरी माँ या बड़े भाई जाग गये तो मेरी बड़ी हँसी होगी। इससे तो अच्छा होगा तू जल्दी से अपने भाई को बुला ला।"

युवती को भीम का संकोच देखकर बड़ा आनन्द आया। "तेरे इन लाल-लाल गालों को देखकर मेरा भाई मस्त हो जायेगा।" उसने पुनः भीम के गाल का स्पर्श

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हुए कहा।

"तू तो आदमखोर नहीं लगती।" भीम ने कुछ प्यार से उत्तर दिया, "यह फूलों की माला, हाथ में पुष्प-कंगन, सिर पर खुले केश और···" भीम ने शरारत भरी आँखों से उस स्त्री के शरीर पर दृष्टि घुमाते हुए कहा, "चाँदनी के प्रकाश में तेरी इस सुडौल देह की कान्ति छुप नहीं पा रही है।"

युवती शरमा गयी। लेकिन फिर एकाएक उसे कुछ याद आया। उसने भीम को बाजुओं से पकड़कर कहा, "चलो यहाँ से, हम जल्दी से भाग चलें।"

"कहाँ ?" भीम ने कहा, "मैं अपने भाइयों और माँ की रखवाली कर रहा हूँ। मैं इस प्रकार यहाँ से नहीं जा सकता।"

"वे तो मेरे भाई के आहार बनने ही वाले हैं, आप क्यों ऐसी भरी जवानी में मृत्यु का वरण करने चले हैं ?" युवती बोली।

भीम ने उस युवती की ओर देखकर कहा, "ए छोकरी, अभी इस काया को छू सके ऐसा आदमी धरती पर पैदा नहीं हुआ है। तू भली मानस की तरह चली जा। इतनी रात गये मेरी माँ जवान छोकरी के साथ मुझे देख लेगी तो न जाने क्या सोचेगी। परिवार में मेरी छाप सन्त पुरुष की नहीं है, समझी।"

"मुझे भी सन्त पुरुष से काम नहीं है," उस युवती ने आँखें नचाकर कहा, "आपको जिन्दा खा जाने के बदले भगा ले जाने का विचार मुझे यों ही नहीं सूझा है। मैं जैसा कहती हूँ, उस प्रकार चलेंगे तो हम इस हिडिम्ब वन से बाहर निकल जा सकेंगे। आप जहाँ कहेंगे, वहाँ घर बनाकर रहेंगे। यदि देर करेंगे, तो मेरा भाई हिडिम्ब आपको जीता नहीं छोड़ेगा।"

इसी समय भारी कदमों की आवाज सुनाई दी। युवती ने भीम को हाथ पकड़कर खींचने का प्रयास किया, पर भीम की देह तो मानो पत्थर की हो ऐसी अकड़ गयी। अभी तक देखने में सुन्दर लगती विराट देह, अब विकराल लगने लगी। युवती डर के मारे कुछ पीछे हट गयी।

वे भारी कदम निकट, निकटतर आते गये। भीम पीछे हटकर बरगद के तने के पास जाकर खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर में सामने से हिडिम्ब आ खड़ा हुआ। भीम को देखकर उसकी आँखों में खून उतर आया। उसने छलाँग लगायी। वह एकदम पास आया तो भीम सरक गया। कुछ देर तक तो वह वृक्ष के तने को ही भीम मानकर मुक्के मारता रहा।

भीम ने पीछे से आकर उसे भींच लिया। आगे बरगद का तना और पीछे तने जैसा ही विराटकाय भीम, इन दोनों के बीच की पिसाई से छटक जाने का हिडिम्ब ने प्रयत्न किया। पर उसकी एक भी तरकीब काम न आयी। उसकी साँस धीमे-धीमे घुटने लगी। थोड़ी देर बाद भीम को लगा, उसके हाथ में पड़ी देह ठण्डी पड़ने लगी है, उसने पकड़ ढीली की और हिडिम्ब नीचे ढल गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्योदय होने में अभी थोड़ी देर थी, तभी अर्जुन ने उठकर बरगद के पास एक महाकाय राक्षस का शव देखा। थोड़ी ही दूर पर भीम पड़ा चैन की नींद सो रहा था। उसके गले में फूलों की माला थी। उससे थोड़ी दूर पर एक अर्धनग्न युवती सो रही थी।

"बड़े भाई", अर्जुन ने आवाज दी।

युधिष्ठिर आये। वे भी यह दृश्य देखकर चौंक पड़े। कुन्ती और नकुल-सहदेव भी यह दृश्य देखने आ पहुँचे। क्या हुआ है, किसी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

आसपास की हलचल के कारण भीम की आँखें खुलीं और भाइयों तथा माता के विस्मय भरे चेहरे देखकर वह गहरी चिन्ता में डूब गया। फिर उसे रात की घटना याद आयी और चौंककर अपनी बगल में देखा। हिडिम्बा चैन से सो रही थी, वह शरमाकर उठ खड़ा हुआ।

"भीम, यह सब क्या है ?" अर्जुन ने पूछा।

"भीम, तुझे कहीं चोट तो नहीं आयी, इस राक्षस के साथ लड़ते हुए ?" माँ ने पूछा।

इस बातचीत के बीच हिडिम्बा भी जाग उटी।

भीम ने रात जो कुछ हुआ सब कह सुनाया और फिर कहा, "माँ, इस लड़की को पति चाहिए।"

"चाहिए क्या ? देख भी लिया है !" सहदेव ने मजाक करते हुए कहा।

"हिडिम्बा, ये मेरे बड़े भाई धर्मराज हैं। ये कुँवारे हैं। इनसे पहले मैं शादी करूँ यह शोभा नहीं देता।"

"रात मैंने आपके गले में ही पुष्पमाला डाली थी, अब मुझे किसी और के गले में माला नहीं पहनानी है," हिडिम्बा ने कहा, "माँ, हम दोनों को आशीर्वाद दें।"

कुन्ती की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करना चाहिए। वह इस उलझन में से कोई मार्ग ढूँढ़ सके इससे पहले ही वीणा की झंकार सुनकर सभी चौंक उठे। वीणा में से 'नारायण' का सुर स्पन्दित होकर समूचे वातावरण में फैल रहा था।

"ये तो देवर्षि नारद हैं। वे यहाँ कहाँ पहुँच गये ?" युधिष्ठिर बोले।

नारद प्रवर्षण पर्वत की परिक्रमा करके कहीं से भी ऊपर जाने की राह न मिलने पर, तीसरे दिन जहाँ से चले थे उसी स्थान पर वापस लौटे तो उन्होंने देखी सुनसान रणभूमि। एक विराट सेना की अभी हाल में उजड़ी हुई छावनी के अवशेष और अवशेष रूप में रह गयी वनवासियों की जीभ पर खेलती जरासन्ध की घोर पराजय की कथा।

इतनी घोर निराशा नारद ने कभी अनुभव नहीं की थी। वे जरासन्ध के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अट्टहास से ही दूर न जा सके थे, बल्कि कृष्ण की शीतल छाया से भी दूर भागे थे। जो जरासन्ध को पचा सकता है वही कृष्ण को पा सकता है यह सत्य नारद को इस करुण अनुभव के बाद ही समझ में आया था।

युधिष्ठिर ने "देवर्षि यहाँ कहाँ से ?" यह प्रश्न ही नहीं पूछा, नारद को पिछले कुछ महीनों में की गयी घुमक्कड़ी की याद दिला दी थी। प्रवर्षण पर्वत से अब वापस मथुरा की राह ही तो पकड़नी थी। यदि कृष्ण से मिलना हो तो जरासन्ध से जीतने के बाद वे मथुरा में ही चैन से रहेंगे, ऐसा मानकर नारद शान्तिपूर्वक तीर्थस्थलों में रुकते-रुकते और इस ओर के ऋषि-मुनियों से सत्संग करतें धीर-धीरे आगे बढ़ रहे थे, तभी उन्हें निष्क्रमण करते प्रवासी लोगों की एक टोली मिली।

आर्य टोलियों में ऐसे निष्क्रमण होते रहते थे। निरन्तर अकाल पड़ता हो, शत्रुओं का त्रास हो या फिर पर्याप्त जमीन पर नदी-जल की उचित सुविधा न हो तब टोलियाँ निष्क्रमण करती थीं।

पर यह निष्क्रमण कुछ बड़े पैमाने पर हो रहा था। उन्होंने इन प्रवासियों के साथ चल रहे दो रक्षकों से पूछा, "भाई, ये प्रवासी-दल हैं न ? ये कहाँ जा रहे हैं ?"

और दोनों रक्षकों ने एक दूसरे की ओर देखा, आँखें मिचमिचायीं, फिर उनमें से एक ने कहा, "साधु महाराज, हम तो पूरब से आ रहे हैं, पश्चिम की ओर जा रहे हैं, क्यों, सही है न सुव्रत ?"

"ठीक ही तो है", सुव्रत ने हँसकर कहा।

यह शरारत भरा उत्तर सुनकर नारद ने आगे प्रश्न पूछना स्थगित किया। वे रास्ते के एक किनारे खड़े रहकर प्रवासियों को जाने का मार्ग देते रहे। गाड़ियाँ, घोड़े, हाथी, रथ आदि इन सबों को देखने से लगा मानो समूचा राज्य ही उलट पड़ा है।

एकाएक नारद अपने चरण का स्पर्श करते एक मानव को देखकर चौंके, "कौन ? अक्रूर ?"

"हाँ देवर्षि, यादवगण रैवतक पर्वत की ओर संचरण कर रहे हैं।"

"कृष्ण कहाँ हैं ?" नारद ने अधीर होकर पूछा।

"कालयवन और जरासन्ध को यादवों का पीछा करने से रोकने गये हैं। वे शायद सिन्धु देश की दिशा में गये हैं। आप किधर जा रहे है ?" अक्रूर ने पूछा।

"मैं तो मथुरा जा रहा था, कृष्ण से मिलने। बलराम तो इस प्रवासी टोली में हैं न ?"

"नहीं। वे तो रैवतक पर्वत पर यादवों को बसाने के लिए पहले से वहाँ पहुँच गये हैं।" अक्रूर ने कहा और इसके बाद नारद को थोड़ी दूर एक निर्जन स्थान में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ले जाकर पूछा, "नारद, कृष्ण ने मुझे एक काम किसी श्रद्धेय मानव को सौंपने को कहा था। आपके सिवा दूसरा कोई व्यक्ति मुझे नहीं दिखता, जिसे यह रहस्य बताया जा सके", अक्रूर ने कहा।

"यदि यह कृष्ण का काम हो तो मैं जरूर करूँगा।"

"पर इसके लिए आपको कृष्ण की विपरीत दिशा में जाना पड़ेगा। विदुर ने कृष्ण को सन्देश पहुँचाया था कि पाण्डव हिडिम्ब वन की ओर गये हैं। अब वहाँ जाकर पाण्डवों से कहना है कि वे द्रौपदी-स्वयंवर के समय काम्पिल्य राज्य में पहुँचें। कृष्ण तो कालयवन के साथ अटके होंगे, इसलिए नहीं आ सकेंगे। पर यदि वहाँ अर्जुन द्रौपदी को प्राप्त कर सके, तो पाण्डवों को पांचाल में आश्रय मिल सकेगा।"

नारद ने युधिष्ठिर से कहा, "धर्मराज, अब तक मैंने कृष्ण की दिशा में ही उत्साह से कदम उठाये थे। पर अक्रूरजी का वचन सुनने के बाद इसी उत्साह के साथ कृष्ण जहाँ नहीं हैं, उस दिशा में कदम बढ़ाये हैं। जहाँ कृष्ण मिलनेवाले नहीं हैं वहाँ जाने को मैं निकल पड़ा हूँ। कौन जानता है, कहाँ, कब और किस रूप में कृष्ण मुझे मिलेंगे !"

उस अधर्मी कृष्ण से कहना

"आप कृष्ण को ढूँढ़ रहे हैं और वे कहीं मिलते नहीं। हम भी कृष्ण के लिए तड़प रहे हैं और इसके बाद भी वे अब तक मिले नहीं हैं", अर्जुन ने कहा।

अर्जुन के शब्द सुनकर नारद को वेदकालीन विष्णु और इन्द्र की मैत्री की क्यों याद आयी, यह बात नारद समझ नहीं सके, पर उन्होंने हँसकर कहा, "कृष्ण तो हमें नहीं मिले पर कृष्ण-मिलन की तड़पन ने हमें एक बिन्दु पर अवश्य ला दिया है।"

"देवर्षि, यदि हमें कृष्ण का यह सन्देश न मिला होता तो इसी हिडिम्ब वन में हमारे न जाने कितने वर्ष बीत गये होते। आपने हम पर बहुत बड़ा अनुग्रह किया है।" युधिष्ठिर ने कहा, "इसके बदले में मैं वचन देता हूँ कि आपके जीवन में कृष्ण से मिलने का योग न बना तो ऐसा योग रचकर मैं कृष्ण के साथ आपका मिलन कराऊँगा।"

"धर्मराज, मैं यह वचन याद रखूँगा। इतने वर्ष हो गये, पर कृष्ण नहीं मिले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो ऐसा हो सकता है कि आपके वचन के सेतु से होकर ही मेरा कृष्ण से मिलन हो", नारद ने कहा।

"मुझे तो नारदजी, आपकी यह घुमक्कड़ी समझ में नहीं आती। मान लीजिए कि कृष्ण से आप नहीं मिले तो क्या बन-बिगड़ जायेगा ?" भीम ने पूछा।

"भीमसेन, तुम्हें मेरी बात शायद अभी समझ में नहीं आयेगी। कृष्ण से यदि एक बार मिल पाऊँ तो इस आर्यावर्त के कलहों में पक्षधर बनने से पूर्व, मैं उन्हें आर्यावर्त को एक करने का प्रयत्न करने को कह सकूँगा," नारद ने कहा।

"तब तो आप कृष्ण से न मिलें, इसी में हम सबका कल्याण है। हमारा पक्ष भी कृष्ण छोड़ दें तो ?" भीम ने हँसकर कहा।

"भीम, देवर्षि के साथ इस तरह बातें नहीं करते।" अर्जुन ने कहा, "नारद, इस समय आपको कृष्ण कहाँ मिलेंगे।"

"मैं इसी चिन्ता में तो हूँ। कृष्ण इस समय सिन्ध की दिशा में गये हैं या मगध की ओर इसकी भी मुझे सूचना नहीं है। कालयवन और जरासन्ध दोनों को रोकने का काम कृष्ण ने अपने जिम्मे लिया है और कृष्ण, सात्यकि तथा कृतवर्मा ये तीनों ही यादव इस समय बिछड़ गये हैं।"

"आप तो पूजनीय हैं, देवर्षि, पर मुझे ऐसा लगता है कि आपकी खोज बाह्य है और बाहर की तलाश में मान लें कृष्ण मिल ही जायें तो क्या ?" युधिष्ठिर ने कहा।

"अर्थात् ?" नारद ने साश्चर्य कहा।

"मैं कृष्ण से मिला नहीं हूँ, पर मैं ऐसे दो व्यक्तियों को जानता हूँ, जो कृष्ण से मिले तो नहीं, फिर भी जानते हैं।"

"कृष्ण से मिले नहीं, फिर भी जानते हैं ?" नारद ने पूछा।

"हाँ" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

"माता सत्यवती और महर्षि पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास के मुख से पहली बार मैंने 'कृष्ण' शब्द सुना। वे कृष्ण को जानते हैं और उन्हीं ने हम भाइयों को कृष्ण की लगन लगायी है।"

"कृष्ण द्वैपायन व्यास ? भगवान वेद व्यास, वही न ?" नारद मानो अपने आप से कह रहे हों, इस प्रकार बोले।

"और अमरत्व प्राप्त मार्कण्डेय ऋषि उनके पास गये, तब उनकी आँखों में, उनके हृदय में, उनके आसपास के वातावरण में हमने कृष्ण का अनुभव किया था," युधिष्ठिर ने कहा।

"इन दोनों से मिलने को तो…" नारद बोले।

"बद्रिकाश्रम जाना पड़ेगा। आपने अब तक कृष्ण जहाँ-जहाँ थे, वहाँ उन्हें ढूँढ़ा। एकाध बार जहाँ कृष्ण नहीं हैं, वहाँ उन्हें ढूँढ़कर देखें !" युधिष्ठिर ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण जहाँ-जहाँ थे, वहाँ कृष्ण के वदले कृष्ण की स्मृति की पूजा होते उन्होंने देखी थी। तो कृष्ण जहाँ नहीं हैं, वहाँ क्या होगा ? अब तक वे कृष्ण के अतीत में विचर रहे थे। नारद को लगा कि अब उन्हें कृष्ण के भविष्य में झाँकना चाहिए। भूतकाल में से आदमी सरक जाता है, पर भविष्य में तो उसे आना ही पड़ेगा।

"धर्मराज, आपको यह सन्देश देने आया, इसमें भी कृष्ण का कोई संकेत होगा। आपने मुझे कृष्ण से मिलने का जो मार्ग बताया है, उस मार्ग पर कृष्ण मिलें या न मिलें वह अनुसरण योग्य तो है ही"मुझे भी बद्रिकाश्रम छोड़े अनेक वर्ष हो गये हैं", नारद ने कहा।

"हमारे साथ काम्पिल्य चलिये, वहाँ से आप उत्तर चले जाइयेगा," अर्जुन ने कहा, "यदि कालयवन को जीत लिया हो तो सम्भव है कृष्ण वहाँ आवें।"

"सम्भव है कि कृष्ण वहाँ आयें, पर मुझे वहाँ पहुँचने में फिर विलम्ब हो जायेगा। इससे तो अच्छा है मैं वहाँ क्यों न जाऊँ जहाँ कृष्ण आनेवाले हैं ही नहीं," नारद ने कहा।

वे पाण्डवों के साथ कुछ दिन ठहरे। फिर पाण्डव दक्षिण की ओर चले और नारद ने उत्तर पांचाल का मार्ग पकड़ा।

नारद को लग रहा था कि वे प्रवाह के विरुद्ध चले जा रहे हैं। समूचे आर्यावर्त के राजा दक्षिण में काम्पिल्य की ओर जा रहे थे, तब नारद अकेले अपने हाथ में जीवन-सखी वीणा धारण किये उत्तरापथ पर गमन कर रहे थे।

गंगातट पर चलते हुए जब वे उत्तर पांचाल की सीमा के पास आये, तब उन्होंने देखा कि नदी में भयंकर बाढ़ आयी हुई है। हिमाद्रि का मार्ग अब इस नदी को पार करने के वाद तुरन्त ही शुरू होनेवाला था, पर नदी की बाढ़ घटे तभी तो इसे पार करना सम्भव था !

इस वाढ़ को देखकर नारद को वर्षों पूर्व देखी एक बाढ़ याद आ गयी। ऐसी ही प्रचण्ड बाढ़ उन्होंने यमुना में देखी थी। और, उस रात कृष्ण का जन्म हुआ था। आज फिर यह बाढ़ आयी है और द्रौपदी-स्वयंवर का दिन भी है। आज काम्पिल्य में क्या हुआ होगा ? कृष्ण वहाँ आये होंगे ? पाण्डव समय से पहुँचे होंगे ?

नारद चिन्ता में डूबे खड़े थे, तभी इस किनारे आश्रम बनाकर रहते गालव ऋषि का ध्यान नारद की ओर गया।

"परिव्राजक देवर्षि", गालव ने कहा, "मैं आपको ही ढूँढ़ रहा था।"

"क्यों ?" नारद ने पूछा।

"आपका और शौनकादि ऋषियों का ब्रह्माजी के साथ मुक्ति के साधन के वारे में जो संवाद हुआ था, उसके वारे में मेरे शिष्य ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। मैंने उनसे कहा कि ऋषि नारद तो निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं, और कभी न कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे इधर से गुजरेंगे ही। तब उनसे हम मुक्ति के साधन के बारे में उपदेश सुनेंगे।"

मुक्ति के साधन के बारे में नैमिषारण्य में हुए वार्तालाप का नारद को ध्यान आया।

गालव ऋषि के आश्रम में नारद को समय का कुछ ध्यान ही न रहा। अपने प्रिय विषय के अध्ययन-अध्यापन में दिन सप्ताहों में बदल गये। तभी अचानक एक दिन उन्हें अपना ध्येय याद आया और गालव ऋषि और उनके शिष्यों से विदा लेकर वे चल पड़े।

उत्तर पांचाल से हिमाद्रि की ओर जाते हुए मार्ग में कर्ण से मुलाकात होगी, इसकी तो नारद को कल्पना भी न थी।

गंगा किनारे की बालू में प्रकृति ने अबरख मिला दिया था। अतः रेत के कण-कण में सूर्य प्रगट हुए हों, ऐसा दृश्य रूपायित हो रहा था। ऐसे शत-सहस्र सूर्यों के बीच भगवान सविता-नारायण के अवतार जैसा कर्ण सूर्य को अर्घ्य दे रहा था।

नारद इस तेजस्वी युवक को देखते रह गये। इस वीर की बाबत कितनी ही बातें उन्होंने सुनी थीं। अभी कुछ ही समय पूर्व वे उससे और दुर्योधन से मिले थे, मुलाकात की याद भी नारद को आयी।

आर्यावर्त में उत्तम धनुर्धारियों में जिन चार योद्धाओं की गिनती होती थी, उनमें भीष्म, कृष्ण और अर्जुन के साथ कर्ण का नाम भी लिया जाता था। पाण्डव भी कौरव-पक्ष में जितना भीष्म से नहीं डरते थे, उतना कर्ण से डरते थे।

कर्ण अर्घ्य देकर वापस लौटा तब उसकी दृष्टि देवर्षि नारद पर पड़ी। कर्ण के तेजस्वी मुख की रेखाओं को देखकर नारद को अभी हाल में देखे एक चेहरे का स्मरण हो आया। पर वह किसका चेहरा था, यह नारद तय नहीं कर पा रहे थे।

कर्ण को आशीर्वाद देते हुए नारद ने पूछा, "चिरंजीवी रहो, वत्स, तुम यहाँ कहाँ से ?"

कर्ण फीकी हँसी हँसा। उसने कहा, "देवर्षि, जीवन में जब कभी जलते हृदय को शान्ति नहीं मिलती, तब आदमी सहज ही गंगा के किनारे या हिमालय की गोद में आने को ललचाता है।"

"क्यों, अब तुम्हें क्या हुआ ?" नारद ने पूछा।

"देवर्षि, अभी हाल में जो घटित हुआ, लगता है उससे आप परिचित नहीं हैं, नहीं तो यह प्रश्न न करते", कर्ण ने कहा।

"क्या हुआ ?" नारद ने पूछा, "मैं तो कृष्ण की खोज में ऐसा डूबा हूँ कि दूसरी दुनिया का मुझे ज्ञान ही नहीं है।"

"कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण", कर्ण ने उत्तेजित होकर कहा, "उस प्रपंची और दम्भी व्यक्ति को ढूँढ़कर आपको क्या मिलेगा ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"कर्ण, स्वस्थ बनो। तुम शायद नहीं जानते कि कृष्ण कौन हैं ?" नारद ने कहा।

"कृष्ण कौन हैं", यह जानना मेरे लिए अभी बाकी है क्या और वह भी द्रौपदी-स्वयंवर में जो कुछ हुआ उसके बाद !" कर्ण ने कहा।

"द्रौपदी-स्वयंवर में ? क्यों वहाँ तो कृष्ण आनेवाले ही नहीं थे न ?" नारद ने साश्चर्य कहा।

"द्रौपदी-स्वयंवर में वे आये, और अपनी आँखों से वे अधर्म को देखते रहे। यही नहीं, नजर के सामने हो रहे अधर्म को उन्होंने अपनी सम्मति भी प्रदान की। ऐसे आदमी को विदुर या भीष्म महराज मानें तो समझ में आता है, पर आप जैसे ऋषि भी उसका प्रपंच न भाँप सके ?" कर्ण ने कहा।

"प्रपंच, अधर्म, और-स्वयंवर ?" नारद अभी भी वात की तुक नहीं बैठा पा रहे थे।

"हाँ, स्वयंवर से पहले मुझसे मिले तो मेरी वीरता की बड़ी प्रशंसा की, लेकिन स्वयंवर-सभा में जब द्रौपदी और धृष्टद्युम्न ने मेरा अपमान किया, तब वे चुपचाप बैठे रहे। वे अधर्म देखते रहे…"

"द्रौपदी ने क्या कहा ?"

"द्रुपद की वह लाड़ली बेटी मुझे लक्ष्यस्थान की ओर जाते देखती रही। जिस धनुष को दूसरे उठा तक नहीं सकते थे, उस मैंने फूल की भाँति उठा लिया। तब उससे आँखें चार हुईं। वह बोल उठी, 'मैं सूतपुत्र का वरण नहीं करूँगी !' धृष्टद्युम्न ने भी इसमें सहमति व्यक्त की। जिस स्वयंवर में ऐश्य-दासी के पुत्र युयुत्सु को भी स्थान मिला था, उस स्वयंवर में मुझे लक्ष्य-वेध करने से रोका गया। यह खुल्लम-खुल्ला अधर्म था, पर आपके वह भगवान के अवतार चुप बैठे रहे। उन्हें उस समय धर्मपालन की जरूरत नहीं थी। द्रौपदी पाण्डवों का वरण करे, यही उनकी इच्छा थी।"

"द्रौपदी ने किस पाण्डव का वरण किया ?"

"पाँचों भाइयों ने द्रौपदी से विवाह किया, यह दूसरा अधर्म था। पर शास्त्र के आदेश चिपकाकर आपके भगवान के अवतार ने इसका भी समर्थन दिया। मत्स्यवेध करनेवाला अर्जुन मन मारकर बैठा रह गया," कर्ण ने कटुता-सहित कहा।

"कर्ण, कौन जानता है, कृष्ण की इसमें क्या योजना है ?" नारद ने कहा।

"जो हो सो हो, पर थी वह अधर्म की योजना। और नारद, आप तो कृष्ण को ढूँढ़ने निकले हैं। जहाँ भी मिलें, जब भी मिलें, तब कहियेगा कि द्रौपदी-स्वयंवर में द्रौपदी ने किसका वरण किया, इसके लिए उसे याद नहीं किया जायेगा। उसने कर्ण का वरण नहीं किया, इसके लिए भविष्य उसे याद करेगा," कर्ण ने कहा।

नारद कटुता से उफनता यह ज्वार देखते रहे। यह उफान कहाँ जाकर थमेगा ?

"और देवर्षि", कर्ण ने कहा, "मैं भविष्य में जहाँ तक देख सकता हूँ, वहाँ तक मुझे दिखाई देता है कि कृष्ण धृतराष्ट्र के पुत्रों का हक छीनकर पाण्डु-पुत्रों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को राजगद्दी दिलाने की चेष्टा करेंगे। यदि कृष्ण अपने हठ में अड़े रहे तो युद्ध होगा और उस युद्ध में भीष्म और द्रौण जैसे धर्म के ज्ञाता, भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर स्थित होने के बावजूद, दुर्योधन के पक्ष से लड़ेंगे। आप उस अधर्मी कृष्ण से कहियेगा कि वे अपनी तैयारी इस दिवस को ध्यान में रखकर करें।"

·

गोविन्द ! आप कहाँ हैं ?

"सागर-जल-भँवरों में पके मोतियों का शुद्ध सुवर्ण-मण्डित अत्यन्त कान्तिवान और महामूल्यवान यह हार मैं दाँव पर लगाता हूँ", युधिष्ठिर ने कहा।

"मेरे पास जितनी भी रत्नराशि है, मैं दाँव पर लगाता हूँ। आप शौक से इसे जीत लें।" दुर्योधन ने कहा।

द्यूतविद्या के रहस्य के जानकार शकुनि ने हाथ में पासे खड़खड़ाये और युधिष्ठिर से कहा, "लो मैं जीत गया।"

धृतराष्ट्र की पलकें झपकीं, अन्धी आँखें मिचमिचायीं और पासों की खड़खड़ाहट सुन पास बैठे संजय से पूछा, "संजय, क्या हुआ ? कौन जीता ?"

युधिष्ठिर ने कहा, "मेरे पास अक्षय धन-भण्डार है। मंगलसूत्रवाली, शंख की चूड़ीवाली, कंकण-केयूरवाली, चन्दन के अंगरागवाली और चौंसठ कला में कुशल एक लाख तरुण दासियाँ हैं। सुविनीत, सयाने, जवान, निर्मल, कुण्डलधारी एक लाख सेवक हैं। यह मेरा धन है। इस धन को मैं दाँव पर लगाता हूँ।"

फिर एक बार पासों की खड़खड़ाहट सुनाई दी, आकाश में बादल गरज रहे हों ऐसी यह खड़खड़ाहट सुनकर राज-सभा चौंक उठी और सब लोगों की स्तब्धता में शकुनि की आवाज डूब गयी, "हमने यह बाजी भी जीत ली।"

मानो अन्धी आँखों से कुछ दूर तक दिखता हो इस प्रकार धृतराष्ट्र जिस ओर द्यूत की बिसात बिछी थी, उसी ओर देख रहे थे। फिर कुटिल स्मित उनके होठों पर छा गया और उन्होंने संजय से पूछा, "शकुनि क्या बोला, कौन जीता ?"

"सिंह जैसे कन्धोंवाला नकुल, धर्म-अनुशासन करनेवाला सहदेव, तीव्र वेगवान नौका की भाँति हमें युद्ध में पार ले जानेवाला लोकवीर अर्जुन तथा युद्ध में हमारा अग्रगामी, कुंचित भ्रमरावलियोंवाला और शत्रुओं को मरोड़कर मार डालनेवाला राजपुत्र भीमसेन। इन्हें मेरा धन मानिए…" युधिष्ठिर ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युधिष्ठिर के शब्द समूची राजसभा को एक बार फिर स्तब्ध बना गये।

धृतराष्ट्र मुँह बाये पासे खड़कने की राह में कान लगाये बैठे थे। उनके चेहरे पर खिंची रेखाओं में पासों की खड़खड़ाहट ने थोड़ी विकृति उत्पन्न की।

शकुनि की आवाज सुनाई दी, "यह लो, यह हमने जीत लिया…"

भीष्म, द्रोण और विदुर जो कुछ हो रहा था वही नहीं देख रहे थे। पासों की खड़खड़ाहट में उन्हें रथ के घुँघरुओं की ध्वनि भी सुनाई दे रही थी, उन्मत्त हाथियों की दौड़ दिखाई दे रही थी, घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई दे रही थी और विषम एवं विषमय तीरों के छूटने पर योद्धाओं का गगनभेदी आर्तनाद सुनाई दे रहा था। फिर एक बार पासे खड़के और शकुनि बोला, "धर्मराज युधिष्ठिर, मैंने आपको भी जीत लिया। अब तो केवल एक ही अविजित दाँव बच रहा है। अपनी प्रिय पत्नी कृष्णा को दाँव पर लगाइये और उसके द्वारा इस बार जय प्राप्त कीजिए।"

धृतराष्ट्र का मुँह खुला। उन्होंने दाहिने हाथ से ठुड्डी पर जोर लगाकर मुखाकृति को बिगड़ने से रोका। उनकी अन्धी आँखों पर पलकों की बरौनियों में एक अनोखी चमक दिखाई दे रही थी। "क्या कर रहा है, युधिष्ठिर ? वह दाँव लगा रहा है कि उठ गया ?" उन्होंने अधीर होकर संजय से पूछा।

युधिष्ठिर ने कहा, "जो क्षीण नहीं है, न स्थूलकाय है, नाटी नहीं है तो बहुत लम्बी नहीं है वह श्याम घुँघराले केशवाली, शरद के कमलपत्र जैसी आँखोंवाली, कमल और मोगरा की बेल जैसे मुखमण्डलवाली, वेणी जैसी पतली कटिवाली, ताम्रवर्ण मुखवाली, रोमावली-विहीन अंगोंवाली, काम्य और सर्वांग-सुन्दरी द्रुपदतनया…"

युधिष्ठिर के शब्द समूची राजसभा में से होकर हस्तिनापुर के वातावरण में फैल रहे थे, और सभी लोग अपेक्षा से बोझिल मुख लिये, आगे क्या कहा जाता है, सुन रहे थे।

"…द्रौपदी को मैं दाँव पर लगाता हूँ।" युधिष्ठिर ने कहा और उत्साहित होकर शकुनि ने दुःशासन की ओर देखा और पासे खड़खड़ाये।

भीष्म को पासों की खड़खड़ाहट में कुरुवंश का विनाश सुनाई दिया। द्रोण को इसमें उनकी विद्या, दो रूप धारण कर एक दूसरे से टकराते, एक दूसरे का नाश करते दिखाई दी। विदुर को लगा जैसे आर्यावर्त से धर्म लुप्त हो रहा है।

धृतराष्ट्र कान लगाकर बैठे रहे। सूई की नोक पर टिकी रह सके ऐसी नीरव स्तब्धता में शकुनि का कुरूप-हास्य बिखरा और वह बोला, "उसे भी जीत लिया।"

समूची राजसभा पर मानो वज्रपात हुआ हो, ऐसी स्तब्धता छा गयी। भीम और अर्जुन को लगा कि उनका पौरुष जैसे गला जा रहा हो। सहदेव तो इस क्षण की अपेक्षा में ही राजसभा में आया था। नकुल को पहली बार अपने सुहावने रूप पर तिरस्कार आया। भीष्म और द्रोण को लगा कि समूचा ज्ञान जैसे सहसा बहा जा रहा है। धृतराष्ट्र तो इतना ही जानते थे कि उनका पुत्र जीत गया। आर्यावर्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और कुरुकुल क्या हारा, इसकी उन्हें कल्पना भी नहीं थी। विदुर एक विराट यज्ञ में इन सभी बान्धवों को होम होते देख रहे थे, उन्होंने त्रस्त होकर आँखें भींच लीं।

युधिष्ठिर मानो लम्बी नींद से जागे हों, ऐसे बावले की भाँति इधर-उधर देखने लगे, अपने भाइयों से आँखें मिलाने की इस समय उन्हें हिम्मत नहीं थी। थोड़े से समय में वह चक्रवर्ती राजा से दास की स्थिति में उतर आये थे, उन्होंने सोचा, कृष्ण जब यह सब जानेंगे तो क्या कहेंगे ?

कृष्ण क्या कहेंगे ? यह प्रश्न समूची राजसभा को आवृत कर दे इतना बड़ा हो गया। कृष्ण का भय था यह सत्य है, पर कृष्ण का नाम याद आते ही युधिष्ठिर को अनुभव हुआ कि उसके सिर से सारा बोझ उतर गया है।

उसकी तन्द्रा पांचाली के शब्दों से टूटी। दुःशासन द्रौपदी को लेकर राजसभा में आया और याज्ञसेनी द्रौपदी को दासी मानकर राजसभा में लाने का दुःशासन का यह कार्य सभी को अखर गया।

द्रौपदी ने कमर पर केवल एक वस्त्र लपेटा था और उसके आधे भाग से शरीर का ऊपरी अंग ढाँक कर रक्खा था। द्रौपदी सभा में दीन होकर रोती-कलपती आयेगी, ऐसी कल्पना करते, प्रतीक्षारत कौरव चकित हो गये। द्रौपदी धीमे कदमों से, दृढ़ता से बन्द होठों के साथ आ रही थी।

द्रौपदी के होठ बन्द थे, पर उसकी आँखों से आग बरस रही थी। इस अग्नि का ताप समूची सभा अनुभव कर रही थी। द्रौपदी ने चारों ओर देखा और फिर कहा—

"स्वयंवर के समय, रंगमण्डप में एकत्रित हुए राजाओं की दृष्टि में जो आयी थी, और इससे पूर्व उन्होंने उसे कहीं भी देखा नहीं था, वही मैं आज सभा के बीच खड़ी हूँ। आज से पहले घर के अन्दर जिसे वायु और सूर्य ने भी नहीं देखा, वही मैं याज्ञसेनी द्रौपदी समूह में अर्धवस्त्र पहने खड़ी हूँ। जिसे वायु भी स्पर्श करे यह पाण्डव बर्दाश्त नहीं करते थे, आज दुरात्मा दुःशासन को मुझे स्पर्श करते देख रहे हैं !"

द्रौपदी की वाणी में गर्व था, उसके खनकते शब्द सभी के हृदय के आरपार हो रहे थे। उसने आगे कहा—

"इस राज-सभा में दुःशासन, मुझे नहीं, कौरवों के दुर्भाग्य को घसीटकर लाया है। मैं धर्मराज की भार्या यहाँ उपस्थित कौरवों से एक ही प्रश्न पूछती हूँ—धर्मराज मुझे हारे उससे पहले स्वयं को हार चुके थे या नहीं ? हारा हुआ आदमी क्या मुझे दाँव पर लगा सकता है ? मैं उत्तर चाहती हूँ, इस द्यूत में मैं जीती गयी हूँ या अजीती हूँ ?"

द्रौपदी के इस प्रश्न से धर्मराज युधिष्ठिर चौंक उठे। भीष्म की आँखें फैल गयीं, विदुर के होठों पर मन्द स्मित फैल गया, धृतराष्ट्र मुँह खोले यह सुनकर पास में बैठे संजय से धीमी आवाज़ में कुछ पूछने लगे।

भीष्म चुप थे, द्रोण को समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहें, और कहें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी तो कौरवों पर उसका कोई असर पड़नेवाला नहीं था। तभी दुर्योधन का छोटा भाई विकर्ण उठ खड़ा हुआ। द्यूत में खड़खड़ाते पासों ने सबसे अधिक अशान्त विकर्ण को ही किया था। उसे खड़ा होते देख दुर्योधन चौंक उठा। शकुनि ने विकर्ण का हाथ पकड़कर बैठाने की चेष्टा की, पर विकर्ण ने किसी पर भी ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—

"द्रौपदी के इस प्रश्न के जवाब में आप सब लोग चुप क्यों हैं ? यह धर्म का प्रश्न है..."

तिस पर भी जब कोई उत्तर नहीं मिला तब विकर्ण ने कहा, "विद्वज्जनों से भरी इस राजसभा में धर्म को जाननेवाला कोई नहीं था, इतिहास में ऐसा न लिखा जाय इसलिए कल्याणी द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर मैं देता हूँ। मृगया, मद्यपान, द्यूत और विषयासक्ति इन चारों में डूबा आदमी धर्म को एक ओर रखकर आचरण करता है। ऐसे आदमी का कार्य बन्धन कारक या मान्य नहीं होता; इतना ही नहीं, पहले अपने आप को हार जाने के बाद, दास का दर्जा पा जाने के बाद, राजपुत्री द्रौपदी को दाँव पर लगाने का एक दास को कोई अधिकार नहीं था, इतना ही नहीं, मेरे मामा शकुनि ने आगे बढ़कर द्रौपदी को दाँव पर लगाने की माँग की थी। इन सब बातों पर विचार करते हुए मैं द्रौपदी को जीती हुई नहीं मानता।"

"विकर्ण, विकर्ण ! तू धृतराष्ट्र का पुत्र होकर ऐसी बातें करता है ?" कर्ण बोल उठा।

"विकर्ण तो अभी बालक है। धर्म और राजनीति के रहस्य समझने के लिए अभी वह बहुत छोटा है।" दुर्योधन ने कहा, "दुःशासन, हमारी दासी, राजरानी को शोभा दे ऐसा चीर पहने, ऐसा कैसे चलेगा ?"

दुःशासन पांचाली का चीर खींचेगा, इतनी बात से ही सभा में इतनी हलचल मच गयी कि नारद कब आकर ब्राह्मणों के मण्डप में बैठ गये, इसका किसी को पता नहीं चला।

नारद बद्रिकाश्रम के हिमधवल शृंगों पर जब योगी मार्कण्डेय से मिले, तब नारद की ओर एकटक देखते हुए उन्होंने कहा था, "देवर्षि, अभी आप आत्मज्ञ नहीं बने हैं। आप कृष्ण की देह को ढूँढ़ रहे हैं।"

"नहीं ब्रह्मर्षि" नारद ने कहा था, "मैं कृष्ण को ढूँढ़ रहा हूँ।"

"आपको कृष्ण को देखना है ?"

"हाँ," नारद ने आतुरता से कहा था।

"हस्तिनापुर की राज-सभा में युधिष्ठिर और गान्धारराज शकुनि के बीच द्यूत खेला जानेवाला है, वहाँ जाइये। मैं अपनी दिव्य दृष्टि से देख सकता हूँ कि कृष्ण वहाँ होंगे और कृष्ण आपसे जरूर मिलेंगे।"

लम्बी यात्रा से थके नारद आकर ब्राह्मणों के मण्डप में बैठ गये थे। उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चारों ओर दृष्टिपात किया, पर कहीं भी कृष्ण दिखाई नहीं दिये। इसके बदले जो देखने को मिला, ऐसा भगवान किसी को भी न दिखाये, ऐसे दृश्य की भूमिका रची जा रही थी। दिव्यद्रष्टा योगी क्या झूठे पड़ेंगे ? नारद परेशान होकर राजसभा के तेवर देख रहे थे।

द्रौपदी दुर्योधन की बातों से हड़बड़ा गयी थी। दुःशासन अपने आसन से उठा। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा और द्रौपदी की विह्वलता सहसा थम गयी। द्रौपदी के चेहरे पर का यह परिवर्तन नारद देख रहे थे।

द्रौपदी आँख मूँदकर बोली, "हे गोविन्द, हे कृष्ण, आप कहाँ हैं ?"

द्रौपदी के पास आते दुःशासन के कान में ये शब्द पड़े। वह थोड़ा चौंका। फिर आगे बढ़ा। द्रौपदी के मुख से 'गोविन्द, गोविन्द' की रटन चल रही थी। विदुर भी इस 'गोविन्द' की रटन से जुड़े। भीष्म भी इस प्रार्थना में साथ हो लिये।

समूचा वातावरण चमत्कारिक रूप से बदल गया। दुःशासन ने द्रौपदी के पास जाकर उसका चीर खींचने के लिए हाथ बढ़ाया—द्रौपदी आर्द्र और आर्तभाव से चीत्कार कर उठी, "गोविन्द···गोविन्द···"

दुःशासन के हाथ में द्रौपदी का चीर था, पर हाथ में से उसे खींचने का बल ही लुप्त हो गया था। उसने चीर खींचने का प्रयत्न किया पर उसमें घुटने के बल चलता बालक माँ का चीर खींचे बस इतनी ही ताकत थी।

अब तक राजसभा में चल रहे 'गोविन्द' के जप में नारद भी अनायास जुड़ गये—"गोविन्द···गोविन्द···"

पर कब··· ?

कहाँ बद्रिकाश्रम को अपने अंक में समेटे खड़े श्वेत हिम-शिखर और कहाँ हृदय को खिन्न करनेवाली हस्तिनापुर की राजसभा; और कहाँ वे स्वर्णमण्डित पुरी-द्वारका के कंगूरे··· !

नारद मानो एक युग पूरा करके दूसरे में प्रवेश कर रहे थे। सन्ध्या के लाल चटक रंग, दूर-दूर से दिखते द्वारका के कंगूरों से प्रतिबिम्बित हो रहे थे। एक इन्द्रधनुष आकाश में उदित हुआ था, दूसरा द्वारका के कंगूरों पर और तीसरा महासागर की उत्ताल तरंगों में रूपायित हो रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस बीच क्या-क्या नहीं बह गया। नारद को यह सोचते भी अब थकान लगती थी। अब तो उन्हें वय का भार भी अनुभव हो रहा था। घुमक्कड़ी करने की थकान भी अनुभव होती थी।

वे काम्यकवन में पाण्डवों के अतिथि के रूप में रहे। उसके बाद वे सरस्वती नदी के तट पर उपासना करने के उद्देश्य से द्वैतवन में गये।

द्वैतवन में सरस्वती नदी के तट पर निवास के बीच उन्होंने एक रथ अपने आश्रम के पास आकर रुकते देखा। रथ में प्रौढ़ता की ओर बढ़ रहे एक युवक को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। इस युवक को कहीं देखा है, ऐसा नारद को लग रहा था। नारद को देखकर उसने रथ से नीचे उतरकर प्रणाम किया, "आप यहाँ देवर्षि ? वे तो आपसे मिलने काम्यकवन गये हैं…।"

यह आवाज सुनते ही नारद को वर्षों पूर्व सुनी एक आवाज याद आ गयी। यह आवाज एक अल्हड़ युवक के मुख से सुनी थी। कौन था यह जवान ? हाँ, यही तो बलराम थे, जिन्हें वे इतने सारे वर्षों से ढूँढ़ रहे थे, वे कृष्ण के बड़े भाई थे। वर्षों पूर्व इन्हीं बलराम को वारुणी और मन्दिरा जैसी दो रूपवती युवतियों के बीच वैठकर सोमरस पीते देखा था, पर यह बलराम उस जैसे न थे। यह अब पहले जैसे क्रीड़ा-प्रिय नहीं दिखते थे। उनके चेहरे पर जैसे कोई भयंकर दिवास्वप्न देखा हो ऐसी छाया थी। नारद को देखते ही वे चौंक उठे हों, ऐसा लगा।

नारद ने पूछा, "कौन मुझसे मिलने काम्यकवन में गया है ? आप किसकी बात कर रहे हैं ?" नारद का स्वर सन्देह से प्रकम्पित था।

बलराम ने कहा, "आप उनसे मिलने हेतु कितने ही वर्षों से तरस रहे हैं, यह वात कृष्ण जानते हैं। वे भी अनेक वर्षों से भटक ही रहे हैं और आपसे मिलने की हार्दिक इच्छा के वावजूद आप तक पहुँच नहीं सके हैं। आप काम्यकवन में हैं, यह सन्देश उन्हें कुछ समय पूर्व युधिष्ठिर से मिला था, अतः वे विशेष रूप से आपसे मिलने हेतु वहाँ गये हैं।"

"और देखिए, मैंने युधिष्ठिर से कहा भी नहीं कि मैं द्वैतवन जानेवाला हूँ। अब क्या होगा ?" नारद चिन्ताभरे स्वर में बोले।

नारद का भय सही निकला। वे जब बलराम से बिदा लेकर काम्यकवन पहुँचे तब कृष्ण वहाँ से जा चुके थे। कृष्ण द्वारका ही जानेवाले थे, ऐसा अर्जुन ने सूचित किया था, अतः नारद ने पुनः एक बार यात्रा आरम्भ की। जब वे द्वारका के द्वार के पास पहुँचे, तब रात्रि का अन्धकार दुर्ग पर छायी सान्ध्य-लालिमा को निगलने लगा था।

क्या करें, इस बाबत नारद विचार कर ही रहे थे कि यादवों के पुरोहित गर्ग ऋषि के शिष्य दत्त की आवाज से वे जागे। "देवर्षि, प्रणाम। आज की रात आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करें, हमारी यही प्रार्थना है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद ने मुस्कराकर कहा, "मुझे रात गँवा देना अच्छा नहीं लगता। जी में आता है कि मैं द्वारका ही पहुँच जाऊँ..."

"अब तो रात हो गयी है। दुर्ग के द्वार बन्द हो चुके हैं और द्वारका के तट की नौकाएँ भी उस पार चली गयी हैं। कारण यह है कि अब तो समूचे आर्यावर्त में महायुद्ध के नक्कारे बज रहे हैं, और इसका असर द्वारका के जीवन पर भी पड़ा है।"

"गर्ग ऋषि कहाँ हैं ?"

"वे द्वारका गये थे। लगता है रात हो जाने के कारण वे वहीं रुक गये हैं। मैं उन्हें लेने किनारे गया था, पर जब दुर्ग के द्वार बन्द हो गये, तो वापस लौट आया।"

नारद दत्त के साथ गर्ग ऋषि के आश्रम में आये। आश्रम में आते ही उनका मन किसी अनोखी सुगन्ध से भर गया। ऐसी सुगन्ध नारद ने हिमालय के कुंजों में यदा-कदा अनुभव की थी। उन्होंने दत्त से पूछा, "द्वारका के पास यह नन्दन-कानन कहाँ से आया ?"

"देवर्षि, यह वास्तव में नन्दन-कानन है। इस पुष्पवन में सुबह-दोपहर, शाम और रात्रि में विविध प्रकार के पुष्प खिलते ही रहते हैं। इस समय आप जो सुगन्ध महसूस कर रहे हैं वह तो स्वर्ग-पुष्प पारिजात की है।"

"पारिजात ? यह तो नन्दन-कानन का पुष्प है, यहाँ कैसे ?" नारद ने साश्चर्य पूछा।

"संदीपन ऋषि का पुत्र पारिजात का पौधा गर्ग ऋषि को गुरु-दक्षिणा के रूप में देने के लिए लाया था।" दत्त ने कहा।

नारद ने पुष्पवन में प्रवेश किया। रात्रि के अन्धकार में, तारक प्रकाश में विविध रंग के पुष्प चमक रहे थे। उनमें एक वृक्ष पर मानो दीपक जल उठे हों, ऐसा दृश्य देखकर नारद के विस्मय का पार न रहा। यह पारिजात का वृक्ष था। उस पर दिव्य सुगन्धवाला पुष्प देखकर नारद को ऐसा लगा मानो साक्षात् कृष्ण का स्पर्श हुआ हो।

नारद ने सोचा इस पारिजात के पुष्पों का गुच्छा बनाकर श्रीकृष्ण को अर्पित किया जा सकता है और प्रातः उठकर इस पुष्प की माला गूँथने का संकल्प करते हुए वे निद्रावश हो गये।

यही वे श्रीकृष्ण थे, जिनसे मिलने हेतु वे इतने समय से विकल हो रहे थे। कमल-नयन होने के बावजूद सिंह जैसे कृष्ण की श्याम कान्ति सजल मेघ की भाँति शोभा देती थी और उनकी आकृति पर्वत के समान विशाल और श्रेष्ठ थी। रण-संग्राम में दुर्भेद्य ऐसे श्रीवत्समणि धारण किये कृष्ण को देखते ही नारद को रोमांच हो आया। जो तीनों लोकों पर छा गये थे और जिन्होंने पृथ्वी अपने आश्रय में ली थी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वही दो पग से शत्रु-हनन करनेवाले श्रीकृष्ण इस धराधाम पर निवास कर रहे थे ! उनका दाहिना मनोहर हाथ चक्रधारण करने तथा बायाँ हाथ गदा उठाने को उत्सुक हो ऐसा प्रतीत होता था। इस कृष्ण के पार्श्व में श्याममेघ के हृदय में जैसे बिजली शोभित होती है उसी प्रकार शोभायमान रुक्मिणी को भी उन्होंने देखा और सहज भाव से पारिजात का पुष्पगुच्छ कृष्ण के हाथ में अर्पित कर दिया।

कृष्ण ने भुवन-मोहन स्मित कर पुष्प ग्रहण किये और रुक्मिणी की ओर देखा। रुक्मिणी के गोरे मुख पर छायी काली अलकों को सँवारकर और गोद में नाग की भाँति कुण्डली मारकर पड़ी लम्बी चोटी में उन पुष्पों को कृष्ण ने कलात्मक ढंग से सजा दिया।

यह देखते हुए नारद को सतत एक अन्य स्त्री का स्मरण आ रहा था। कौन थी वह स्त्री, जिसकी छवि इस समय नारद के मन में साकार होकर रुक्मिणी के दर्शन में व्यवधान बन रही थी ?

वन-प्रान्तर के अपरिचित पथ पर, कदम्ब वृक्ष की डाल पकड़कर, यमुना नदी के पार मथुरा की दिशा में जाते रास्ते पर टकटकी लगाये खड़ी राधा ही तो कहीं इस समय रुक्मिणी के वेश में यहाँ नहीं बैठी है ? राधा और रुक्मिणी के चित्र मिलकर एक हो जाते प्रतीत हुए।

और यह दूसरा कौन है ?

रेशमी वस्त्रों में यह स्त्री रंगबिरंगे पुष्पों के बीच जैसे मोगरा के पुष्प हों, ऐसी सुशोभित हो रही थी। उसका गुलाबी चेहरा गुस्से के कारण लाल हो गया था। उसकी छाती जोर-जोर से धड़कने के कारण पंख फड़फड़ाकर उड़ने को आतुर पक्षी के बच्चे-जैसी लग रही थी।

"रुक्मिणी, कृष्ण की मान्य रानी और मैं सत्राजित की पुत्री सत्यभामा, मेरी कोई बिसात ही नहीं ?" उसने कहा और अपनी दासी श्रुतिविंदा को बुलाकर बोली, "कृष्ण आवें तो उनसे कहना सत्यभामा कोपभवन में बैठी हैं।"

जैसे तारिका जलयुक्त मेघमण्डल में प्रवेश करती है, उसी प्रकार कोपायमान हुई सत्यभामा ने एकान्त में स्थित कोपभवन में प्रवेश किया। लम्बे तकियेवाले बिस्तर पर बैठी, कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के सम्मान का स्मरण करती रुष्ट, बार-बार अपने मस्तक को कँपा रही सत्यभामा अपने मुखकमल को अश्रुजल से धो रही थी।

पारिजात पुष्प का गुच्छा, रुक्मिणी के केशों पर कृष्ण द्वारा की गयी पुष्प-सज्जा और सत्यभामा का कोप-भवन-प्रवेश—यह सब प्रातः होते ही अदृश्य हो गया। नारद जब जागे तब वे अभी गर्ग के आश्रम में कोमल पर्णशय्या पर सोये थे।

स्वप्न में अपने इष्ट की मूर्ति के दर्शन हुए इसकी प्रसन्नता की झलक जागने पर भी नारद के चेहरे पर अंकित देखी जा सकती थी। बहुत दिनों बाद नारद ने इतनी विक्षिप्ति के बावजूद इतनी सुखद निद्रा प्राप्त की थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद ने प्रातः कर्म किये और पुष्पवन में जाकर पारिजात के पुष्प बीने। ये पुष्प कृष्ण अपने हाथ से रुक्मिणी को देंगे या क्या करेंगे इसकी दुविधा उनके मन में आयी, और फिर मन ही मन हँसे और बोले, "मैं कुछ अधिक पुष्प ले जाऊँ, जिससे कृष्ण सत्यभामा को भी पुष्प दे सकें। नहीं तो वास्तव में यदि सत्यभामा एक बार कोपभवन में बैठ गयी तो उन्हें मनाने के लिए द्वारका के पारिजात काफीः नहीं होंगे, बल्कि मानस-सरोवर के पास के नन्दन-कानन के पारिजात-पुष्प भी लाने पड़ेंगे !"

सुबह हो गयी थी, फिर भी अभी कुहासा घटा नहीं था। कल शाम दिख रहा द्वारका का किला इस समय कुहासे में आलोप हो गया था। नारद को आज यह कुहासा अच्छा नहीं लगा। मानो यह कुहासा नहीं था, बल्कि अज्ञात भविष्य का प्रदेश था। इस कुहासे को सूर्य की किरणें भेद डालेंगी, फिर जो नजर आयेगा वह क्या होगा ?

द्वारका के किले पर छाया कुहासा सच पूछिये तो सारे देश पर छा गया था। इस कुहासे को विदीर्ण करे, ऐसा सूर्य कब उदित होगा ? यह सूर्योदय के पहले का कुहासा है या फिर सूर्यास्त के बाद घिर रहा अन्धकार ?

नारद स्थिति और समय दोनों को विस्मृत कर खड़े रहे। उनकी आँखें जो देख रही थीं, उसे वे देखना नहीं चाहते थे और जो देखना चाहते थे वह दिख नहीं रहा था।

उन्होंने अपनी झोली में संचित पुष्पों की ओर देखा। पुष्पों का स्पर्श करती वायु को सूँघा। इतने में कुहासे में से कोई आकृति निकट, निकटतर आती दिखी।

बद्रिकाश्रम के हिमशिखरों जैसी धवल जटा, भस्म और कण्ठ में रुद्राक्ष धारण किये, गर्ग ऋषि नजत्दीक आये तो नारद ने पहचान लिया। दोनों ऋषियों ने परस्पर अभिवादन किया। तदनन्तर नारद ने कहा, "गर्ग ऋषिजी, द्वारका के क्या समाचार हैं ?"

"द्वारका के तो कोई समाचार नहीं हैं, पर आर्यावर्त के समाचार हैं।"

"अच्छा ? आर्यावर्त में अब क्या हो गया है ?"

"एक वर्ष के अज्ञातवास के बाद पाण्डव विराटनगर में प्रगट हुए हैं, और आज तो वहाँ अभिमन्यु और उत्तरा का विवाहोत्सव हो रहा होगा, देवी सुभद्रा और उनके भाई कृष्ण दोनों वहाँ गये हैं।" गर्ग ऋषि ने कहा और उनके शब्दों का नारद पर क्या प्रभाव हुआ है यह देखने को वे तनिक रुके।

नारद को एक क्षण समूची धरती चकराती लगी। पुष्पवन के ये पुष्प मानो नारद की ओर विस्मय से देखकर उनके दुर्भाग्य पर अनुकम्पा बरसा रहे थे। नारद ने पुष्पों की ओर देखा, अपनी झोली में भरे पारिजातों की ओर भी देखा। और फिर गर्ग ऋषि की ओर देखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस क्षण यदि गर्ग ऋषि ने चपलतापूर्वक दो कदम आगे बढ़कर नारद को वाहु में न ले लिया होता तो शायद नारद भूमि पर गिरकर ढेर हो गये होते।

"नारद, कृष्ण विराट नगर गये हैं पर आपके लिए सन्देश दे गये हैं" गर्ग ने कहा।

यह सुनकर नारद की जान में जान आयी। उन्होंने पूछा, "मेरे लिए कृष्ण का सन्देश ? मुझे जल्दी बताइये।"

"नारद, कृष्ण को अनुमान था कि आप द्वारका आयेंगे। आप आवें तो आपका स्वागत करने की सभी तैयारियाँ उन्होंने कर रखी थीं। तभी द्रुतगामी अश्व पर सवार विराट-राज का दूत आया। अभिमन्यु का विवाह तो एक निमित्त मात्र है, पर भाइयों के बीच युद्ध रोकने के लिए ही कृष्ण वहाँ गये हैं। वहाँ से वे हस्तिनापुर जायेंगे। यह भी सम्भव है।"

"कृष्ण अव अन्तर-विग्रह रोक सकेंगे क्या ?" नारद ने पूछा।

"यह कौन बता सकता है ? पर कृष्ण कोई रास्ता तो ढूँढ़ेंगे ही। उन्होंने कहा है—नारद से कहियेगा कि मैं उनसे मिलूँगा···उनसे मिलने के जितने भी अवसर अब तक ढूँढ़े, भेंट नहीं हो सकी। इसमें भी विधि का कोई संकेत होगा। पर इस समय तो हम महायुद्ध के चक्र में घिर गये हैं, उसमें से उबरूँगा तब मैं अवश्य नारद से मिलने आऊँगा। और इन शब्दों को बोलते हुए कृष्ण विह्वल हो रहे थे।"

"नारद से कहियेगा मैं उनसे मिलूँगा···" ये शब्द नारद के मन-आकाश में पक्षियों की टोली की भाँति मँडरा रहे थे, और आसपास की दुनिया के सभी कोलाहल भुलवा दें ऐसी कसमसाहट अनुभव कर रहे थे।

"नारद," गर्ग ऋषि कह रहे थे, "जब कृष्ण ने कहा है मिलूँगा, तब वे मिले विना नहीं रहेंगे।"

"पर कब ? इस महाकाल के मुख में सारा देश होम हो जायगा तब ?" नारद ने चीत्कार किया और इस चीत्कार से ही मानो दुर्ग पर छाया कुहासा हट गया और प्रातःकाल के बालसूर्य के प्रकाश में दुर्ग के स्वर्ण-कंगूरे चमक उठे।

सत्य का पक्ष कौन-सा ?

कृष्ण-विहीन द्वारका में जिस क्षण नारद ने पग रखा, उन्हें कृष्ण-विहीन मथुरा याद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आने लगी।

कितने ही दशकों पूर्व एक दिन उन्होंने मथुरा से ब्रज की राह पकड़ी थी। उसके बाद तो कितने ही युग बीत चुके थे। तिस पर भी कुछ धुँधले से दृश्य नारद के मन में उभर रहे थे। किसी वनपथ पर घूमती गाय की आँखों से डब-डब झरे आँसुओं की बूँदें मानो प्रलय-प्रवाह बन अतीत को लाँघ वर्तमान तक आ पहुँची थीं।

वृन्दावन में केवल साँय-साँय था। आँगन में खड़े नारद का सत्कार करने का होश भी नन्द में नहीं रहा था। द्वारका में हर आदमी नारद का आतिथ्य करने की उमंग दिखा रहा था, परन्तु वह आतिथ्य किसी भी मायने में वृन्दावन की बेहोशी की बराबरी नहीं कर पाता था। जो शून्यता उन्होंने नन्द के चेहरे पर देखी थी, वह यहाँ कहीं भी नहीं दिखाई देती थी। ब्रज में 'कृष्ण' शब्द उच्चारण करने मात्र से आकाश झुक जाता था। फूल ऊँचे उठकर नजर घुमाने लगते थे। गाय के कण्ठ की घण्टियाँ खनक उठती थीं। कदम्ब वृक्ष के पत्ते काँप जाते थे। वायु की लहरों में चेतन प्रकट होता, कली खिलकर फूल बन जाती, सूर्य की किरणें किसी को पाने को मचलने लगती थीं।

यहाँ किसी को कृष्ण हैं या नहीं, इसकी खबर तक नहीं थी। हृदिक का पुत्र कृतवर्मा मिला और जब उससे पूछा, तो बोला, "कृष्ण विराट नगर जाने का विचार कर रहे थे। गये कि नहीं, मुझे खबर नहीं है !"

कृष्ण इन लोगों के लिए अपना भौतिक ऐश्वर्य प्रकट करनेवाले इष्टदेव थे, इससे अधिक कुछ भी नहीं। वे घर में कृष्ण के चित्र रखते थे, कुछ तो उनकी पूजा भी करते थे, पर उनके हृदय में कृष्ण विराजमान हों, ऐसा नहीं लगता था। कृतवर्मा यादवों की समृद्धि के गीत गाता था। कृष्ण ने यादवों पर भारी उपकार किया था। मथुरा के जंगलों से उठाकर उन्हें द्वारका में सागर-तट पर बसा दिया था। "देखो, सामने जो यह स्फटिक का महल दिखता है न, वह यादव प्रमुख सत्राजित का है। वह चमकते पत्थरोंवाला महल मेरे पिता हृदिक का है··· !"

ये बाहर की इमारतों के नक्शे बनाने में व्यस्त लोग द्वारका के अन्तर का नक्शा ही भूल गये थे। "एक बार कृष्ण ने ग्वालों की रक्षा के लिए गोवर्धन उठाया था, आज वही कृष्ण इन यादवों की समृद्धि बढ़े, इस हेतु इतना बड़ा वेदना का गोवर्धन सिर पर उठाये फिर रहे हैं।" नारद सोच रहे थे।

"कृष्ण तो द्वारका में अधिक रहे ही नहीं," कृतवर्मा अपनी बात आगे बढ़ाते हुए बोला। "आज हस्तिनापुर में तो कल काम्पिल्य···पाण्डवों की किसी समस्या का समाधान करना हो या भीष्म को कोई सलाह देनी हो, द्रुपद पर कोई परेशानी आन पड़ी हो या फिर किसी जरासन्ध या शिशुपाल को मार्ग पर लाने की बात हो··· कृष्ण तो इन बातों में इतना डूब गये हैं कि द्वारका में अधिक रह ही नहीं पाते !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण यहाँ अधिक समय क्यों नहीं टिकते यह समझने में नारद को देर नहीं लगी। कृष्ण की लगन का अनुवन्ध वहुत ही सूक्ष्म है। यह समूचा नगर स्थूल सम्बन्ध पर स्थापित हुआ था। वृन्दावन में सवका अनुपम, जीवन्त स्नेह प्राप्त करने के बाद कृष्ण इस वातावरण में कैसे रह सकते हैं ?

द्वारका के महलों के पास रह-रहकर पालकी में बैठती-उतरतीं रूप-लावण्य से भरपूर कुलवधुएँ, गलियों में घूम रहे युवक, मकानों की खिड़कियों से बाहर ढुलकते संगीत और व्यस्तता की ध्वनियाँ, नारद इन सबके बीच घुटन अनुभव कर रहे थे। द्वारका में कृष्ण विद्यमान हों तब क्या यह सब ऐसे ही होता होगा ? कृष्ण ने जो जीवन स्वयं गढ़ा है, उस जीवन में कृष्ण का इतना अभाव क्यों है ?

एक विशाल प्रांगण में अनेक महल खड़े थे, उनमें से एक कृष्ण का था। कृतवर्मा नारद को वहाँ तक पहुँचाकर लौट गये। नारद ने कृष्ण के महल को दूर से प्रणाम किया।

इस महल में आज कृष्ण नहीं है। वहाँ जाकर क्या होगा, यह सोचकर वे वापस लौटने का विचार कर ही रहे थे कि तभी एक सेवक ने आकर उन्हें प्रणाम किया।

"माताजी आपको याद करती हैं।" सेवक ने कहा।

"कौन ? देवकी ?" नारद ने पूछा।

"हाँ, देवर्षि।"

देवकी ने नारद को प्रणाम करते हुए आसन प्रदान किया और कहा, "देवर्षि, आप कृष्ण को ढूँढ़ने निकले हैं, किन्तु कृष्ण की माँ से दूर भाग रहे हैं ? कृष्ण आपको कितना याद करता है ! आपसे मिलने वह काम्यकवन तक हो आया। बीच में आपका प्रस्थान पांचाल की ओर था, तब काम्पिल्य में भी उसने आपकी तलाश की थी।"

"माँ, अभी मेरे भाग्य खुले नहीं हैं, मेरी वीणा में कृष्ण के लिए वह तड़पन नहीं प्रकटी है, जो कौरवों की राजसभा में द्रौपदी के आर्तनाद में सुनाई दी थी, अथवा जो कभी-कभी ब्रज-भूमि में यशोदा के आँसुओं या राधा की सूखी आँखों में दिखती थी।"

'ब्रज' शब्द सुनते ही देवकी, वर्तमान से खिसककर अतीत में खो गयी। उसे वे दिन याद आये, जब वह पुत्रवती होने के बावजूद कभी भी पुत्र को देख नहीं पायी थी। उसने कहा, "नारद, आप बड़े भाग्यवान हैं कि आपने कृष्ण को यशोदा की आँखों में देखा है। मैं मथुरा में थी, तब तक तो आशा थी कि कभी यशोदा से मिलूँगी तो पूछूँगी कि कृष्ण छोटा था, तब कैसा था। पर हाय रे, ये राज-वैभव की जंजीरों जैसी मर्यादाएँ, मैं उनसे कभी भी न मिल सकी।"

देवकी की आँखों पर नमी की परत छा रही थी। वह आगे कहने लगीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तथापि यशोदा और राधा को मैं पहचानती नहीं, ऐसा नहीं है। कृष्ण को कितनी ही बार यशोदा को याद करके बिलखते देखा है और एक बार तो…"

देवकी को वह प्रसंग ठीक से याद था। कृष्ण को गोरस बहुत भाता है, यह मानकर माता देवकी ने अपने हाथों दही बिलोकर गोरस तैयार किया और कृष्ण के थाल में रखा। कृष्ण राजसभा से लौटे थे। "माँ, बहुत भूख लगी है, जल्दी थाली परस दे।" कहते हुए भोजन करने बैठ गये और उन्होंने थाली में रखा गोरस का पिण्ड देखा।

कृष्ण के चेहरे का समूचा रंग बदल गया। उनके होंठ काँपने लगे। आँखें उदास हो गयीं। समूचे शरीर पर प्रस्वेद-बिन्दु झलकने लगे। कुछ बोलना चाहते थे पर कण्ठ भर आया।

"माँ, मुझे अच्छा नहीं लगता।" कहकर कृष्ण खड़े हो गये। उद्धव का सहारा ले अपने शयन-खण्ड में बिस्तर पर लुढ़क गये।

"उद्धव," थोड़ी देर बाद कृष्ण ने कहा, "माँ से कहना, मेरे भोजन में कभी भी गोरस न परोसे… ।"

देवकी का समूचा शरीर काँप रहा था। नौ महीने तक उसने जिस पुत्र का भार वहन किया, वह उसके हाथ का गोरस चखना तक नहीं चाहता ! कृष्ण छोटा होता तो गाल पर दो चपत लगाकर भी कुछ कह सकी होती ! पहली बार जब देवकी ने अपने पुत्र को देखा तब वह कंस-चाणूर का मर्दन करनेवाले प्रतापी वीर के रूप में प्रकीर्तित हो चुका था। वह उसमें पुत्र के रूप में लाड़ नहीं कर पायी थी।

व्यथित देवकी बोली, "मेरे द्वारा परोसे गये गोरस का अनादर करके कृष्ण जब थाली पर से उठ गया, तब इस अनादर में, मैं यशोदा की भक्ति देख सकी थी। ऐसी भाग्यशालिनी यशोदा को मैं कृष्ण के माध्यम से पहचान पायी हूँ।" इसी प्रकार किसी पूर्णिमा की रात में अकेले ही महल के पीछे के उपवन में किसी वृक्ष की डाली का सहारा लेकर खड़े कृष्ण को मैं खिड़की से देखती रहती हूँ। कृष्ण के पिता मेरे पीछे खड़े रहकर कहते हैं, "क्या सोच रहा होगा छोकरा ?" मैं कहती हूँ, "उसे ब्रज याद आ रहा है, राधा याद आ रही है, यशोदा याद आ रही है !" और कृष्ण के पिता अश्रुभरी आवाज में कह उठते हैं, "और शायद नन्द भी याद आ रहे हैं !"

नारद को इस स्वर्णमयी द्वारका स्थित समृद्ध महल के इस कोने में फिर एक बार ब्रज अवतरित होता अनुभव हुआ।

"माँ, आपने कृष्ण के द्वारा यशोदा और राधा को जाना है, और मैंने यशोदा और राधा द्वारा कृष्ण को जाना है। हम दोनों के ज्ञान में कोई अभाव है और इसी से हमें चैन नहीं है।" नारद ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद ने कहा कि शायद उन्होंने आरम्भ से ही एक गलत खोज शुरू की है। कृष्ण जहाँ मिल सकते थे उस स्थान तक जब भी वे गये, कृष्ण तब तक वहाँ से सरक गये थे। कृष्ण जहाँ नहीं थे, उन स्थानों पर उन्होंने कृष्ण को देखा था। यमुना के श्यामवर्ण जल में कृष्ण की छवि जितनी झलकती थी, उतनी उन्होंने अन्यत्र कहीं भी नहीं देखी थी। द्रौपदी के आर्त्तस्वर में उन्होंने कृष्ण की उपस्थिति अनुभव की थी। नहीं तो जो दुःशासन द्रौपदी की चोटी पकड़कर उसे राजसभा में घसीट लाया था, कृष्ण का नाम सुनते ही उसके हाथों की शक्ति क्षीण कैसे हो जाती ? यथार्थ में ऐसा कैसे हो सकता है ? इस समय इस महल में कृष्ण नहीं हैं, तो देवकी की वाणी में कोई सजीव धड़कन सुनाई दे रही है, कोई आकार बनता प्रतीत होता है।

नारद को मार्कण्डेय ऋषि के शब्द याद आये। बद्रिकाश्रम में जब नारद सूर्य-किरणों से जगमगाते मूल्यवान रत्नसदृश और नीचे वह रही मन्दाकिनी के प्रवाह पर दृष्टि डाल रहे थे, तभी अचानक एक बहुत बड़ी हिमशिला ऊपर से लुढ़कती नीचे आयी। शिला के लुढ़कने की ध्वनि इतनी प्रचण्ड थी कि क्या हो रहा है यह देखने हेतु नारद ने नजर उठायी। मानो महाकाल उतर रहे हों, इस प्रकार यह शिला ऊपर से नीचे धँसी आ रही थी। नारद अन्यमनस्क बनकर शिला की ओर देखते रहे। इस शिला में उन्हें कृष्ण का रूप दिख रहा था। 'कृष्ण यदि भगवान हैं तो इस शिला के रूप में भी मुझसे मिलने आ सकते हैं', उन्होंने सोचा और कृष्ण ने अपना जो भी भवितव्य निर्धारित किया हो उसका स्वागत करने हेतु वे वहाँ अचल खड़े रहे।

लुढ़कती शिला नारद से थोड़ी दूर पर ऊपर की धार के पास से इस प्रकार सरकी कि उसके पतन का मार्ग उस अवरोध के कारण थोड़ा बदला, और नारद के एकाध अंगुल अन्तर पर रहकर वह पर्वत के नीचे की ओर लुढ़कने लगी।

मानो अपने ही विचारों को प्रतिध्वनित करते हों, इस प्रकार पीछे आ खड़े हुए मार्कण्डेय ऋषि ने पूछा, "क्यों नारद, कृष्ण का यह रूप कैसा लगा ?"

कृष्ण का यह महाकाल जैसा रूप अपने से कितने पास आकर चला गया, याद करके नारद काँप उठे। इस समय देवकी की वाणी में से साकार होते किसी स्वरूप को वे निहार रहे थे। 'नारद, कृष्ण का यह रूप आपको कैसा लगा ?' उनके मन में यह प्रश्न पुनः कौंध गया।

देवकी तो अपने विचारों में मगन थी, वह कह रही थी, "यशोदा कितनी बड़भागी है कि उसके भाग्य में कृष्ण और बलराम के मीठे और छोटे-मोटे झगड़े निपटाने का काम आया था और वह जब चाहती, तब बलराम को चपत मारकर बैठा देती या कृष्ण को ऊखल से बाँध सकती थी। मैं कृष्ण और बलराम की माता हूँ, पर जो बालक मेरी गोद में खेले नहीं हैं, उन्हें एक कड़ा शब्द कहने का भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवसर मुझे नहीं मिला है। आज कृष्ण और बलराम दोनों आमने-सामने मोरचे पर आ खड़े हों, ऐसी परिस्थिति है, फिर भी…।"

"कृष्ण और बलराम लड़ेंगे ?" नारद ने आश्चर्य व्यक्त किया, "यह तो असम्भव है !"

"शायद यह सम्भव भी हो, और तब मैं माँ होने के उपरान्त भी कुछ न कर सकूँ, आप मेरी इस विवशता की पीड़ा समझ सकते हैं ?"

देवकी क्या कह रही हैं यह बात नारद के मन में बैठ नहीं रही थी। वे चुप रहे।

देवकी ने थोड़ी देर बाद आगे कहा, "नारद, आप जानते हैं कि आर्यावर्त पर महायुद्ध के बादल मँडरा रहे हैं और उसमें बलराम मानता है कि दुर्योधन का पक्ष सत्य का है। कृष्ण मानता है कि दुर्योधन के पक्ष में आंशिक सत्य है, पर धर्म पाण्डवों के पक्ष में है।"

"माताजी, यह प्रश्न तो भीष्म, द्रोण, शल्य आदि महामान्य लोगों को भी सता रहा है।" नारद ने कहा।

"कृष्ण और बलराम प्रतिपक्ष की छावनी में जाकर बैठें, तब माँ के रूप में मेरी स्थिति क्या होगी ?" देवकी ने कहा।

नारद देवकी की व्यथा समझ सकते थे। देवकी के वात्सल्य का पार न था। पर इन दोनों पर यशोदा जैसा हुकुम चला सकती है वैसा तो देवकी कभी सोच भी नहीं सकती थी।

और यह परिस्थिति कितनी भयावह है !

इस महायुद्ध में एक पक्ष में कृष्ण हों और दूसरे पक्ष में बलराम ! नारद काँप उठे। यदि ऐसा हो तो क़ौन-सा पक्ष सच्चा होगा ?

वे बोल उठे, "माँ, मुझे लगता है कि ऐसा नहीं होगा। कृष्ण अवश्य ही कोई समाधान का मार्ग ढूँढ़ निकालेंगे।"

किसकी जीत ?

अब तो रथ फहराता गरुड़ भी नहीं दिख रहा था। मार्ग की धूल भी कौरवों के भाग्य की भाँति उड़कर नीचे बैठ गयी थी। किसी अगम्य बिन्दु के साथ एकाकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गया यह प्रलम्ब रास्ता छटपटाकर निष्प्राण बन जाते सर्प की भाँति निढाल होकर लेट गया था।

रथ, रथ पर की ध्वजा, उसे ढक देता धूल का गुबार और सुनसान रास्ता—इन सबको आँखों से पी रहे भीष्म एकाएक उन्मन बन गये।

अभी दो दिन पहले जब हस्तिनापुर निवासियों को पता चला था कि कृष्ण वृक्रस्थल में हैं और प्रातः हस्तिनापुर पहुँचनेवाले हैं, तब समूचे शहर में एक नयी चेतना आ गयी थी।

कृष्ण का सम्मान करने हेतु नगर का सिंगार किया गया था। राजमार्ग पर स्थित मकानों की अटारियों, छज्जों, छतों पर जहाँ भी जगह मिली, वहीं जम गये और झुककर कृष्ण की राह देख रहे औरतों, बच्चों और पुरुषों के झुण्डों से भरे दोनों ओर मकान, ऐसे लगते थे, मानो झुककर धरती छू रहे हैं।

सभी की आँखों में अपेक्षा की झलक थी। सम्भावना के तार पर वे सब अपने संकल्प-विकल्पों को झुला रहे थे। कृष्ण आ रहे हैं, पाण्डवों के दूत के रूप में आ रहे हैं, वे आकर युद्ध को टालने का प्रयत्न करेंगे। कृष्ण आयेंगे और दुर्योधन की दुर्मति सुमति में बदल जायेगी। कृष्ण आयेंगे और भीष्म दुर्योधन का पक्ष छोड़कर कृष्ण के पक्ष में चले जायेंगे।

माताएँ सोच रही थीं कि कृष्ण आयेंगे और हमारी सन्तानों को युद्ध में नहीं जाना पड़ेगा। पुर-नारियाँ सोचती थीं कि कन्त को केसरिया तिलक लगाकर रणभूमि के लिए विदा नहीं करना पड़ेगा, उनका सौभाग्य बना रहेगा। बालक अनाथ नहीं होंगे, विनाश की झंझा आर्यावर्त का सर्वनाश करने से पूर्व ही वापस लौट जायेगी।

ऐसे स्वप्नों में डूबा, ऐसी आशाएँ बाँधे समूचा हस्तिनापुर उस दिन उमड़ पड़ा था। कृष्ण के स्मित में सबको अपना सुख दिखाई देता था। कृष्ण की आँखों का अमृत इस स्वर्ग को शाश्वत बना सकेगा, ऐसा सबने मान लिया था।

भीष्म तो समूची परिस्थिति को दीपक की भाँति देख सकते थे। दुर्योधन झुकेगा, यह सम्भव नहीं था। धृतराष्ट्र दुर्योधन को नाराज करें, यह भी सम्भव नहीं था। तथापि कृष्ण आ रहे हैं, इतने समाचार-मात्र से उनकी आँखों में भी अपेक्षा की चमक आ गयी थी। वे अपने मन को आश्वासन दे रहे थे कि कृष्ण आयेंगे और सब कुछ बदल जायेगा।

इस चमत्कार की अपेक्षा हस्तिनापुर के पुरजनों या भीष्म को हा थी ऐसा नहीं, समस्त आर्यावर्त किसी महान घटना की प्रतीक्षा कर रहा था। जब आमने-सामने खड्ग टकरा रहे हों, धनुषों में कोई खामी है या नहीं—यह देखने के लिए प्रत्यंचा खींचकर देखी जा रही हो, तीर के फल घिसकर चोखे बनाये जा रहे हों, तब इन मृत्यु-घोषों के बीच कृष्ण-संजीवनी-वाणी किस प्रकार उच्चारित करेंगे, इस कौतूहल को शान्त करने हेतु भगवान परशुराम, महर्षि कण्व और इनके जैसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असंख्य महान विभूतियाँ कौरवों की राजसभा में उपस्थित थीं। युद्ध की धू-धू करके जल रही अग्नि में कृष्ण की वाणी शीतल वर्षा बन कर बरसेगी या आहुति बनकर होमी जायेगी, ऐसे विचारों के बीच भीष्म, धृतराष्ट्र और अन्य लोग झूल रहे थे।

कृष्ण आनेवाले हैं, अस्तु समूचे वातावरण में एक गुलाबी छवि अंकित हो रही थी। आर्यावर्त की स्त्रियों से जन्मे और अजन्मे बच्चों के पिताओं की आयु कृष्ण की वाणी के तार पर झूलनेवाली थी।

कृष्ण के इन शब्दों का जादू कितना फैला था, यह केवल भीष्म ने ही नहीं, कौरव-सभा ने अपनी आँखों से देखा था। जो राजा अपनी सेना के साथ दुर्योधन की मदद को आये थे, उन्हें कृष्ण के शब्दों में अपना भवितव्य दिखता था। इन तमाम कोलाहलों और शोर के बीच कृष्ण कोई और ही बात करने आये थे।

कृष्ण के ये शब्द अभी भी भीष्म के कान में गूँज रहे थे—"कौरवों और पाण्डवों के विनाश के बिना शान्ति हो, यही माँगने आज आपके पास आया हूँ।"

यह असम्भव-सी लगती स्थिति कृष्ण के मुख से सम्भव-सी लग रही थी। दुर्योधन के परम मित्र राजाओं ने भी उस समय कहा, "दुर्योधन, जब तक कृष्ण और अर्जुन युद्ध के लिए तैयार नहीं हुए हैं, धौम्य ऋषि की संग्राम-रूप अग्नि में तुम्हारे सैन्य को होमा नहीं गया है और शीलवान बड़े धनुषवाले युधिष्ठिर क्रोधित होकर तुम्हारे सैन्य पर दृष्टि नहीं डाल रहे हैं, तब तक यह बैर शान्त हो जाय तो अच्छा !"

दुर्योधन यह सब सुन रहा था और मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। या एकाध पल गम्भीर मुद्रा धारण करके बैठे भीष्म पितामह की ओर, दूसरे क्षण गहरे विचार में खोये गुरु द्रोणाचार्य की ओर, वीर जयद्रथ की ओर और महारथी कर्ण की ओर देख रहा था। उसे समाधान में मानो कोई रस ही नहीं था। उसने कृष्ण से कहा—

"माधव, मैं तो मानता था कि आप न्याय के पक्ष में होंगे। यह राज्य किसका है, बताएँगे ? राजा शान्तनु के पुत्र विचित्रवीर्य, उनके सबसे बड़े पुत्र धृतराष्ट्र और धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र मैं हूँ। मेरे अन्धे पिता ने बन्धुप्रीति वश काका के हाथ में शासन की बागडोर सौंपी तो इससे राज्य पर से मेरा अधिकार समूल नष्ट हो गया क्या ? इसके बावजूद हमने उदार बनकर पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया, और वह उन्होंने जुए में खो दिया। एक वर्ष के गुप्तवास की शर्त तोड़कर, अब किस न्याय से पाण्डव राज्य माँगने आये हैं ? कहिए अपने धर्मराज से कि बारह बरस बनवास करें, तेरहवें वर्ष पुनः अज्ञातवास करें, उसके बाद आवें···"

दुर्योधन की निरामयता से सभी को आश्चर्य हुआ। दुर्योधन के पक्ष में लौकिक न्याय है, इस बारे में तो भीष्म या अन्य किसी को शंका नहीं होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कदाचित् कृष्ण भी इस बात से सहमत हों, पर दुर्योधन सत्य या धर्म की प्रतिष्ठा करने में विश्वास नहीं करता और कृष्ण के समक्ष उसका विरोध केवल एक ही बात को लेकर था। और यह बात दुर्योधन भी जानता था।

दुर्योधन के इन शब्दों के उत्तर में कृष्ण क्या कहेंगे, यह सुनने के लिए समूची राजसभा अधीर हो उठी थी। कृष्ण खड़े हुए, उनके होठों पर हमेशा खेलता स्मित इस समय गम्भीरता में विलीन हो गया था।

"दुर्योधन, इस युद्ध में चाहे कोई भी पक्ष जीते, विजय तो काल-देवता की ही होगी, तुम्हारे या पाण्डवों के भाग्य में तो सर्वनाश के साथ ही जय लिखी है···" ये शब्द कृष्ण के नहीं थे, मानो ऐसा प्रतीत हो रहा था स्वयं महाकाल कृष्ण के माध्यम से बोल रहा है। उनकी आवाज बड़ी होती गयी। राजसभा में न समा सके, इतने प्रचण्ड वे होते जा रहे थे। "युद्ध की दुन्दुभी का नाद मुझे इस समय भी सुनाई दे रहा है। प्रतापी भीष्म की शंखध्वनि के साथ पार्थ के देवदत्त शंख की ध्वनि वातावरण में टकरायेगी तब रणभूमि में पिता और पौत्र को एक दूसरे के लहू का प्यासा न देखना पड़े, यह सोचकर सूर्यनारायण भी मुख मोड़ लेंगे। भाई अपने भाई को कुचलने के लिए तत्पर होंगे···"

कृष्ण की आवाज में मानवी वाणी की झनक नहीं थी, लगता था, कि भाग्यदेवी ही उनकी आवाज में से बोल रही है। "यह अन्तिम अवसर है जगत् को उबार लेने का ! यदि यह चूक गया तो कौरवों और पाण्डवों के विराट सैन्य को, भीष्म को, कर्ण को, दुर्योधन को, द्रुपद को, धृष्टद्युम्न को, अरे, स्वयं पाण्डवों को भी, महाकाल के विराट जबड़ों में होम होते देख रहा हूँ। अभी भी समय है, दुर्योधन, यदि तुम्हें यह सर्वनाश रोकना हो तो।"

कृष्ण की वाणी का उद्घोष अभी भीष्म के मन से दूर नहीं हुआ था। भीष्म गुमसुम बैठे यह सब याद कर रहे थे। शान्ति का अमृतचषक आर्यावर्त के होठों तक आया और ढुलक गया था। विधि को कुछ और ही मंजूर था।

कृष्ण आये और आज गये भी। वे गये और उनके साथ मानो हस्तिनापुर से चेतना भी चली गयी। समूची प्रजा की आस्था ढह गयी। जिस कृष्ण ने कंस-चाणूर का संहार किया, जरासन्ध के दर्प का हरण किया, कालयवन को पछाड़ा, यादवों को तारा और समृद्धि के शिखर पर स्थापित किया, वही कृष्ण आज कोई चमत्कार नहीं कर पाये और यदि कृष्ण भावी महायुद्ध को नहीं रोक सके तो अब और कौन रोक सकेगा ?

भीष्म के मन में उठे प्रश्न का उत्तर दे रहे हों, इस प्रकार साथ चल रहे विदुर ने कहा, "अब इस युद्ध को टाल सके, ऐसा एक ही व्यक्ति मुझे दिखाई देता है।"

"कौन ?" भीष्म ने विस्मय से पूछा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"भीष्म पितामह··· !" विदुर ने कहा, "आप यदि कौरवपक्ष से हट जाएँ तो दुर्योधन युद्ध करने से पूर्व सौ बार विचार करेगा।"

भीष्म ठिठक गये। विदुर के शब्दों ने उन्हें एक झटका दिया था। पर दूसरे ही क्षण उन्होंने हताश होकर सिर हिलाया, "विदुर, यदि मैं कौरवों के पक्ष से हट जाऊँ, तो क्या होगा, जानते हो ?"

"क्या होगा ?" विदुर ने पूछा।

"मैं हट जाऊँ तो पाण्डवों से युद्ध करने में दुर्योधन की आधी हिम्मत टूट जायेगी, यह सच है," भीष्म मानो भविष्य में झाँक रहे हों, इस प्रकार धीमे-धीमे कह रहे थे, "पर फिर लाक्षागृह बनेंगे, फिर जहर भरे भोजन के थाल भेजे जायेंगे, उत्सवों और वार-त्यौहारों पर भाइयों-भाइयों की आँखें लड़ेंगी और कभी किसी छोटी-सी खुरचाल से दबी हुई चिनगारी भभक उठेगी। विदुर, तब तक शायद उस जहर ने समूचे समाज को भी दूषित कर डाला होगा।"

"पितामह, कहीं आप ज्यादा गहरी कल्पनाओं में तो नहीं उतर गये हैं ?" विदुर ने पूछा।

"नहीं, विदुर, यह महायुद्ध होकर रहेगा। हम एक ही बार युद्ध हो जाने के बदले इसे असंख्य कटुताभरे वर्षों में फैलायें, इससे तो अच्छा है कि एक बार युद्ध हो ही जाय, यही अच्छा होगा।" भीष्म ने कहा।

"युद्ध हुआ तो आप कौरव पक्ष में रहकर पाण्डवों से लड़ेंगे ?" विदुर ने पूछा।

"मुझे तो यह कड़ुवा कर्तव्य निभाना ही पड़ेगा। लौकिक न्याय जिसके पक्ष में है, उस दुर्योधन को मैं कैसे त्याग सकता हूँ। मुझे तो आश्चर्य होता है कि धर्मात्मा कृष्ण क्या न्याय के विरुद्ध दुर्योधन के विरुद्ध शस्त्र उठाएँगे ?"

विदुर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप महाराज धृतराष्ट्र के महल में आये। धृतराष्ट्र स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे थे। अपनी अन्धी आँखों की पलकें मूँदे वे कुछ विचार कर रहे थे। उनकी बायीं ओर संजय बैठा था और दाहिनी ओर खुलती खिड़की के पास दुर्योधन खड़ा था। दुर्योधन के चेहरे पर प्रसन्नता विराज रही थी। खिड़की से दिखाई पड़ते आकाश में मानो उसकी प्रसन्नता बिखरी पड़ी हो, इस प्रकार वह एकटक बाहर देख रहा था।

भीष्म और विदुर ने प्रवेश किया तो धृतराष्ट्र ने पलकें पटपटायीं, "संजय, कौन आया ?"

"महाराज, पितामह आये हैं !" संजय ने कहा।

"पितामह", धृतराष्ट्र के चेहरे पर चमक आ गयी, "आपने सुना ?"

"क्या ?" भीष्म ने पूछा।

"विदुर, तुम्हें भी खबर नहीं है ?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"पर आप किसकी बात कर रहे हैं।" धृतराष्ट्र के चेहरे की चमक और दुर्योधन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की प्रसन्नता देखते हुए विदुर को लगा कि कौरवों के लिए कुछ लाभदायक घटित हुआ है।

"दुर्योधन, तू ही वह बात बता !"

"पितामह", दुर्योधन ने पास आकर भीष्म और विदुर को आसन दिया और फिर स्वयं आसन ग्रहण करके कहा, "हमारे पक्ष की विजय निश्चित ही है, अस्तु, आप कौरवों के सेनापति के रूप में प्रजा में श्रद्धा प्रेरित करें।"

"मैं जब युद्ध करने निकलता हूँ तब पराजय का विचार नहीं करता !" भीष्म ने कहा।

"पितामह, उधर के पक्ष का सर्वोच्च शिखर गिर गया है।" दुर्योधन ने कहा।

"सर्वोच्च शिखर ? कौन ?" भीष्म को अचम्भा हुआ।

"पाण्डवों के लिए सर्वोच्च शिखर कौन हो सकता है ?" दुर्योधन ने कहा, "और कृष्ण जितना पाण्डव सोचते हैं, उतने अधर्मी नहीं हैं।"

"पितामह, आप लोग कहते थे, तब मुझे कृष्ण की धर्म-निष्ठा पर विश्वास नहीं था। आज मुझे सत्य समझ में आया है। वास्तव में वे महान विभूति हैं।" धृतराष्ट्र ने कहा।

"पर हुआ क्या ? आप पिता-पुत्र को कृष्ण पर आज अचानक प्रेम कैसे उमड़ आया है !"

"कल जब कृष्ण सन्ध्या-पूजा हेतु अपने मन्दिर में गये, तब दुर्योधन उनसे विशेष रूप से मिला था !" धृतराष्ट्र ने कहा।

"इसका मुझे पता है।" भीष्म ने कहा।

"पर इस भेंट-वार्ता में क्या हुआ, यह आप नहीं जानते, पितामह !" धृतराष्ट्र ने कहा, "दुर्योधन तुम ही बताओ न !"

"पितामह, मैंने कृष्ण के समक्ष सारी परिस्थिति अथ से इति तक रखी। युद्ध करने का अपना निश्चय व्यक्त किया। कृष्ण ने मुझसे कहा, 'दुर्योधन, तुम्हारे पक्ष में लौकिक न्याय है, यह मैं मानता हूँ।' मैंने उनसे कहा, 'तो आपको मेरी मदद करनी चाहिए।' कृष्ण ने हँसकर कहा, 'दुर्योधन, अर्जुन ने मुझे पहले ही माँग लिया है, पर यादवों की सेना कौरव पक्ष से लड़ेगी।' "

भीष्म और विदुर यह सुनकर स्तब्ध रह गये।

"इतना ही नहीं, पितामह, कृष्ण ने मुझे वचन दिया है कि वे धर्म के पक्ष में रहेंगे पर न्याय के विरुद्ध शस्त्र नहीं गहेंगे।" दुर्योधन के उत्साह का पार न था, "अब तो विजय हमारी ही होगी न ?"

पितामह बोल उठे, "वाह, कृष्ण, आप जहाँ हैं वहाँ धर्म होगा, इसमें नयी बात क्या है !"

"अब हम जरूर जीतेंगे !" धृतराष्ट्र ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"जीत ! किसकी जीत ?" भीष्म बोल उठे। "कृष्ण पाण्डवों के पक्ष में हैं, इसी की महिमा है। वे शस्त्र-धारण करते हैं या नहीं, इसका महत्त्व नहीं है। कृष्ण के शब्द आप भूल गये ? 'विजय तो कालदेवता की ही होनेवाली है। आप लोगों के या पाण्डवों के भाग्य में तो सर्वनाश ही लिखा है...।' फिर वह सर्वनाश हर्ष के आँसू में भींजा होगा या शोक के आँसू में...इसमें विशेष अन्तर नहीं होगा।"

मुझे युद्ध नहीं करना है

कृष्ण की सन्धिवार्ता असफल हुई है, ऐसे समाचार पाण्डव शिविर में आये, तब धृष्टद्युम्न के हर्ष का पार न था। वह जीवन-भर केवल एक ही क्षण की राह देखता जी रहा था—जिन द्रोणाचार्य ने उसके पिता को अपमानित किया था, उन्हें रणभूमि में पराजित करना। और यह क्षण अब निकट आ रहा है, यह जानकर किसी उत्सव की तैयारी करता हो इस प्रकार उसने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी।

कृष्ण कोई चमत्कार करेंगे यह आशा मिथ्या सिद्ध हुई, अतः निराश हुए असंख्य लोग अब रणभूमि में मृत्यु या विजय का संकल्प लिये विविध पक्ष में जाने लगे।

पाण्डव मोरचे पर ही छोटी-सी सभा बुलाकर कृष्ण को सर्वोच्च सेनापति पद पर स्थापित करने कर विचार कर रहे थे, तभी कृष्ण द्वारा भेजा दूत आ पहुँचा, सन्धिवार्ता असफल हुई है, यह समाचार तो उसने दिया ही, पर उसने जो दूसरा समाचार सुनाया, उसे सुनकर तो सभी स्तब्ध हो उठे।

"क्या यह सच है ?" युधिष्ठिर ने दूत से पूछा। उनकी आवाज से तेज निकल गया था।

"हाँ महाराज, कृष्ण ने दुर्योधन को वचन दिया है कि उनकी विशाल नारायणी सेना उसके पक्ष से लड़ेगी और कृष्ण स्वयं पाण्डवों के पक्ष में रहेंगे, पर कौरवों के विरुद्ध शस्त्र नहीं उठायेंगे।" इस समाचार ने सबको आहत किया। सबसे पहले स्वस्थ होकर भीम ने कहा, "यदि कृष्ण के सारंग-धनुष की टंकार रणक्षेत्र में नहीं सुन पड़े, उनकी कौमोदकी गदा शत्रुओं के मस्तक भंग न करनेवाली हो और उनके सुदर्शन-चक्र से शत्रुओं के सिर धड़ से जुदा न होनेवाले हों तो कृष्ण पाण्डवों के पक्ष में रहें तो क्या, और न रहें तो क्या !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"भीम, तुम अभी कृष्ण को नहीं जानते !" युधिष्ठिर ने कहा, "कृष्ण का बल उनके शस्त्रों में नहीं, उनके संकल्प में है, और उनका संकल्प यदि हमारी विजय का होगा तो कौरव चाहे कितनी अक्षौहिणी सेनाएँ जुटा लें, भीष्म, द्रोण या कर्ण पाण्डवों की पराजय के लिए चाहे कितना ही प्रयास करें, विजय हमारी ही होगी।"

"आपका स्पष्टीकरण अभी मेरे मन में नहीं बैठता, बड़े भाई। इससे तो अच्छा था उन्होंने हमें शरणागति स्वीकार कर लेने को कहा होता।" नकुल ने कहा।

अर्जुन शान्त बैठा था। कृष्ण सन्धिवार्ता के लिए गये उससे पहले रात्रि में हुई उस घटना की याद आ रही थी। उसने कहा, "कृष्ण ऐसा कहते तो थे, पर मुझे लगता था कि वे पाण्डवों की परीक्षा ले रहे हैं। वे वास्तव में ऐसा निर्णय करेंगे इसकी तो मुझे कल्पना भी नहीं थी।"

"कृष्ण क्या कहते थे ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

अर्जुन को रात्रि का वह मिलन, इस समय आँखों के आगे तैरता प्रतीत हुआ। अँधेरी रात थी। रास्ते में वृक्ष या पगडण्डी सुझाई नहीं देती थी। वे मशाल लिये विना निकल पड़े थे। कृष्ण और अर्जुन दोनों नदी किनारे पहुँचे। नदी की कल-कल ध्वनि, बहती हवा का स्पर्श और अँधेरी रात में गूँजता अलौकिक ब्रह्मनाद और इन सबके साथ कृष्ण एकाकार हो गये हैं ऐसा अर्जुन अनुभव कर रहा था।

कृष्ण नदी के किनारे एक कगार पर जा बैठे। अर्जुन उनसे कुछ ही दूर, एक दूसरे कगार पर बैठ गया। कृष्ण के चेहरे पर क्या भाव छाये हैं, यह अन्धकार में पढ़ना सम्भव न था। पर कृष्ण ने एक गहरी साँस ली। उस श्वास में मानो आसपास की समस्त विकलता, सारी वेदनाएँ वे अन्तर में खींच ले रहे हों, ऐसा अर्जुन को प्रतीत हुआ।

"पार्थ, मुझे सन्धिवार्ता की सफलता के बारे में सन्देह है। यह युद्ध होगा ही…" कृष्ण ने कहा।

"यदि आप हमारे पक्ष में हों तो कोई भी युद्ध लड़ लेने को हम तैयार हैं।" अर्जुन ने उत्तर दिया।

"अर्जुन, यदि यह युद्ध हुआ तो शायद यादव कौरव पक्ष से लड़ेंगे, यादवों की यह विशाल नारायणी सेना एक ओर है और दूसरी ओर मैं हूँ– अकेला, बेसहारा और अपने कुलजनों द्वारा त्यक्त।" कृष्ण ने कहा। वेदना के अम्बार से निकले एक-एक शब्द पर सान चढ़ रही थी। "अर्जुन बलराम इस युद्ध को दूसरे ढंग से देखते हैं। ऐसा भी सम्भव है कि तुम्हारे पक्ष में मैं अकेला ही रहूँ और वह भी निःशस्त्र। एक पक्ष में यादवों की विशाल नारायणी सेना है, दूसरी ओर मैं हूँ अकेला, आयुध-विहीन। तुम किसे पसन्द करोगे ?"

कृष्ण के शब्द तिमिर-सिन्धु पर तैरते हुए अर्जुन के हृदय तक पहुँचे। अर्जुन ने एक भी पल सोचे बिना उत्तर दिया, "कृष्ण मैं आपको ही माँग लेता हूँ। मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तःकरण की प्रार्थना है कि आप पाण्डवों को छोड़कर न जायँ। मुझे सैन्य की स्पृहा नहीं है। आपके सुदर्शन-चक्र को मैंने शिशुपाल का सिर छेदते देखा है, इस चक्र का उपयोग आप नहीं करेंगे तो भी चलेगा, पर आपके बिना नहीं चलेगा।"

अर्जुन का यह वृत्तान्त सुनकर सबको अब स्थिति स्पष्ट दिख रही थी। यादव दो भाग में विभाजित हो गये थे।

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि समूचा महायुद्ध लड़ा तो जायेगा, पर उसमें कृष्ण होंगे भी और नहीं भी होंगे।" नकुल ने कहा।

अचानक बाहर चार अश्वों से संचालित रथ एकदम शिविर के द्वार के पास आकर रुका हो ऐसी ध्वनि सुनायी दी।

"कौन आया होगा ?" युधिष्ठिर ने कहा, "कहीं कृष्ण तो नहीं हैं ?"

प्रतिहारी अन्दर आया, "महाराज ! कुण्डिनपुर के राजा रुक्मी पधारे हैं।"

रुक्मी मानो चलकर धरती पर उपकार करता हो इस प्रकार डग भरता अन्दर आया। रुक्मी को देखकर युधिष्ठिर को आश्चर्य हुआ।

भीम ने उठकर रुक्मी को युधिष्ठिर की बगल में आसन दिया, "कुशल तो है, महाराज ? और कुण्डिनपुर की प्रजा कुशलता से तो है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हाँ," रुक्मी ने कहा, "युद्ध की तैयारियाँ कैसी चल रही हैं ?"

"हम क्या तैयारी करेंगे ! धर्म और सत्य के लिए लड़ रहे हैं। भगवान सहायता करेंगे। यही आस्था लेकर आगे बढ़े हैं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"धर्म और सत्य अच्छे आदर्श हैं, महाराज युधिष्ठिर, पर इस युद्ध में ये काम नहीं आयेंगे। युद्ध में तो भीष्म, द्रोण और कर्ण का सामना करना है, इसके लिए वीरता की जरूरत है।"

"इसकी पाण्डवों के पास कमी नहीं है।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन, मेरी एक अक्षौहिणी सेना कुण्डिनपुर से रवाना हो चुकी है, वह कुछ ही दिनों में यहाँ आ पहुँचेगी। मैं आपको युद्ध जिता दूँगा।" रुक्मी ने कहा।

"रुक्मी, आपकी इस सहायता के लिए आभार" युधिष्ठिर ने कहा, "इस समय तो हमें जितनी भी मदद मिले कम है।"

"पर मेरी एक शर्त है !" रुक्मी ने कहा।

"कहिये," युधिष्ठिर को आश्चर्य हो रहा था कि रुक्मी इस प्रकार अनायास ही पाण्डवों पर कृपालु क्यों हो गया है।

"आप मेरा प्रताप और प्रभाव जानते हैं।" रुक्मी ने अपनी सशक्त भुजाओं पर गर्व से दृष्टि डालते हुए कहा, "मेरे पास एक अक्षौहिणी सेना है। मैं आपको इस युद्ध में जिता सकूँगा। भीष्म-द्रोण को भी हरा सकें ऐसे महारथी मेरी सेना में हैं।"

भीम न जाने कब से रुक्मी को उत्तर देने के लिए विकल हो रहा था, पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युधिष्ठिर ने संकेत करके उसे शान्त रहने को कहा।

"मेरी केवल एक ही शर्त है" रुक्मी ने कहा, "और वह यह है कि आप लोग कृष्ण को अपने पक्ष में नहीं रक्खेंगे।"

"आप अपनी बात कह चुके ?" भीम ने पूछा। उसकी आवाज में भरपूर तिरस्कार छलक रहा था।

"हाँ" रुक्मी ने कहा।

"आज आप हमारे अतिथि हैं, आप भोजन करें, फिर मैं आपको कुण्डिनपुर पहुँचा आऊँगा।" भीम ने कहा।

"क्या ?" रुक्मी आसन से उठकर खड़ा हो गया।

"और आप चाहें तो दुर्योधन से आपकी जान-पहचान भी करा दूँगा। उग्रधन्वा युधिष्ठिर, महाबली भीम, वीर अर्जुन और नकुल, सहदेव जैसे पराक्रमी वीरों का सामना करने के लिए वह जितनी मदद जुटा सके वह कम होगी। और रुक्मी, कुण्डिनपुर की सीमा पर कृष्ण ने तुम्हें जीवनदान दिया था, वह भूल गये तुम ! वही कृष्ण जब पाण्डवों के पक्ष में खड़े होंगे तब तुम्हारे रथ के घोड़े उनसे भयभीत हो दुम दबाकर भागेंगे।"

रुक्मी खड़ा हो गया। उसका चेहरा गुस्से से लाल हो गया था।

"मेरा अपमान कर रहे हो भीम !" उसने कहा, "पर लड़ाई के मैदान में देखना। और युधिष्ठिर, आप एक कृष्ण के बदले महापराक्रमी रुक्मी और उसकी एक अक्षौहिणी सेना को बराबर मानकर भी देखना नहीं चाहते ?"

"रुक्मी, एक कृष्ण के विरुद्ध हमने यादवों की नारायणी सेना को रखकर देखा है। कृष्ण के बदले हम भीष्म या द्रोण को भी नहीं चाहते। तुम्हें जिस भी पक्ष में जाना हो, जाओ, कृष्ण पाण्डव सेना में शीर्ष स्थान पर रहेंगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

रुक्मी अपने सामने रक्खे जलपान क़ा अनादर करके उठ गया और नमस्कार किये बिना ही चल दिया। जाते-जाते उसने भीम की ओर देखा और कहा, "भीम, लड़ाई के मैदान में मैं तुम्हारे ताने का जवाब दूँगा, मुझे शब्दों से नहीं, शस्त्रों से जवाब देना आसान लगता है।"

रुक्मी चला गया।

धृष्टद्युम्न ने पूछा, "महाराज, आप जो भी निर्णय करें उसके औचित्य के बारे में प्रश्न करने की मेरी औकात क्या है। पर कृष्ण और वह भी शस्त्र विहीन, कृष्ण की इतनी महिमा आप क्यों गाते हैं ?"

अर्जुन ने कहा, "धृष्टद्युम्न, यह तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा। यह कृष्ण मूर्तिमन्त धर्म हैं। इस धरती पर कभी ऐसा जीता-जागता व्यक्ति चलता-फिरता था, इस बात पर भविष्य की पीढ़ी के लोग विश्वास भी नहीं कर सकेंगे, ऐसा विरल है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनका व्यक्तित्व। हम उनके इतने निकट हैं कि उन्हें पहचान नहीं पाते।"

ये शब्द अर्जुन के मन में मँडराते रहते थे। वह रात में सो जाता तब भी कृष्ण की छवि उसकी आँखों के आगे नाचती रहती, "इस धरती पर कभी ऐसा जीता-जागता व्यक्ति चलता-फिरता था, भविष्य की पीढ़ी के लोग इस पर विश्वास भी नहीं कर सकेंगे···" इन शब्दों की प्रतिध्वनि मानो युगों पहले से होती रही है और युगों बाद तक होती रहेगी।

कुछ ऐसे ही विचारों में उसकी आँखें मुँद गयीं, पर आज उसकी नींद उखड़ गयी थी। इधर न जाने कितने पसन्द-नापसन्द दृश्य उसके स्वप्न में उभरते थे, पर आज अचानक एक विचित्र दृश्य आकर उसके आगे खड़ा हो गया। कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में उसने कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं को आमने-सामने खड़ा देखा। अर्जुन स्वयं चार अश्वोंवाले एक रथ पर बैठा था। चार अश्वों के दो प्रमुख चालकों पर ध्यान दिया तो देखा प्रमुख सारथि के रूप में कृष्ण बैठे हैं। कृष्ण के मुख पर उनका सर्वदा जैसा भुवन-मोहन स्मित था। अर्जुन ने कहा, "हे अच्युत ! आप दोनों सेनाओं के बीच मेरा रथ खड़ा करें। इस युद्ध में मुझे जिसका मुकाबला करना है, उस शत्रु-सैन्य को एक नजर देख तो लूँ। यहाँ दुर्योधन का हित साधन की इच्छा करनेवाले कौन लोग हैं, उन्हें देखने की मुझे इच्छा है।"

कृष्ण ने ये शब्द सुनते ही चालक को संकेत किया। रथ आगे बढ़ा, और रथ के दोनों ओर चार रक्षक, दस हाथी, प्रत्येक हाथी के साथ दस सवार और प्रत्येक सवार के साथ दस प्यादे भी आगे बढ़े।

रथ दोनों सेनाओं के बीच आकर खड़ा हुआ तब कृष्ण ने कहा, "पार्थ, ये हैं कौरव और उनके हितेच्छु। और यह हैं पाण्डव और उनके साथी··युद्ध आरम्भ हो उससे पहले इन्हें देख लो···"

कौरव सेना अभी व्यूहों में संगठित हो रही थी। अर्जुन ने देखा कि भीष्म कुछ आज्ञाएँ दे रहे हैं। द्रोणाचार्य महारथियों के व्यूह को ठीक से संगठित कर रहे हैं। अश्वत्थामा हाथियों को व्यवस्थित कर रहा है।

गुरु, पितामह, गुरुबन्धु, इन सबसे मुझे लड़ना है, ऐसा सोच रहे अर्जुन की नजर मामा शल्य पर पड़ी और फिर दुर्योधन के छोटे भाई विकर्ण को देखा। कौरवों की द्यूत-सभा में जब भीष्म और द्रोण भी नतमस्तक हो अधर्म को निभा रहे थे, तब इसी विकर्ण ने जोरदार शब्दों में द्रौपदी का पक्ष लिया था। बहन दुःशला का पति जयद्रथ और यादववीर कृतवर्मा भी उस पक्ष में थे। कर्ण कहीं दिख नहीं रहा था। अर्जुन को निराशा हुई। इसके बाद उसने अपनी सेना पर दृष्टि डाली तो अपने बान्धवों, पुत्रों, पौत्रों, श्वसुरों और अन्य सम्बन्धियों को देखा।

यह युद्ध किसके लिए जीतना है ? अर्जुन की दृष्टि अभिमन्यु पर पड़ी, घटोत्कच पर पड़ी, पांचाली-पुत्रों पर पड़ी और वह सोचने लगा, जिसके लिए राज्य, भोग और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख की इच्छा कर सकता हूँ, वह सन्तति तो प्राण और धन की इच्छा त्याग कर युद्ध करने खड़ी है और सामने पक्ष में जिन्होंने बचपन में लाड़-प्यार दिया, शिक्षा दी, वे जिनके साथ खेले-कूदे, ऐसे पितामह, आचार्य और सम्बन्धी खड़े हैं।

अर्जुन के अंग काँपने लगे। वह थरथरा उठा। क्या गाण्डीव के तीक्ष्ण वाण इन लोगों पर छोड़ने होंगे ?

उसके हाथ से गाण्डीव नीचे सरक गया। उसका सिर चकराने लगा।

अपने पास सोयी पांचाली भय से जाग उठें, ऐसी जोरदार आवाज में वह बोल उठा—"कृष्ण मुझे यह कुल-हत्या नहीं करनी है, मुझे यह युद्ध नहीं करना है।"

देवर्षियों में मैं नारद हूँ

सरस्वती नदी के दूर तक फैले तट पर देवर्षि नारद को एक कुटी देखकर बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह कुटी वहाँ पहले कभी नहीं देखी थी। "क्या यहाँ कोई ऋषि आकर बस गये हैं या फिर शिकार खेलने को निकले किसी राजा का यह शिविर है ?"

नारद ने लम्बी साँस छोड़ी। अब तो राजा लोग किसलिए जंगल में शिकार खेलने निकलेंगे ! कुरुक्षेत्र में एक विराट शिकार आरम्भ होनेवाला है या शायद अब तक आरम्भ भी हो चुका होगा। आदमी को शरसन्धान करके जिन्दा आदमी की छाती का निशान लगाने का अवसर मिलता हो, तो वह दूसरे प्राणियों को ढूँढ़ने किसलिए जायेगा ?

उस कुटी के पास एक यज्ञवेदी प्रज्वलित थी। कोई वहाँ बैठा प्रातःकालीन आहुतियाँ दे रहा था। कौन होगा यह ?

जबकि समूचा आर्यावर्त एक अनोखे पागलपन से आवृत्त हो गया था, जब पुरोहित यज्ञ में अपने यजमान शत्रुओं को आहुति के रूप में प्रदान कर रहे थे, तब यहाँ सरस्वती नदी के किनारे उगते सूर्य की पूजा करने का और आहुति प्रदान करने का अवकाश किसे मिला होगा ? "जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनसे हम द्वेष करते हैं, उन्हें रुद्रों के भयंकर मुख में—उन रुद्रों के जबड़े में रखते हैं, मुख में स्थापित करते हैं···" के मन्त्रोच्चार के साथ इस समय कुरुक्षेत्र का प्रत्येक राजा यज्ञ में आहुति दे रहा होगा, तब वेदोच्चार के मन्त्र प्रकट करनेवाला यह कौन होगा ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ पास गये और एक प्रभावान पुरुष को पद्मासन बाँधकर बैठे देखा। वह ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय था—और आहुति मन्त्रों का उच्चारण कर रहा था। हिमालय के शिखर जैसे गौरवर्णवाला और वैसी ही विराट कायावाला यह पुरुष सामने प्रज्वलित अग्नि को एकटक देख रहा था। "तपये स्वाहा, तप्तये स्वाहा, तप्यमानाय स्वाहा···तप्याय स्वाहा, धर्माय स्वाहा, निष्कृत्यै स्वाहा···"

तप के लिए, तप करनेवाले के लिए, तप में जुटे हुए के लिए, तप करके सिद्ध हुए के लिए, धर्म के लिए, निष्काम कर्म के लिए आहुति देनेवाले इस मनुष्य की बुलन्द आवाज वातावरण में एकाकी टकराकर मानो लौट आ रही थी। उसकी यज्ञवेदी में पड़ती प्रत्येक आहुति अग्नि को भभकाकर ऊपर और और ऊपर ले जा रही थी।

नारद को आग की लपकती ज्वालाओं में एक विराट अग्निकुण्ड दिखा, इस कुण्ड में महाकाय भीष्म को होम होते देखा, शस्त्रज्ञ द्रोणाचार्य मानो स्वयं ही अग्निकुण्ड में कूद रहे थे, कौरव और पाण्डवों के पुत्र पागल होकर अग्नि में कूदने को दौड़ रहे थे, असंख्य जवान, महारथी, अतिरथी, सवार, घोड़े, धीर-वीर योद्धा, सेवक, परिचायक—सभी मानो अग्निकुण्ड की ओर दौड़ रहे थे। प्रबल और उदार कर्ण भी इस ज्वाला में सुलग रहा था, वीर घटोत्कच और अभिमन्यु का ताजा मांस इस अग्नि में भुन रहा था। दुःशासन, विकर्ण और अन्य कौरवबन्धु उसमें होम हो रहे थे। दुर्योधन, जयद्रथ, शल्य, धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, शिखण्डी, मगधराज, सहदेव आदि इसमें होम हो रहे थे। अन्त में द्रौपदी, नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर को भी नारद ने इस अग्नि में होम होते देखा। प्रचण्ड और प्रभावान वह युवक भी आहुति देते-देते स्वयं भी उस अग्निकुण्ड में कूद पड़ा और अन्त में एक विराट व्यक्तित्व—इस प्रचण्ड अग्नि का कोई थोड़ा भिन्न रूप, इस अग्नि के साथ एकाकार होने को तरसता दिखा—यह किसका रूप था ?

नारद ने यह रूप कभी यशोदा की आँखों में देखा था, राधा के हृदय में देखा था, जरासन्ध के भय में देखा था, देवकी के वात्सल्य में देखा था !

"कृष्ण, कृष्ण···आप भी···" वे चीत्कार कर उठे।

आहुति दे रहे पुरुष ने पीछे मुड़कर देखा··· और अन्तिम आहुतियों का उच्चार किया यमाय स्वाहा, अन्तकाय स्वाहा, मृत्यवे स्वाहा, "यम देवता को सुहूत हो, काल देवता को उत्तम आहुति, मृत्यु देवता को उत्तम आहुति···"

नारद के कान से ये शब्द टकराये। अब वे कुछ स्वस्थ हुए। वे इस समय आकाश को आच्छादित करते किसी विराट अग्निकुण्ड के पास नहीं हैं, बल्कि सरस्वती नदी के किनारे स्थापित छोटी-सी यज्ञवेदी में यदुनन्दन बलराम द्वारा अर्पित होती आहुति देख रहे हैं, इसका बोध हुआ। तो इस प्रातःकालीन उज्ज्वल प्रकाश में जो देखा वह दुःस्वप्न था क्या ? और यादव प्रवीर बलराम किसलिए यहाँ हैं और क्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह आहुति दे रहे हैं ?

"देवर्षि," बलराम ने कहा, "आप ठीक समय पर आये। इस समय सभी ऋषि और ऋत्विज कुरुक्षेत्र में अपने-अपने यजमानों के लिए आहुतियाँ देने गये हैं, तब आहुति के अन्त में शान्तिपाठ करके आशीर्वाद देनेवाले ऋषि के लिए ही मैं प्रार्थना कर रहा था। मेरे भी कैसे भाग्य हैं कि देवों के ऋषि स्वयं चलकर यहाँ पधारे !"

पुरोहित के खाली आसन पर विराजमान होकर नारद ने विधिपूर्वक आहुति का समापन किया, फिर शान्तिपाठ का वाचन किया। शान्तिपाठ का एक-एक शब्द नारद को कोई भग्न होती इमारत-जैसा लग रहा था। वे एक ही माँग कर रहे थे, जिसका समूचे वातावरण से मेल नहीं बैठ रहा था। बलराम उठे और देवर्षि के चरणस्पर्श किये। नारद ने कहा, "बलराम, आपको इस समय क्या आशीर्वाद दूँ। कौरव, पाण्डव, पांचाल, यादव, मागध सभी लोग सर्वनाश के एक विराट खेल में जुटे हैं। मैं इतना ही कहूँगा, आपको आपकी शान्ति प्राप्त हो…"

"इस समय तो यह भी बहुत वड़ा आशीर्वाद है देवर्षि", बलराम ने कहा, "मैं इस समय अपने मन की शान्ति गँवा बैठा हूँ। मेरा भाई आज मेरा नहीं है, मेरी सेना मेरी नहीं है, कोई मेरी बात नहीं सुनता—युधिष्ठिर राज्य का मोह नहीं त्याग पाता, दुर्योधन को सयानापन नहीं सूझता। कृष्ण—यदि वह पाण्डवों के पक्ष से हट गया होता तो भी यह महायुद्ध न हुआ होता…"

"बलराम, कृष्ण धर्म के पक्ष में हैं, यह क्यों भूलते हैं !" नारद ने कहा। कृष्ण और बलराम के बीच कुरुक्षेत्र के युद्ध के बारे में कुछ कलह हुआ है, यह तो देवकी के शब्दों से नारद अनुमान लगा सके थे, पर इस कलह की जड़ें इतनी गहरी हैं, इसका उन्हें अनुमान नहीं था।

कृष्ण धर्म के पक्ष में हैं, पर दुर्योधन के पक्ष में न्याय है, यह वे क्यों नहीं देखते ? मैंने एकान्त में बारम्बार कृष्ण से कहा, "सभी सम्बन्धियों के प्रति समान व्यवहार करें, पाण्डव जैसे हमारे रिश्तेदार हैं वैसे ही दुर्योधन भी तो हैं। आप जैसे पाण्डवों की सहायता कर रहे हैं, ऐसे ही कभी दुर्योधन की भी सहायता करें। पर कृष्ण नहीं माने। क्षत्रियों के कुल अब काल द्वारा पकाये फलों-जैसे हैं, अब तो उन्हें डाली पर से टपकने और महाकाल के उदर में जाने की देर है…"

"आप यदि यह मानते हैं कि दुर्योधन का पक्ष सच्चा है, तो उसके पक्ष से लड़ने क्यों नहीं गये ?" नारद ने पूछा।

"नारद, इस जिन्दगी में मैंने कम युद्ध नहीं लड़े हैं। युद्ध माने संहार, सर्वनाश, बस इतना ही मैं जानता हूँ। मांस और रुधिर का कीचड़ बनने के लिए ही उसका निर्माण हुआ है, तब इस परिस्थिति को यदि मैं रोक न सकूँ तो कम-से-कम उसमें सहायक तो न बनूँ…"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद बलराम को देखते रह गये। बलराम के चेहरे पर व्यग्रता दिख रही थी। उनकी आँखों में पहले जो चंचलता देखी थी, उसका स्थान आज उदासीनता ने ले लिया था। बलराम ने कहा, "नारद, आप कृष्ण को ढूँढ़ने निकले हैं और इन वर्षों में कृष्ण से मिले बिना भी कई प्रकार से कृष्ण को पा सके हैं। मैं कृष्ण के साथ-साथ बड़ा हुआ हूँ। कृष्ण हमेशा प्रातःकाल पूजा करके मुझे प्रणाम करते हैं, वे जहाँ भी हों वहाँ से मुझे मानस प्रणाम किये बिना दिनचर्या आरम्भ नहीं करते। तो भी हम, नित्यप्रति साथ रहनेवाले कृष्ण को नहीं समझते···धर्म की स्थापना उनका आदर्श है, पर धर्म की स्थापना भोगेगा कौन ? इतनी सारी अक्षौहिणी सेना होम करके ?" बलराम ने विगलित स्वरों में पूछा।

"यदि धर्म की स्थापना होती हो, तो यह बहुत ही तुच्छ कीमत कही जायेगी" नारद ने कहा, "बलराम, आपने शासक के रूप में दुनिया को देखा है, नेता के रूप में सबका सम्मान प्राप्त करते हैं, मैं परिव्राजक के रूप में दुनिया में भटकता हूँ और देख रहा हूँ कि धर्म का ह्रास हो रहा है, संस्कृति का लोप हो रहा है, और ऐसी दुनिया बनी रहे, इसके बदले अच्छा होगा कि वह विनष्ट हो जाय।"

"नारद !" बलराम ने आश्चर्य से नारद की ओर देखा और देखते रह गये, "मुझे बताइये तो कृष्ण आपको कहाँ मिले, कब मिले ?"

"क्यों ?" नारद के आश्चर्य का पार न था, "आप भूल गये कि अभी मेरा कृष्ण से मिलाप होना बाकी है !" बलराम के इस प्रश्न ने नारद को अपार उलझन में डाल दिया था।

"आप तो कृष्ण के ही शब्द बोल रहे हैं, देवर्षि।" जब मैंने कृष्ण से यह बात कही, तब ठीक-ठीक इन्हीं शब्दों में उन्होंने मुझे यही उत्तर दिया था। आपसे यह कृष्ण ने ही कहा है न ? या फिर कृष्ण की शोध में आप कृष्णमय हो गये हैं ?

"इसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है," नारद ने कहा, "पर मैं यही चिन्ता लेकर निकला था। इस दुनिया में धर्म की स्थापना केवल कृष्ण ही कर सकते हैं, यह तय है, और यदि वे ऐसा न कर सकें, तो अधर्म का भले ही क्षय हो, कुरुक्षेत्र का यह खेल भले हो, और भले होम हो जायँ ये अच्छे-बुरे सभी क्षत्रिय कुल···"

दूर से अश्वों की टाप सुन पड़ी। नारद और बलराम दोनों ने उस दिशा की ओर कान लगाये।

"देवर्षि," बलराम ने व्यथित स्वरों में कहा, "अन्ततः जो निर्धारित था, वह आरम्भ हो चुका है।"

"क्या ?"

"कुरुक्षेत्र का युद्ध आरम्भ हो चुका है। अश्व पर मेरा अपना परिचारक सत्यवर्मा आ रहा है। मैंने उसे कुरुक्षेत्र के समाचारों की जानकारी यहाँ मुझ तक पहुँचाते रहने का काम सौंपा है !" बलराम ने कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अश्व पास आ गया। सत्यवर्मा अश्व से नीचे उतरा। उसने पहले देवर्षि नारद को प्रणाम किया, फिर बलराम को प्रणाम करके कहा, "महाराज युद्ध आरम्भ हो चुका है, अर्जुन ने भीष्म के चरणों में पुष्पगुँथा बाण पठ़ाकर प्रणाम किया, भीष्म ने अर्जुन के सिर पर बाण प्रसारित कर आशीर्वाद दिया और फिर मानव-जाति ने इतिहास में पहले कभी नहीं देखा गया ऐसा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया…"

"सत्य !" बलराम ने कहा, "यह तो बड़ा दुखद समाचार है, अन्तिम क्षणों में कोई चमत्कार नहीं हो सका क्या ?"

"हुआ था ! दोनों पक्षों की सेनाएँ स्तब्ध हो गयी थीं। एक क्षण को ऐसा लगा था कि पाण्डव युद्ध से हट जायेंगे।" सत्यवर्मा ने कहा।

"क्या कहते हो सत्य ?" बलराम ने साँस रोककर पूछा। नारद भी कुछ उन्मन बने सत्य की लायी खबरें सुन रहे थे।

"वासुदेव कृष्ण अर्जुन के रथ के और पाण्डवों की सेना के सारथि बने हैं, यह तो आप जानते ही हैं। अर्जुन को दोनों सेनाओं की झाँकी कराने हेतु कृष्ण रथ को सेनाओं के बीच में ले आये। फिर क्या हुआ यह तो पता नहीं, पर गाण्डीवधन्वा ने अपना गाण्डीव उतारकर नीचे रख दिया और आसपास के कुछ लोग सुन सकें इस प्रकार कहा, 'मैं यह युद्धरूपी घोर पाप नहीं करूँगा। "

"फिर क्या हुआ ?" नारद ने पूछा।

"फिर वासुदेव कृष्ण और अर्जुन के बीच लम्बी बातचीत हुई।' वासुदेव ने कहा, 'पार्थ, यह युद्ध तू नहीं लड़ रहा है, धर्म लड़ रहा है। तू तो निमित्त मात्र है।' अर्जुन वासुदेव के शब्दों को अमृत की भाँति पीता रहा।" सत्यवर्मा ने बताया।

एक लम्बी साँस लेकर सत्यवर्मा ने कहा, "भीष्म और द्रोण थोड़ा स्तब्ध होकर, कर्ण और युधिष्ठिर उदास होकर, तथा दुर्योधन और शकुनि उत्साहित होकर यह तमाशा देख रहे थे, और तब वासुदेव ने कहा, 'अर्जुन यह जीव-अजीव समूची सृष्टि का स्रष्टा और संहारक दोनों मैं ही हूँ।' महाराज, बहुत से लोग कहते थे कि वासुदेव भगवान के अवतार हैं, पर पहली बार ही वासुदेव के मुख से यह बात सब लोगों ने सुनी।"

नारद की आँखें भर आयीं। इस युग में एक ऐसा व्यक्ति सदेह चल-फिर रहा है और वे उससे अब तक मिल नहीं पाये हैं।

सत्यवर्मा ने कहा, "भगवान वासुदेव ने गम्भीर आवाज में अर्जुन से कहा, 'अर्जुन, इन सब प्राणियों की आत्मा, मित्र और ईश्वर मैं ही हूँ' उनके ये शब्द जैसे-जैसे कानों-कान फैलते गये, वैसे-वैसे अर्जुन के रथ के आगे बैठे भगवान वासुदेव को सब लोग आदर और नूतन पूज्य भाव से देखने लगे। उन्होंने अर्जुन से कहा, "मैं गतिवालों की गति, वश करनेवालों में काल, गुणों की समस्थिति और गुणवान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पदार्थ में स्वाभाविक गुण मैं ही हूँ... गुणवाले पदार्थों का प्रथम कार्य, वृहद् पदार्थों का महत् तत्त्व, सूक्ष्म पदार्थों का सूक्ष्म जीव और दुर्जेय पदार्थों में मन मैं ही हूँ। वेदों का अभिव्यक्ति स्थान ब्रह्मा मैं हूँ, मन्त्रों में तीन अक्षरोंवाला ॐकार मैं हूँ, सब देवों में इन्द्र मैं हूँ, आदित्यों में विष्णु मैं हूँ' !"

सत्यवर्मा की जिह्वा से अस्खलित वाणी-प्रवाह निःसृत था—बलराम और नारद दोनों व्यक्ति एक चित्त हो उसे सुन रहे थे। सत्यवर्मा जब ये शब्द बोल रहा था, तब कृष्ण का कोई अंश उनमें प्रकट हो रहा है, दोनों को ऐसा अनुभव हो रहा था।

सत्यवर्मा जब कृष्ण के शब्द आगे दुहरा रहा था, "अक्षरों में अकार मैं हूँ, छन्दों में गायत्री मैं हूँ, ब्रह्मर्षियों में मनु मैं हूँ, देवर्षियों में नारद मैं हूँ...।"

"देवर्षियों में नारद मैं हूँ"—ये शब्द सुनते ही नारद चौंक उठे। सत्यवर्मा ने बात बीच में ही रोक दी और नारद को प्रणाम किया। बलराम ने नारद को प्रणाम करके कहा, "मैंने अभी कुछ देर पहले पूछा था न देवर्षि, कि आप कृष्ण से कब मिले थे ? मुझे क्या पता था कि हम कृष्ण से मिलकर भी कोरे ही रहे और आप कृष्ण से मिले बिना ही कृष्णमय बन गये..."

नारद मानो अभी भी स्वप्न में थे। उनकी आँखों के आगे कुरुक्षेत्र का मैदान आ खड़ा हुआ, उसमें धनुर्धारी पार्थ के रथ के अश्वों की लगाम हाथ में लिये कृष्ण की गम्भीर वाणी वातावरण को आपूरित कर रही थी—"देवर्षियों में नारद मैं हूँ..."

वीरता का वरदान

मध्यरात्रि बीत चुकी थी, किन्तु पौ फटने में अभी देर थी। अभी-अभी आकाश में उदित चन्द्र की दृष्टि कुरुक्षेत्र के अपूर्व संहार के दृश्यों की अब अभ्यस्त हो चुकी थी। नित्य असंख्य शव, कराहते शरीर, मशालें लेकर अपने प्रियजनों को ढूँढ़ती पत्नियाँ और माताएँ; यह सब नित्य देखना पड़ता था। किन्तु आज चन्द्र की किरणों-जैसी ही जगमगाती एक अनोखी शय्या पृथ्वी पर रची गयी थी।

अर्जुन के गाण्डीव से छूटे तीरों की चमकदार शय्या पर भीष्म पितामह सोये थे। उनके कान रणक्षेत्र की श्मशानवत् शान्ति को चीरकर आती कराहने की एक ध्वनि सुन रहे थे। किसी का भी हृदय चीर डाले, ऐसा रुदन सुनाई पड़ रहा था।

उनसे कुछ दूर पर सशस्त्र रक्षक पहरा दे रहे थे। उनकी धीमी-धीमी बातें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीष्म के कानों में पड़ती थीं, पर भीष्म इनमें से मानो कुछ भी सुन नहीं रहे थे। दस दिनों तक उन्होंने अपूर्व पराक्रम प्रदर्शित किया था। ज्योंही भीष्म का रथ दिखाई पड़ता बड़े-बड़े महारथी मैदान छोड़कर भाग खड़े होते थे। एक अर्जुन को छोड़, दूसरा कोई भी भीष्म के सामने खड़ा होकर लड़ नहीं सका था और न जाने कितने अज्ञात रथी, सैनिक, सवार मस्तक विहीन हो धरती पर पड़े थे, कौन जानता है कि कितनी स्त्रियाँ विधवा हो चुकी हैं। कितनी माताएँ पुत्रहीन बन चुकी हैं। इस आकाश में मानो असंख्य तारे नहीं, इन सभी स्त्रियों के आँसू सीलन भरी रात में चमक-चमक अपार पीड़ा बरसा रहे हों।

अभी कुछ देर पहले ही सव गये थे, अर्जुन, दुर्योधन, युधिष्ठिर और इस समूची लीला के कर्त्तापुरुष कृष्ण।

पाण्डव द्रौपदी का वरण करके काम्पिल्य से हस्तिनापुर आये तब मानो कृष्ण ने ही एक बार फिर से उन्हें इन्द्रप्रस्थ में बसाया था। युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया, तव शिशुपाल के वाक्-प्रहार स्वस्थता से सुन रहे कृष्ण को वे अभी भूले नहीं थे। राजसभा में शान्तिवार्ता करने आये कृष्ण का भी एक रूप था और अर्जुन के सारथि बनकर युद्ध के पहले दिन रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा किया, तब कृष्ण का एक प्रचण्ड रूप भीष्म ने देखा था।

पर युद्ध के आठवें दिन जब भीष्म के तीक्ष्ण शरों ने पाण्डव-सेना की दुर्दशा कर डाली और ऐसे प्रतापी वीर के विरुद्ध विजय प्राप्त करने की वात कल्पना मात्र है, ऐसा मानकर जव अर्जुन हिम्मत हारकर बैठ गया, तब कृष्ण के चेहरे पर आते हाव-भाव देखकर पितामह को बहुत आनन्द आया था।

इस वयोवृद्ध महारथी के प्रचण्ड पराक्रम ने पाण्डव-सेना को स्तब्ध कर दिया था, अर्जुन के पैरों तले से जमीन खिसक गयी थी।

"पार्थ, आज के भीष्म का रूप भिन्न है, वे आज पाण्डव-सेना को रौंद डालने को तुले बैठे हैं, और तू आज भी मन लगाकर युद्ध नहीं कर रहा है !" कृष्ण ने कहा।

अर्जुन का सिर चकरा गया। भीष्म पर उनके प्राण लेने हेतु शर-वर्षा कैसे की जा सकती है, और मान लो बरसाना ही हो तो आसान है क्या ? भीष्म उस समय सूर्य-से लगते थे। आकाश के किसी भी कोने में हो, पर सूर्य समूचे आकाश को प्रकाश से भर देता है। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र में भीष्म का ताप और प्रताप छाया हुआ था।

अन्त में कृष्ण ने अश्वों की लगाम सहायक सारथि को सौंपी और एक टूटे रथ के पहिये को उठाकर सुदर्शन-चक्र की भाँति हाथ में ले लिया। कृष्ण की आँखों में मानो हुताशन जाग उठा था। उनके होंठ काँप रहे थे। उनके हाथ का चक्र ऐसा चमक रहा था मानो एक साथ शतसहस्र सूर्य प्रकट हुए हों। भीष्म कृष्ण को अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओर बढ़ते देखते रह गये।

इस समय भीष्म ही नहीं, समूचा कुरुक्षेत्र स्तब्ध रह गया था। उन कुछ क्षण। के लिए युद्ध रुक गया, ऐसा लगा जैसे मेरु हिल रहा है। सभी यह हलचल अनुभव कर रहे थे।

जिस कृष्ण ने समूचे युद्ध में निःशस्त्र रहने की प्रतिज्ञा की थी, उन्हीं कृष्ण को हाथ में शस्त्र उठाना पड़े, ऐसा वे सम्भव कर सके, इस बात का स्मरण करके भीष्म इस समय भी मुस्करा दिये।

कृष्ण सुदर्शन चक्र का प्रयोग करें, इसके लिए भीष्म कितने आतुर थे !

कुरुक्षेत्र के धर्मक्षेत्र में कृष्ण के हाथों मृत्यु हो, ऐसा भाग्य कहाँ है ? अर्जुन ने कृष्ण को रोक दिया।

उनके भाग्य में तो उत्तरायण की राह देखते इस बाणशय्या पर पड़े कराहने को लिखा था, वह मिथ्या कैसे होता ?

भीष्म युद्ध से थक गये थे। उनके बाणों से आहट होकर नीचे गिरे मानवों का आर्तनाद और मानवों के स्वजनों का रुदन सारी रात उन्हें एक झपकी भी नहीं लेने देता था। अस्तु जब शिखण्डी लड़ने को आगे आया तो भीष्म ने धनुष नीचे रख दिया। शिखण्डी और अर्जुन के बाण आकर उनके अंगों को बींध रहे थे, उस समय भीष्म एक-एक घाव को जाँच कर एक ओर रखते जा रहे हों, इस प्रकार निर्वेद भाव और शान्त दृष्टि से अर्जुन के सारथि की ओर देख रहे थे।

कृष्ण को देखने से कितनी सान्त्वना मिलती थी। इस कृष्ण ने युद्ध रोकने के लिए कितने प्रयास किये थे ! उस समय स्वयं उन्होंने कोई निर्णयात्मक मार्ग चुना होता, तो इतने सारे आर्यकुल इस प्रकार प्रज्वलित अग्नि में गिरकर भस्मीभूत न हो गये होते।

अंग पर जख्म झेलकर भी शायद वे शान्ति का मार्ग पहचान सकेंगे, भीष्म को ऐसी एक गहरी श्रद्धा थी।

जब विकर्ण भीम के हाथों मारा गया, तब भीष्म ने भीम की आँखों में आँसू देखे थे। "भीम, दुर्योधन का कोई भाई तेरी चपेट में आता है तब तू सिंहनाद करता है, अट्टहास करता है और इस विकर्ण को मारकर तू उदास क्यों हो गया ?" उन्होंने पूछा था।

भीम वास्तव में शोकाकुल हो गया था। उसने कहा था, "पितामह, याद है एक दिन जब कुरुवों की सभा में पांचाली की लज्जा लूटी जा रही थी, तब आप चुप थे, आचार्य चुप थे, बड़े-बड़े पण्डित और ऋषि भी कुछ तय नहीं कर पा रहे थे, उस समय इस विकर्ण ने सत्य का पक्ष लिया था। पितामह मैंने इतने सारे लोगों की हत्या की है, पर जब विकर्ण को मारा तब लगा कि मैं भीम को मार रहा हूँ। इस समय मेरे ही अस्तित्व का एक अंश लुप्त हो गया है, ऐसा लग रहा है। अर्जुन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युद्ध के पहले दिन वान्धव-हत्या की कल्पना से काँप उठा था, पर बन्धु-हत्या की वेदना कितनी तीव्र होती है यह मैंने आज ही अनुभव किया है।"

विकर्ण की मृतदेह पर भीम ने जो रुदन किया था, उसे देखकर सभी स्तब्ध रह गये थे।

"वान्धव-हत्या की वेदना !" भीष्म पितामह गनगना उठे, "अरे भीम, मैं तो पुत्र-हत्या की वेदना अनुभव कर रहा हूँ, गोत्र-हत्या की वेदना अनुभव कर रहा हूँ···।"

पर इस वेदना के छोर पर भीष्म के हृदय में इतनी आशा थी कि सब कुछ शेष हो जाय उससे पहले दुर्योधन को सद्बुद्धि आ जायेगी और वह कुछ बचा सकेगा। वे रथ में से छटककर नीचे गिरे। समूची देह तीरों से छिद गयी थी, तब भी वे आशान्वित थे कि शायद अब संहार रुक जायेगा। प्रतापी और प्रचण्ड भीष्म गिर पड़े; अब दुर्योधन किसके बल पर लड़ेगा ? जिस पर भीष्म विजय नहीं पा सके, उन पर कौन विजय प्राप्त करेगा ?

पर यह आशा भी मृगमरीचिका सिद्ध हुई। दस-दस दिनों के सर्वनाश के बाद भी अभी दुर्योधन की आँख नहीं खुली थी। वह तो यह मानता था कि भीष्म परिवार के प्रेम के कारण, मन लगाकर लड़े ही नहीं, अब कर्ण मैदान में आयेगा और वह अकेला ही समूची पाण्डव-सेना पर भारी पड़ेगा।

भीष्म कुछ ऐसे ही विचारों में डूबे थे, तभी किसी के पैरों की ध्वनि सुनाई दी। ऐसा लगा जैसे रक्षकों ने आनेवाले का आदरपूर्वक वन्दन किया है। अब जब कुछ ही देर में सवेरा होनेवाला है, तब ऐसी वेला में कौन मिलने आया होगा ? जो मिलनेवाले थे, वे सभी तो पहले ही आ चुके हैं !

एक तेजस्वी वीर ने आकर पितामह के चरणस्पर्श किये और नत-मस्तक वहाँ खड़ा रहा।

"कर्ण, कुशल तो है न ?" भीष्म ने पूछा। कर्ण कुछ कहना चाहता था, पर उसका गला भर आया। भीष्म रात के मद्धिम प्रकाश में घूरकर कर्ण का चेहरा देखते रहे और कृष्ण द्वारा कही गयी किसी बात के साथ उसका तालमेल बैठाते रहे।

"पितामह", अन्ततः कर्ण ने कहा, "आज यह शरशय्या देखता हूँ तो मेरा पराक्रमी होने का अभिमान विगलित हो जाता है। मुझे पराक्रम का मन्त्र इस समय समझ में आ रहा है। पराक्रम में दूसरों का संहार करने की, और साथ ही साथ उन्होंने जितनी सही हो उतनी ही वेदना हँसते-हँसते सहन करने की शक्ति होनी चाहिए···"

इसी कर्ण को उन्होंने कितनी ही बार सूतपुत्र कहा था। कर्ण के नीच कुल की याद दिलाने के लिए वे उसे राधेय कहते थे और उनके अपमान के कितने ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कड़वे घूँट इस कर्ण ने पिये थे। भीष्म इसकी कल्पना करने लगे और धक्क रह गयें।

कर्ण भीष्म की स्थिति समझ सकता था। उसने कहा, "पितामह, आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ। विजय तो जिसके भाग्य में लिखी होगी उसे ही मिलेगी, पर वीरत्व में कहीं भी उन्नीस न उतरूँ, इसका आशीर्वाद दीजिए।"

कर्ण की इस माँग ने भीष्म को गद्गद कर दिया, वे बोले उठे, "वत्स, तेरे वीरत्व का जोड़ा समूचे कुरुक्षेत्र में कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा, जब तक तेरे हाथ में शस्त्र रहेगा, तब तक कोई भी तुझे जीत नहीं सकेगा।" भीष्म रुके और फिर बोले, "पर कर्ण, तुझे अभी भी लड़ने का उत्साह है ?"

"एक समय था जब मैं लड़ने को आतुर था, पितामह। पर यह दस-दस दिनों से जो हत्याकाण्ड चल रहा है, इसे अपनी आँखों से देखकर किसे युद्ध करने का मन होगा ? पर एक यज्ञ आरम्भ हुआ है अब इसमें आहुतियाँ पड़नी ही चाहिए। शत्रु की हो या अपनी। इस युद्ध में कालदेवता ने जो आहुति निर्मित की है, उसे रोकनेवाले हम कौन हैं ?" कर्ण ने कहा।

"काल देवता" भीष्म फीकी हँसी हँसे। "कर्ण, सच कहना, इन शब्दों का उच्चारण करते समय तुझे कृष्ण का स्मरण आता है या नहीं ?"

"इस युग में जी रहे हों और कृष्ण के साथ जुड़े न हों ऐसा क्षण ढूँढ़ने की चेष्टा करें, भला ऐसा कैसे चलेगा ?" कर्ण ने कहा, "मुझे ठीक-ठीक याद है, कृष्ण ने राजसभा में दुर्योधन से कहा था, "इस युद्ध में कोई नहीं जीतेगा, केवल काल-देवता जीतेंगे।"

"और फिर भी यह युद्ध जीतने के लिए तू दुर्योधन का साथ देगा ? यदि मुझे आज निर्णय लेना हो तो मैं युद्ध से हट जाना पसन्द करूँगा !" भीष्म ने कहा।

भीष्म शायद किसी गम्भीर बात पर विचार कर रहे थे। उन्होंने कुछ देर रुके रहने के बाद कहा, "कर्ण, मैंने अनेक बार तेरी हँसी उड़ाई है, तेरे पराक्रम को जब मैं मलिन नहीं कर सका, तो तेरे हीन-कुल का आश्रय लेकर मैंने तुझे दुखी किया। पर जब मैंने कृष्ण के मुख से समूची कुल-कथा सुनी..."

यह सुनते ही कर्ण को तीव्र पीड़ा हुई ऐसा लगा। उसने भीष्म को बात के बीच में ही टोक दिया, "पितामह, यह बात आप आज याद न दिलायें।"

"कर्ण, मैं एक याद छोड़ भी दूँ तो इससे क्या होगा ? समूचा आर्यावर्त केवल आज ही नहीं, युगों तक तेरे साथ हुए अन्याय को नहीं भूलेगा। इस हस्तिनापुर का राज, कर्ण, युधिष्ठिर का नहीं है, दुर्योधन का भी नहीं है। इस राज्य का सच्चा वारिस तो तू है।"

"मुझे यह विरासत नहीं चाहिए, पितामह !" कर्ण बोल उठा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"कर्ण, तू पाण्डव है, यह जानने के बाद यदि तू दुर्योधन का पक्ष छोड़ दे, तो इससे धर्म का क्षय नहीं होगा। यदि तू दुर्योधन के पक्ष में नहीं होगा, तो आज इसी क्षण दुर्योधन युद्ध करना छोड़ देगा। फिर तू ज्येष्ठ पाण्डव के रूप में यदि चाहे तो समूची राजसत्ता दुर्योधन को सौंप सकेगा।"

"पितामह," कर्ण ने कहा, "यदि अविनय हो तो क्षमा कर दीजियेगा, किन्तु जिस गांगेय ने पिता के सुख के लिए भीष्म-प्रतिज्ञा की थी और जीवनभर उसका निर्वाह किया, अब उन्हीं के कुल के राजकुमार कितना नीचे उतर गये हैं कि राज्य के लिए या भौतिक सुख के वास्ते मैत्री और धर्म को दाँव पर लगा रहे हैं।"

"मैत्री की बात तो समझ में आती है।" भीष्म ने कहा, "पर दुर्योधन के पक्ष से लड़ने में धर्म कहाँ है ?"

"धर्म ! पितामह, मैत्री से बड़ा कोई धर्म हो सकता है क्या ?" कर्ण ने पूछा, "जब मेरे हीनकुल के उपालम्भ का सब मजा लेते थे, तब मुझ अपमानित कर्ण को जिसने अंगराज बनाकर सम्मानित किया, उस व्यक्ति की मनुष्यता की जितनी तारीफ करूँ कम है।" कर्ण एक क्षण रुका, फिर कहा, "ऐसे मित्र के लिए लड़ना धर्म न कहा जाय तो फिर किसे धर्म कहेंगे ?"

"पर कर्ण, मैं तो तुझे राजगद्दी प्राप्त करके दुर्योधन को सौंप देने का मार्ग बता रहा हूँ। दुर्योधन बिना लड़े जो चाहे प्राप्त कर सकता है, ऐसी योजना से तू सहमत क्यों नहीं है ?" भीष्म ने पूछा।

"जिस क्षण मैं अपने आप को पाण्डव घोषित करूँगा और सामने के पक्ष में जाऊँगा, उसी क्षण मैं अपने आप को, दुर्योधन और मनुष्यता तीनों को हार जाऊँगा। चलिये मान लें कि मैं ज्येष्ठ पाण्डव के रूप में हस्तिनापुर का राज्य दुर्योधन को दे भी दूँ तो क्या वह स्वीकार करेगा ? हक से न मिले ऐसा कुछ भी दुर्योधन को स्वीकार नहीं होगा !" कर्ण ने कहा।

"ठीक है, तू अब कुरुक्षेत्र के मैदान में लहू के प्यासे शस्त्रों के बीच वीरता का नया इतिहास रच।" भीष्म ने कहा।

"आपका आशीर्वाद पाकर मैं कृतार्थ हुआ।" कर्ण ने कहा, "पर अब मुझे केवल एक ही दुःख है।"

"वह क्या है ?" भीष्म ने विस्मय से पूछा।

"मैं यदि महापराक्रम करूँगा तो इतिहास पृथा के पुत्र के रूप में मेरे पराक्रम का यश गान करेगा और यदि लांछन आवे ऐसा कोई काम करूँगा तो सूतपुत्र के रूप में—मेरे पालन-पोषण की निन्दा होगी !" कर्ण ने भारी व्यथा के साथ कहा, "जबकि सच बात तो यह है कि मेरे पराक्रम का सारा श्रेय सूतपुत्र के रूप में मेरे लालन-पालन का परिणाम है...।"

कर्ण आगे न बोल सका। उसने भीष्म को प्रणाम किया और कहा, "पितामह,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्य के आगमन से पहले की लालिमा आकाश पर छा चुकी है। कुरुक्षेत्र के रक्तवर्ण मैदान-जैसा ही यह आकाश मुझे कर्तव्य-पथ की ओर प्रेरित कर रहा है। मुझे बिदा दें, पितामह। राधेय कर्ण को अपने आशीर्वाद प्रदान करें।"

"कर्ण, तेरे पराक्रम की गाथा इतिहास में निष्कलंक रहेगी।" भीष्म ने कहा और अपार वेदना सहते हुए भी सिर घुमाकर कर्ण को जाते देखते रहे।

दृष्टि से दूर जाता कर्ण छोटा होने के बदले विशालकाय बनता जा रहा था। एक चिनगारी मानो चमकता सूर्य बनती जा रही थी।

कृष्ण की आवाज

दुःशला की आँखें रो-रोकर सूज गयी थीं। उसके चेहरे पर रातों-रात समय का हल चल गया था। उसके आकर्षक मुखड़े पर भद्दी झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। आँखों से टपकते आँसू, क्रोध से लाल भभूका बन गये होठों पर गिरकर जलते मरुस्थल में गिरी बूँद की भाँति भाप बनकर उड़े जा रहे थे।

उसे देखते ही दुर्योधन की आँखें नम हो गयीं। सौ भाइयों की यह एक मात्र लाडली बहन—और सबने कितने लाड़-प्यार से उसे बड़ा किया था। इस बहन के ब्याह के समय स्वयं उसने कितने उत्साह से वस्त्र-आभूषण भेंट किये थे। आज उसके ललाट पर वैधव्य का वीरानगी छा गयी थी। उसकी देह पर एक भी सिंगार नहीं दिखता था।

"भाई, तू तो कहता था कि कर्ण मेरा बदला चुकायेगा !" दुःशला ने कहा, "मेरे पति की हत्या करनेवाले को कर्ण मारेगा ! कहाँ है कर्ण ?"

दुर्योधन का सिर लज्जा से झुक गया था। "कहाँ है कर्ण" दुःशला का यह प्रश्न उसके मन के हर कोने को छू आया। फिर शिविर और उसके बाद समूचे कुरुक्षेत्र पर छा गया, पर कहीं से उत्तर न मिला।

"बहन", दुर्योधन ने यथासम्भव साहस बटोरकर कहा, "तू धैर्य रख, एक कर्ण नहीं है तो क्या, तेरा प्रतिशोध लेने अभी अनेक वीर वर्तमान हैं—शल्य हैं, अश्वत्थामा हैं, कृपाचार्य हैं, कृतवर्मा हैं, मैं हूँ !…"

"सौ भाइयों के बीच मैं अकेली बहन हूँ, लेकिन एक भी मेरे सौभाग्य की रक्षा न कर सका…" दुःशला का गला भर आया। दुर्योधन ने इतनी जोर से होंठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काटे कि लहू चुह-चुहा आया।

दुःशला इस समय विकराल लग रही थी। एक समय था जव वह बन-ठन कर निकलती तो उसके अंग-अंग से लावण्य के झरने झरते थे और सब लोग उसे देखने के लिए बड़ी आतुरता से आँख लगाये बैठे रहते थे। वही दुःशला आज खण्डहर जैसी जीर्ण और हवा की तरह विखर गयी लगती थी। वह वोली--

"भाई, तू ही तो गरजता था कि कर्ण मैदान में उतरते ही जयद्रथ का वध करनेवाले अर्जुन का मस्तक उतारकर, मेरे चरणों में धर देगा। कहाँ है अर्जुन का मस्तक ? कहाँ है कर्ण ?"

दुःशला मानो पागल हो गयी थी। इस अन्तिम प्रश्न से दुर्योधन अकुला गया। उसने कहा, "वहन, तुझे अपने सौभाग्य के लिए एक ही व्यक्ति से बदला लेना है, मुझे व्यतीत हुए इन सत्रह दिनों में कितने ही लोगों से जाने कितने हिसाब चुकाने हैं, इसका मुझे कुछ खयाल आता है। इस रणक्षेत्र से यदि हस्तिनापुर वापस लौटूँगा तो स्वागत करने हेतु कलश लिये सौभाग्यवती स्त्रियाँ ढूँढ़ना मुश्किल होगा। मेरे निन्यानवे भाइयों की विधवाओं के आँसुओं का खारापन सारे वातावरण में व्याप्त है।" दुर्योधन ने निःश्वास छोड़ा और फिर कहा, "दुःशला, तेरी वेदना मैं समझ सकता हूँ। जयद्रथ का वध करनेवाला अर्जुन और यह दुर्योधन कल की शाम एक साथ जीवित नहीं रहेंगे। इससे ज़्यादा तो मैं तुझसे क्या कह सकता हूँ ? कल शाम जीता रहूँ तो इस शिविर में आ जाना, अर्जुन का मस्तक तुझे दूँगा।"

दुर्योधन की आवाज ऐसी थी जैसे टूट रहे पर्वत पर की शिलाएँ लुढ़ककर चूर-चूर होती जा रही हों। दुःशला व्यथित आँखों से दुर्योधन का मुख देखती रही। दुर्योधन जैसे अपने आप से वात कर रहा हो इस प्रकार धीमे से बोला—

"और दुःशला, कल शाम मैं जीता न बचूँ तो भानुमति को सान्त्वना दे देना। तेरा वैधव्य चार दिन पुराना हो चुका होगा, उसका ताजा होगा..."

दुःशला ये शब्द सुनकर छनछना गयी। वह खड़ी हुई और फिर बाहर जाने लगी। दुर्योधन का उसकी ओर ध्यान ही नहीं था। वह तो शिविर की छत की ओर देख रहा था और युद्ध के सत्रहवें दिन की इस शाम के बारे में विचार कर रहा था।

उसने आज की शाम किसी और ही ढंग से बिताने को सोचा था। प्रातःकाल जब शल्य जैसे सारथि से शोभित रथ पर बैठे सेनापति कर्ण को दुर्योधन ने आगे जाने दिया तब शाम की एक और ही छवि दुर्योधन के मन में अंकित हुई थी।

पर स्वप्न बिखर जाने की यह कोई पहली घटना तो नहीं थी !

भीष्म गिरे, जयद्रथ मारा गया, धृष्टद्युम्न ने जैसे वृक्ष से फल उतार लेते हैं, इस प्रकार द्रोणाचार्य का मस्तक उतार लिया था। दुःशासन के बायें हाथ को शरीर पर से तोड़ उसकी देह से छूटे रक्त के फुहारे की भीम ने अंजली ली थी। उसके पुत्र मारे गये, भाई मारे गये...

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त में जिस पर दुर्योधन का सारा दारोमदार था, वह स्तम्भ भी जैसे जल के प्रवाह में कच्ची मिट्टी का घड़ा बिखर जाता है, उसी प्रकार कुरुक्षेत्र के प्रवाह में विलीन हो गया। उसने सोचा था कर्ण अर्जुन का वध करेगा और कर्ण युधिष्ठिर को जीता पकड़कर लायेगा।

दुर्योधन को एक बात समझ में नहीं आती थी—भीष्म, द्रोण और कर्ण तीनों ही विपक्ष के प्रबल प्रलोभन के बावजूद उसके पक्ष से लड़े थे। तीनों ने ही अपूर्व पराक्रम दिखाया था। तथापि इन तीनों ने मानो स्वेच्छा से मृत्यु का वरण कर लिया था।

भीष्म ने शिखण्डी का बहाना बना शस्त्र त्याग दिये। वे अच्छी तरह जानते थे कि उन्हें बींधनेवाले बाण तो अर्जुन के ही हैं, शिखण्डी के नहीं। द्रोणाचार्य भी जब पाण्डव-सेना में जबरदस्त खलबली मची थी ठीक उसी समय मानो यज्ञ में अपने आप को होम कर देने को बैठे हों, इस प्रकार शस्त्र त्याग करके बैठ गये। मान भी लें कि अश्वत्थामा मारा गया, तो भी उसका बदला चुकाने के लिए और प्रबल बनकर लड़ना चाहिए था, इसके बदले उन्होंने अपने प्राण शत्रु-पुत्र धृष्टद्युम्न को सौंप दिये। और कर्ण ! आखिर रथ क्यों नहीं बदल लिया ? उसमें क्या बिगड़ जाता ? अर्जुन की अनवरत बाण-वर्षा का जवाब देने के बदले वह रथ का पहिया निकालने के वहाने जैसे पुष्प-वर्षा में नहा रहा हो इस प्रकार खड़ा रहा—हाँ, प्राण निकल गये तव तक अडिग खड़ा रहा।

इन तीनों योद्धाओं ने निर्णायक क्षण में यदि शस्त्र उठा लिये होते तो परिस्थिति भिन्न होती, पर इन तीनों सेनापतियों ने तो आगे बढ़कर कुरुक्षेत्र के यज्ञ में अपने आपकी आहुति दे दी !

दुर्योधन सोच रहा था, 'कहीं मेरे पक्ष में रहने के प्रायश्चित्त-स्वरूप तो इन तीनों ने ऐसा नहीं किया ?'

बाहर किसी की पगचाप सुनाई दी। सन्तरी ने आदरपूर्वक उन्हें अन्दर आने दिया। कृपाचार्य, अश्वत्थामा और शकुनि अन्दर आये।

"आएये मामाजी", दुर्योधन ने कहा, "अब किस तरह पासे फेंकेंगे !"

"दुर्योधन, यह द्यूत-सभा नहीं है, यह तो कुरुक्षेत्र है।" कृपाचार्य ने कहा, "यहाँ पासा फेंककर 'लो मैं जीता' कहने की स्थिति नहीं है। यहाँ तो जो शीश हथेली पर रख सके वही 'लो मैं जीता' कह सकता है।"

"कृप" शकुनि ने कहा, "इस समय मुझे द्यूत-सभा की याद न दिलाएँ। पर कल के युद्ध में देखना, जिस सरलता से मैंने हाथ के पासे फेंके थे, उसी आसानी से अपना मस्तक उतारकर फेंक देता हूँ या नहीं।"

"कितने लोग सिर उतारेंगे ? और किसलिए ?" कृपाचार्य ने कहा। "दुर्योधन, अब तो कर्ण भी गया। अब किसलिए लड़ना है ? युधिष्ठिर को बुलाओ और सन्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की शर्तें रखो। पाण्डव भी हमारे समान ही थक चुके हैं। वे भी सन्धि करने को तैयार हो जाएँगे। तुम्हारा अगणित सैन्य इस रणक्षेत्र में विशाल महासागर की भाँति नजर जहाँ तक जा सके वहाँ तक फैला हुआ था। आज उसमें से कोई नहीं वचा है। पाण्डवों ने तो मानो हिमालय खोद डाला है। अभी भी समय है। कृष्ण और युधिष्ठिर के पास जायेंगे तो सन्धि करना सम्भव हो सकेगा···। अश्वत्थामा, तुम क्या कहते हो ?"

"मामा," अश्वत्थामा ने कृपाचार्य से कहा, "अपने पिता की मृत्यु पर बहे आँसुओं में भीगे शब्दों में मैंने महाराज दुर्योधन से सन्धि कर लेने की विनती की थी।"

दुर्योधन सुलह की कल्पना करने लगा। सम्भव था कि वह शल्य को सुलह का सन्देश लेकर भेजता। पर जिस दुर्योधन ने कृष्ण के शान्ति-प्रयासों को धूल में मिला दिया था, उसके शान्ति-सन्देश को कौन सुनेगा ? सात-सात वीरों की सहायता से उसने वालक अभिमन्यु को रौंद दिया था, यह बात पाण्डव कभी भी भूल सकेंगे क्या ?

दुर्योधन ने अपेक्षा सहित ताक रहे कृपाचार्य और अश्वत्थामा की ओर देखा और कहा, "आचार्य और गुरुपुत्र आपके शब्द शान्ति की सम्भावनाओं को कुछ निकट लाते हैं, पर वह कौन-सी शान्ति है ? युद्ध में भीष्म, द्रोण और कर्ण के खप जाने के बाद सुलह करने का प्रयत्न करें तो वह तो जान वचाने की चेष्टा ही कहलायेगी ! मैंने अपने ही पुरुषार्थ के बल पर यह साम्राज्य प्राप्त किया था। मेरे साम्राज्य की रक्षा के लिए इतने सारे वीरों ने अपने प्राण अर्पित किये। शायद मैं ही गलत था, तो भी मुझे अब अपने प्राण नहीं बचाने हैं। अव पाण्डवों के साथ सुलह करना मृग-मरीचिका से अधिक कुछ नहीं है। डूबना ही है तो क्यों न वहते प्रवाह में डुबकी मारें ! मृगजल में सिर पछाड़कर क्या करूँगा ?"

दुर्योधन एक क्षण रुका। अपने शब्दों का अपने साथियों पर क्या असर होता है यह देखने का प्रयत्न किया और फिर कहा, "तथापि प्रातः इतनी घोषणा अवश्य करवा दीजिएगा कि जिसे सामने के पक्ष में जाना हो जा सकता है।"

"शाबाश दुर्योधन, तुझे किसी मूल्य पर सत्ता नहीं चाहिए, यह जानकर मैं और अश्वत्थामा दोनों ही प्रसन्न हुए। हम तो तुम्हारे पक्ष में ही रहेंगे या मरेंगे। शकुनि मामा, कहीं आपको तो पाण्डवों की मदद करने नहीं जाना है ?"

गान्धारराज की आँखें लाल हो गयीं, उसने कहा, "कृपाचार्य, आपके इस तीखे ताने का उत्तर मैं कल रणक्षेत्र में दूँगा।"

"हम यहाँ एक दूसरे पर वाक्-बाण चलाते रहेंगे या कल लड़ने के लिए शक्ति संग्रह करेंगे ?" दुर्योधन ने पूछा, "अश्वत्थामा अब तो कर्ण गया, हमारे अठारहवे दिन का सेनापति कौन होगा ?"

"अपने भांजों का स्नेह त्याग कर जो हमारे पक्ष से लड़ रहा है और आपके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वचन के खातिर जिसने कर्ण का सारथि पद सँभाला है उस शल्य के सिवा दूसरा कौन हो सकता है ?" अश्वत्थामा ने कहा।

दुर्योधन ने तत्काल शल्य को बुला भेजा।

दुर्योधन के शिविर में जलती मशालों की रोशनी में शल्य का मुख भी निष्प्रभ दिख रहा था। सत्रह दिन बीत गये थे, पर इनमें सत्रह युग बीत गये हों, ऐसा लगता था।

"महाराज शल्य", दुर्योधन ने आदरपूर्वक कहा, "युद्ध के अठारहवें दिन आप कौरवों के सेनापति का पद सँभालें, यह हमारी प्रार्थना है।"

शल्य मुस्कराया और कहा, "महाराज, अब जिसका नेतृत्व करना है ! ऐसी सेना बची है क्या ?"

"जो कुछ बचा है उसे हम सेना ही कहेंगे, महाराज, और हमारी शूरता तो है ही। कल हम वास्तविक युद्ध लड़ेंगे।" अश्वत्थामा ने कहा।

"मुझमें अब युद्ध करने का कोई उत्साह नहीं बचा है।" शल्य ने कहा। "मैंने अपने हाथों अपने सगे-सम्बन्धियों को बींध डाला हैं। मेरी आँखों के आगे मेरे प्यारे पुत्रों के प्राण हरण किये गये हैं। रुक्मरथ और रुक्मांगद दोनों को मैंने कितने प्यार से बड़ा किया था। मेरी आँखों के आगे वे छलनी हो गये। इतने सारे राजा अपनी सेना के साथ काम आ गये। अब हार की व्यथा नहीं रही है, जीतने का उत्साह भी नहीं रहा…"

"महाराज शल्य," दुर्योधन ने कहा। उसकी आवाज रुँध गयी थी। उसने खँखार के गला साफ किया और कहा, "आपको लगता है कि मुझमें अभी भी किसी जीत का उत्साह बचा है ? विजय नहीं होगी इसके लक्षण स्पष्ट हैं, फिर भी मान लें कि मैं जीत गया तो मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं संन्यासी होकर चला जाऊँगा, हस्तिनापुर जाकर राजगद्दी का सुख नहीं भोगूँगा। पर यह युद्ध तो पूरा लड़ना ही होगा। हमारे पुत्र, हमारे बन्धु-बान्धव, हमारे गुरुजन सभी इस युद्ध में होम हो चुके हैं। अतः अब युद्ध से भागना प्राण बचाने की कायरता ही कही जायेगी।"

"नुकसान तो पाण्डव-पक्ष का भी कम नहीं हुआ है। उनकी सेना तो करीब-करीब नष्ट हो चुकी है। उनके पुत्र मारे गये हैं, उनके स्नेही भी मर चुके हैं…" कृपाचार्य ने कहा।

"पर पाण्डव पक्ष में अभी कृष्ण हैं।" शल्य ने कहा, "और हमारे पक्ष में कृष्ण द्वारा प्रदत्त वह एक अक्षौहिणी सेना कहाँ है ? एक ओर कृष्ण हों और दूसरी ओर इस युद्ध में लड़ने आयी अठारह अक्षौहिणी सेना हो, तो भी मुझे लगता है कि कृष्ण का पक्ष ही जीतेगा।"

कृष्ण का नाम सुनते ही दुर्योधन को शान्तिवार्ता के लिए आये कृष्ण का विराट रूप याद आया।

कृष्ण सभा में न समा सकें इतने विशाल बन गये थे और फिर युद्ध से पहले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के बीच लाकर सारथि के आसन से उतरकर अर्जुन से कुछ बातें कर रहे थे, उस समय भी कृष्ण की देह आकाश को छू रही हो ऐसा दुर्योधन को प्रतीत हुआ या और कृष्ण के उस विराट मुख में उसने देखा था कि रणक्षेत्र में खड़ी समूची सेना सागर में जिस प्रकार नदी का प्रवाह समा जाता है उसी प्रकार विलीन होती जा रही है। यह पल भर की भ्रान्ति थी कि कुछ और था ?

दुर्योधन उलझन में पड़ गया, और वह अन्ततः बोल उठा, "शल्य, आपकी बात सच है, हमारे पक्ष में कृष्ण नहीं हैं।"

कृपाचार्य, अश्वत्थामा और शकुनि दुर्योधन की इस दयनीय स्थिति को देखते रह गये।

"मामा, आप द्यूत-सभा में पासे खड़खड़ाते थे तब उनमें भीम का अट्टहास था, भीष्म की व्यथा थी, अर्जुन का क्रोध था। और धर्मराज की शान्ति भी, ये पासे फेंके जाते थे तब दिखती थीं। उसमें कहीं भी कृष्ण की कोई आवाज नहीं थी···" दुर्योधन ने शकुनि से कहा।

"दुर्योधन, होश में आओ··स्वस्थ बनो।"

"मामा, मैं आज जितना स्वस्थ तो पहले कभी नहीं था। उस समय यदि आपके पासों की खड़खड़ाहट में नहीं थे तब कृष्ण कहाँ थे ? यही मैं ढूँढ़ रहा हूँ। हाँ, कृष्ण पांचाली के खिंच रहे चीर की फड़फड़ाहट में थे··सुनाई दे रही है आपको उस खींचे जा रहे पल्लू की फड़फड़ाहट ? उसमें द्रौपदी की चीख और कृष्ण का आश्वासन दोनों साथ-साथ सुनाई दे रहे हैं···।"

"आखिर तुम्हें कृष्ण की आवाज सुनाई तो दी।" शल्य ने कहा, "दुर्योधन, अब युद्ध में कोई भी जीते, तू नहीं हारेगा।"

···तो बालक जी उठे

"अरे, महात्मन, तनिक रुक जायें।" उतावले कदमों से चले जा रहे नारद, इन शब्दों को सुनकर चौंके। वे रुके, रास्ते में एक वृक्ष की छाया में थककर बैठ गयी वृद्धा उन्हें बुला रही थी। उस वृद्धा के पार्श्व में लगभग तीन बरस का एक लड़का धूल में औंधा पड़ा था।

"क्या है माताजी ?" नारद ने वृद्धा के पास जाकर पूछा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"महाराज, असित पर्वत की तलहटी का रास्ता यहाँ से कितनी दूर है ?" वृद्धा ने कहा।

"माता, यहाँ से एकदम पास है, थोड़ा चलेंगी कि आ जायेगा।"

बालक अचानक रोने लगा और बोल उठा, "नहीं, अब तो मैं नहीं ही चल सकूँगा। माँ को यहीं बुलाओ, बापू को यही लाओ···"

नारद ने बालक की ओर देखा। उसके पैर में छाले पड़ गये थे। लगता था कि पिछले कुछ दिनों में उसका चेहरा केवल आँसुओं से धुला था। उसके वस्त्र मैले और जीर्ण थे। इतनी कम उम्र में मानो वह किसी भीषण विपत्ति से होकर गुजरा हो, ऐसा यह चेहरा देखकर नारद का हृदय द्रवित हो उठा।

नारद को अपने आप में मगन देखकर बालक ने अपना रोना बन्द किया और आशा भरी आँखों से नारद की ओर देखने लगा।

"क्या बहुत थक गये हो ?" नारद ने पूछा।

"हाँ"—बालक ने अपनी तोतली बोली में उत्तर दिया, "दादी भी थक गयी है।"

नारद ने पुनः वृद्धा की ओर देखा। उसके चेहरे पर उम्र के कारण झुर्रियाँ पड़ गयी थीं, पर चिन्ता ने उन झुर्रियों को और गहरी और थकान ने उसकी आँखों को छोटी बना दिया था। वृद्धा के पैर भी अधिक चलने के कारण सूजकर लाल हो गये थे। "बहुत दूर से आ रही हैं, माताजी ?" नारद ने पूछा।

"हाँ", वृद्धा ने कहा, "छह दिन हुए घर से निकली हूँ। अब तो यह थोड़ी-सी दूरी भी कैसे पार होगी, यह समझ में नहीं आता"।

वृद्धा ने आँख में उमड़ते आँसू बड़ी चेष्टा करके रोके और कहा, "मेरे छह बेटे कुरुक्षेत्र के युद्ध में गये हैं। कहते हैं उस युद्ध में कोई भी नहीं बचा है। कुछ दिन पूर्व हमें किसी ने सन्देश दिया कि इस बालक का—प्रसेन का— पिता घायल हो गया है और असित पर्वत की तलहटी में कक्षसेन ऋषि द्वारा घायलों की परिचर्या के लिए स्थापित छावनी में वह भरती है।"

"आपने मेरे बापू को देखा है ?" बालक प्रसेन ने नारद से पूछा।

नारद आर्द्रभाव से बालक को देखते रहे।

एक गहरी साँस लेकर वृद्धा ने बात आगे बढ़ायी, "यह सुनते ही प्रसेन की माँ तो बावली बनकर दौड़ पड़ी। उसे रोकता कौन ? उसे ढूँढ़ने कौन जाता ? गाँव के सभी युवक तो लड़ाई में गये थे। रह गयी थीं केवल स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े। यह बालक अपनी माँ के लिए बिलखता रहता है, इसी से मैं इसे लेकर निकली हूँ। अब तो जल्दी से घायल सैनिकों की छावनी तक पहुँच जाऊँ, तो अच्छा हो। सम्भव है इसकी माँ वहीं हो।"

"अब बहुत दूर नहीं है।" नारद ने पुनः कहा।

इस अनजान पुरुष को अपने साथ बात करते देखकर बालक को जैसे हिम्मत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो आयी। उसने कहा, "मुझे गोदी लेंगे ?"

नारद ने सहजभाव से हाथ बढ़ाया। बालक आगे बढ़ा।

"अरे प्रसेन, तेरे बदन पर कितनी धूल लगी है, तू महात्मा के शरीर को धूल-धूसरित कर देगा।" दादी ने उसे रोका। बालक थोड़ा क्षुब्ध हो गया। पर नारद ने हाथ बढ़ाकर उसे गोद में ले लिया। एक हाथ में वीणा और दूसरे हाथ में बालक...

"चलिये माताजी, मैं भी आपके साथ असित पर्वत की तलहटी तक ही जा रहा हूँ।" नारद ने कहा।

"आपका बड़ा उपकार।" वृद्धा ने कहा।

नारद धीरे-धीरे आगे चलने लगे। एक बार फिर जानबूझकर उन्होंने कृष्ण का रास्ता त्याग कर, जहाँ कृष्ण नहीं थे, उस मार्ग पर कदम बढ़ाये।

विगत कई दिनों से नारद की खिन्नता हद ढाँक चुकी थी। जो कुछ हो रहा था, वह अकल्पनीय रूप से भयंकर था। इस पृथ्वीलोक के मनुष्यों और उनके उद्धार हेतु चेष्टा कर रहे, कृष्ण के बारे में रही-सही श्रद्धा भी इन समाचारों से विचलित हो चुकी थी।

जब सत्यवर्मा ने खबर दी कि भीष्म के विरुद्ध कृष्ण ने सुदर्शन-चक्र उठाया है, तब नारद ने अपने समूचे जीवन में जो इमारत बनायी थी, वह चरमराकर भहरा गयी।

वृन्दावन में नन्द की आँखों में, यशोदा के हृदय में और राधा की उन्मनता में देखी छवि उन्हें याद आयी। इस बात को कितने वर्ष बीत गये। कृष्ण की यह छवि कहीं देखने को नहीं मिलती। वे कृष्ण को ढूँढ़ने निकले थे, पर किस कृष्ण को ? कृष्ण की कितनी छवियाँ बदल चुकी हैं। कंस और शिशुपाल का वध करनेवाला कृष्ण, समूची यादव प्रजा को मथुरा से द्वारका तक ले जानेवाले कृष्ण, कौरवों की विराट सभा में सन्धिवार्ता करने गये कृष्ण और अब इस भयानक संहार को देख रहे कृष्ण !

कृष्ण के लिए नारद ने कितनी आशाएँ सँजोयी थीं। कृष्ण ने बहुत से चमत्कार किये थे। पर नारद जिस चमत्कार की अपेक्षा कर रहे थे, वह अब तक कहीं दिखाई नहीं पड़ा था। कृष्ण इस जगत् में आये, और यह जगत् अभी भी नहीं बदला !

कृष्ण थे, तब ब्रज कुछ बदला लगता था। पर मथुरा, द्वारका या हस्तिनापुर या अन्यत्र कहीं भी नारद को कृष्ण का स्थायी प्रभाव देखने को नहीं मिला था।

लोग कृष्ण से डरते थे। कृष्ण से प्रेम करनेवाले भाग्यवश एकाध ही कोई थे। शायद वे कृष्ण को इस परिस्थिति की जानकारी दे सके होते।

पर अब क्या ?

इस समय नारद कृष्ण से मिलने का एक और प्रयत्न करनेवाले थे। कुरुक्षेत्र का युद्ध चल रहा था! उस अवधि में बलराम ने नारद को रोक रखा था, पर युद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सत्रहवें दिन कर्ण का निधन हुआ है, यह जब ज्ञात हुआ तब उस शाम बलराम अधिक व्याकुल हो उठे। वे रातोंरात रथ जुतवाकर चल दिये। प्रातः नारद को पता चला कि बलराम रात में ही चले गये, पर कहाँ गये, इस बारे में किसी को बता कर नहीं गये।

नारद भी उसी दिन सुबह चल पड़े। पैदल कुरुक्षेत्र का मार्ग नापते कई दिन बीत गये। बहुत लम्बा था मार्ग। अब कुरुक्षेत्र में क्या बचा होगा, इसकी भी नारद को विकलता थी। कौन जीता होगा ? कृष्ण जिसके पक्ष में हों, वही जीतेगा, पर इस जीत को जीत कहेंगे क्या ?

फिर कृष्ण से मिलने का शायद जीवन में यह अन्तिम मौका हो। अब तो नारद की उम्र भी बीत रही थी। बहुत दौड़-धूप करना सम्भव नहीं हो पा रहा था। कुरुक्षेत्र के इस अपार संहार से हृदय में उपजी व्यथा का कृष्ण शमन कर सकेंगे या कि यह कृष्ण उनके द्वारा कल्पित विभूति हैं ही नहीं !

और इस प्रकार कुरुक्षेत्र की राह पर चलते हुए नारद इस प्रदेश में संहारलीला द्वारा विरचित शून्यता देख पा रहे थे। अब यह वृद्धा और बालक, इस संहार द्वारा मानव की छिन गयी श्रद्धा के मूर्तिमन्त स्वरूप लग रहे थे।

कुरुक्षेत्र में लाखों लोगों का संहार हुआ है—और यह वृद्धा पुत्र को ढूँढ़ने निकली है। यह छोटा-सा बालक अपनी माँ को ढूँढ़ने निकला है। नारद के मन में यह भयंकर विचार कौंध गया। इसके साथ वृद्धा चल रही थी, उसके हाथ में तीन वर्ष का त्रस्त और थका हुआ बालक था।

आदमी के पास आज झुककर चलता भूतकाल और त्रस्त तथा थका हुआ भविष्य है। आदमी ने अपने वर्तमान को रौंद डाला है।

वर्तमान रौंद दिया गया, और वह भी नारद इतने बरसों तक जिसका नाम रटते रहे, जिससे मिलने की चेष्टा करते रहे, कृष्ण की नजरों के सामने।

नारद का रोआँ-रोआँ चीख उठा, "कृष्ण ने यह घोर पातक होने दिया तो वही महापापी है…"

असित पर्वत की तलहटी में एक विराट रुग्णालय था।

कक्षसेन ऋषि के एक शिष्य ने नारद को देखते ही पहचान लिया, उसने दौड़ कर ऋषि को सूचना दी।

ऋषि आये।

"आइए देवर्षि, आज आपको आश्रम में निमन्त्रित करने का उत्साह नहीं रहा है।"

"महर्षि, आपने इतने घायलों की परिचर्या का भार उठाया है, आप धन्य हैं। यह राक्षसी नाटक पूर्ण हो गया, इसमें यदि कहीं देवत्व देखने को मिला, तो केवल इस स्थल पर…।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद उस वृद्धा और बालक को कक्षसेन के एक शिष्य को सहेज रहे थे तभी एक पागल नारी का अट्टहास गूँज उठा।

नारद ने सभय उस दिशा में देखा।

वृद्धा बोल उठी, "यही मेरे बेटे की बहू है।"

उस स्त्री की आँख में आँसू छलक आयें, इस हद तक वह हँस रही थी··· "वे तो इस समय स्वर्ग में अप्सराओं के आतिथ्य का सुख भोग रहे हैं···"

बालक तो डरकर दादी से चिपक गया।

वृद्धा को बोलने का होश ही नहीं था।

"जीतेगा तो विजय और मृत्यु होगी तो स्वर्ग। मेरे इस क्षत्रिय कंथ पर भगवान उदार बन गये। उन्हें स्वर्ग मिल गया।" वह स्त्री बोले जा रही थीं।

अपनी माँ को इस प्रकार होश-हवास खोकर और भयकारी ढंग से बोलते देखकर उस तीन वर्षीय बालक के हृदय में हृदस हो आयी। फिर भी न जाने किस श्रद्धा के बल पर वह अपनी दादी की गोद से निकलकर आगे आया और डरते-डरते बोला, "माँ !"

और वह पागल स्त्री जैसे किसी अनजाने चेहरे को देखती हो, इस प्रकार ताकती रही, फिर पत्थर को पिघला दे, ऐसा करुण क्रन्दन करने लगी।

कक्षसेन ऋषि के शिष्य ने नारद को एक ओर ले जाकर कहा, "इस स्त्री का पति कल ही मर गया। इसके चार देवर भी मर गये। एक देवर के तो दोनों पैर कट गये थे।"

नारद उदास हो गये। शिष्यगण वृद्धा, बालक और उसकी माँ को समझाकर एक शिविर में ले गये और कक्षसेन ऋषि घायल लोगों की कतारों के बीच से होकर आश्रम की ओर बढ़े।

घायलों की संख्या गिनी नहीं जा सकती थी। उनकी कराहें नारद के रोम-रोम पर चिनगारियों की तरह बरसकर जल रही थीं। इतना खून नारद ने कभी नहीं देखा था।

"नारद, कुरुक्षेत्र में जो संहार हुआ है, उसका तो यह सौ-हजारवाँ भाग भी नहीं है। ऐसी तो कितनी ही छावनियाँ हैं। इनमें मरणासन्न जीवित अपंग मानवों की एक समूची पीढ़ी साँसों को ढो रही है···"

किसी का हाथ तो किसी का पैर कट गया था। किसी के समूचे शरीर पर घाव लगे थे। नारद की दृष्टि अचानक ही एक व्यक्ति पर पड़ी। उसे देखते ही नारद चौंक पड़े।

"कौन उद्धव ?" वे बोल उठे।

"हाँ देवर्षि, उद्धव ने तो यही काम अपना लिया है।"

नारद नजदीक आये। एक मसभीना जवान अपनी अन्तिम साँसें ले रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्धव उसके सिर को हाथों से सहला रहा था, "बोल भाई, श्रीकृष्णः शरणं मम" ये शब्द उस मरते हुए युवक को अपूर्व शान्ति प्रदान कर रहे थे, ऐसा लगा। उसने स्वस्थता से आँखें मींच लीं।

उद्धव ने उसके मुख पर श्वेत वस्त्र ओढ़ा दिया और फिर नारद के पास जाकर प्रणाम किया।

"उद्धव, कृष्ण ने ही यह संहार रचा है, उन्होंने कितना अधर्म और असत्य का निर्वाह किया। निःशस्त्र भीष्म पर शिखण्डी की आड़ लेकर अर्जुन ने बाण बरसाये, निःशस्त्र द्रोणाचार्य का धृष्टद्युम्न ने मस्तक काट लिया और निःशस्त्र कर्ण को अर्जुन ने मार डाला।" नारद ने लम्बी साँसें छोड़ीं, "उद्धव, मेरी कृष्ण पर से श्रद्धा डिग गयी है..."

"देवर्षि, आपने अभी कुरुक्षेत्र का पूरा इतिहास जाना कहाँ है ?" उद्धव ने कहा, "अश्वत्थामा ने पांचाली के पुत्रों की, रात में जब वे सो रहे थे तब, हत्या कर दी, और उसने ब्रह्मास्त्र छोड़ा, जिससे पाण्डवों का एक मात्र वंशज उत्तरा का पुत्र भी मरा हुआ पैदा हुआ !"

"क्या ! कुरुवंश का अब अन्त हो गया ?" नारद ने साँस रोककर पूछा !

"नहीं, कृष्ण ने इस बालक को जीवित कर दिया।"

"क्या कहते हो ?"

"हाँ देवर्षि !" उद्धव ने कहा।

नारद को लगा कि वे एक बार फिर चमत्कारों की दुनिया में साँसें ले रहे हैं।

उद्धव ने आगे कहा, "जिस क्षण आपकी भाँति मेरी भी श्रद्धा डिगने लगी थी, मुझे भी लगा था कि यदि कृष्ण धर्म और सत्य के पन्थ पर चल रहे हैं तो इतना संहार क्यों ? इसी समय कृष्ण ने उस मृत बालक को गोद में ले लिया।"

नारद मानो किसी अन्य जगत् की घटना सुन रहे हों, उस प्रकार उद्धव की बात सुन रहे थे।

"...कृष्ण ने पानी की अंजली हाथ में ली और कहा, मैंने यदि कभी हँसी-हँसी में भी असत्य भाषण न किया हो, युद्ध में क्षत्रिय धर्म में चूक न की हो और यदि धर्म का या धर्मधारकों का हमेशा आदर किया हो तो इस पुण्य के बल से यह बालक जी उठे।" और वैद्यों ने जिसे मृत घोषित कर दिया था, सभी को लगा कि वह बालक तनिक हिला-डुला। कृष्ण बोलते जा रहे थे—

"मैंने विजय में अहंकार न किया हो, कंस और शिशुपाल का धर्म से वध किया हो और इस दुनिया पर धर्मचक्र का शासन प्रवर्तित करने हेतु ही जिया होऊँ तो अभिमन्यु का यह पुत्र जीवित हो..." और उस बालक में जीव प्रविष्ट हुआ हो, ऐसा लगा। कृष्ण की वाणी में एक अपार्थिव खनक थी। वे कह रहे थे, "मैंने व्यवहार में साधुता बरती हो, दृष्टि में प्रेम रखा हो, शत्रु से भी द्वेष नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया हो और सत्य का विरोध न किया हो, तो अर्जुन का यह पौत्र जीवित हो जाय।"

"···और बालक रोने लगा।"

नारद स्तब्ध रह गये। कृष्ण ने अपनी साधुता सिद्ध की, इतना ही नहीं अपनी प्रभुता भी सिद्ध कर दी। कृष्ण की यह साधुता और इतनी बड़ी व्यथा···इसका मेल कैसे बैठ सकता है !

···यह शायद कृष्ण के सिवा दूसरा कोई भी नहीं समझा सकेगा···

"उद्धव, कृष्ण कहाँ हैं ?"

"अन्तिम समाचार मिलने तक वे हस्तिनापुर में ही थे।" उद्धव ने कहा।

"तो मैं जा रहा हूँ, उद्धव। मुझे इस धर्मधुरी के धारक से, बहुत देर न हो जाय इससे पहले, बहुत से समाधान प्राप्त करने हैं।"

मृत्यु-महोत्सव

नगर-द्वार पर फूलों की सजावट और ध्वजा-पताकाएँ देखकर नारदजी को विचार आया कि मानव-व्यवहार की लीला कितनी विचित्र है।

यहाँ आने से पहले नारद घायल सैनिकों के परिचर्या-शिविरों में ही रहे थे। चतुर्दिक् विषाद और अन्धकार ही दिखता था। इन शिविरों को केवल प्रेक्षक की भाँति देखकर चल देना नारद के लिए कैसे सम्भव था ? प्रत्येक शिविर में रुककर, नारद इन अपंग लोगों के साथ कुछ समय रहे, उनके स्वजनों को आश्वस्त किया।

आँसू, शोक, रक्त और आर्तनादों के वातावरण में से नारद ने हस्तिनापुर की सीमा में प्रवेश किया कि तत्काल ही दुन्दुभि, पुष्प, तोरण और पताकाओं को देखकर उनका मन खिन्न हो उठा।

दोपहर होने आया था, नगर के बाहर राज्य के माली सुशर्मा का पुष्पकुंज था। मध्याह्न सन्ध्यावन्दन और भोजन इस कुंज में करने के बाद तीसरे पहर नगर में प्रवेश करने का निर्णय करके नारद पुष्पकुंज की ओर बढ़े।

सुशर्मा को खबर मिली कि देवर्षि नारद आये हैं, अस्तु वह स्वागतार्थ आया। उसे दूर से आते देखा तो नारद एक बार विश्वास ही नहीं कर पाये कि यह वही सुशर्गा है, जिसे कुछ समय पूर्व देखा था। वह अचानक बूढ़ा हो गया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसकी हमेशा टटार खड़ी रहनेवाली देह झुक गयी थी। उसकी आँखों के स्थान पर काले कुएँ वन गये हैं, ऐसा लगता था। वह एक युवती के कन्धे पर हाथ रखकर चल रहा था। उस युवती के शरीर पर एक भी सौभाग्य-चिह्न न था। वे पास आये तब नारद ने पहचाना कि यह सुशर्मा की पुत्री विनता थी। अभी कुछ समय पूर्व नारद ने उसे नव-वधू के वेश में देखा था। आज उसके ललाट पर से टीका मिट गया था और उसका चेहरा सूर्य-विहीन आकाश-जैसा लगता था।

"आइए, देवर्षि।" सुशर्मा ने कहा।

"सुशर्मा, तुम एकाएक ऐसे बूढ़े कैसे हो गये ?" नारद ने पूछा, पर दूसरे ही पल उन्हें अपने शब्दों के खोखलेपन का आभास हुआ।

"देवर्षि, आज प्रातः धर्मराज युधिष्ठिर राजगद्दी पर बैठे, इस उत्सव की तैयारी के लिए विगत कई दिनों से हस्तिनापुर के पुष्पकुंजों में से फूल इकट्ठे कर रहा था। अब उम्र हो गयी है और ऐसे बड़े अवसर के लिए मदद कर सकें ऐसे तीन बेटे और एक दामाद की अनुपस्थिति..." सुशर्मा आगे न बोल सका। विनता ने एक ओर देखकर आँखों में उमड़ आये आँसू पोंछ लिये।

इन पुत्रों और दामाद का क्या हुआ, यह पूछने का कोई अर्थ न था। समूचे आर्यावर्त की जवानी कुरुक्षेत्र के उबलते चरू में होम हो चुकी थी। ये पुत्र और दामाद इस अग्नि से कैसे बच सकते थे ! इसके बावजूद सुशर्मा को नगर का सिंगार करना पड़ा। उसकी पुत्री और पुत्रवधुओं को जिन फूलों को अपने केश में गूँथने का मन हो, उन फूलों की माला बनाकर पाण्डवों के राजमहल में भेजनी पड़ी होगी। वैधव्य के शोक को इन पुष्पों की सुवास ने कितनी तीव्र वेदना से भर दिया होगा, इसकी कल्पना नारद कर सकते थे।

"आप प्रातः पधारे होते तो राज्यारोहण समारोह में भाग ले सके होते।" सुशर्मा ने कहा, "महर्षि धौम्य ने वेदमन्त्रों के उच्चार के साथ जब युधिष्ठिर के सिर पर राजमुकुट रखा तब इसे देखने के लिए कितने कम लोग उपस्थित थे ! भीष्म न हों, द्रोणाचार्य न हों, हस्तिनापुर में ऐसी राजसभा, इस लम्बी अवधि में, पहले कभी नहीं देखी गयी थी।"

नारद ने गहरा निःश्वास छोड़ा। सुशर्मा को सहसा कुछ याद आ गया हो, इस प्रकार वह बोल उठा "हाँ, एक कृष्ण थे, अतः राजसभा भरी-भरी लगती थी। घूम-फिरकर सबकी नजर उन्हीं पर पड़ती थी। कृष्ण आज बहुत गम्भीर थे। उनके होठों पर सदा विराजनेवाला स्मित कुछ ही क्षणों के लिए दिखाई पड़ा था।"

नारद ने उत्साह से पूछा, "कृष्ण आज हस्तिनापुर में हैं न ?"

"हाँ" सुशर्मा ने उत्तर दिया। नारद सोचने लगे—एक अँधेरी रात तूफानी यमुना को पारकर वे मथुरा के कारागार में गये थे, उस बात को अब कितने वर्ष हो गये,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्ष क्यों कितने दशक बीत गये ? देवकी की आठवीं सन्तान भूमि का भार उतारने हेतु अवतार लेगी, इस आस्था के साथ नारद वहाँ पहुँचे तो उस समय कृष्ण कारावास से निकल चुके थे। उस क्षण से कृष्ण हर बार उन्हें दाँव देते आये हैं। कृष्ण की तलाश में वे कहाँ-कहाँ नहीं भटके। आज तो अव उतनी शक्ति या स्फूर्ति भी नहीं रही। फिर भी कृष्ण का नाम सुनते ही नारद के हृदय में अकल्पनीय कम्पन उठा। अभी भी इस नाम का उच्चारण मात्र मन को उन्मत्त क्यों वना देता है, नारद की समझ में नहीं आ रहा था।

कुरुक्षेत्र में जो कुछ हुआ, उससे नारद यदि इतने सन्त्रस्त थे, तो कृष्ण को कितना दुःख हुआ होगा ! कभी वह वृन्दावन में गोप-गोपियों या नन्द-यशोदा को तो प्रेम करता ही था, साथ ही गौओं, वृक्ष-लताओं, गोवर्धन पर्वत की शिलाओं, कुंजों और यमुना के प्रवाह को भी उतना ही प्रेम करता था, अब वह अपनी नजर के सामने हो रहा यह संहार कैसे देख सका होगा ?

दो प्रहर बीत गये। तव देवर्षि नारद ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया। घरों का सिंगार हुआ था, रास्ते, तोरण और पताकाओं से सुसज्जित थे, पर रास्ते पर बहुत कम लोग चलते-फिरते दिखाई पड़ रहे थे। वे क्षत्रियों के टोले से गुजरे तो सौभाग्य खो देनेवाली स्त्रियाँ और कहीं-कहीं किसी दिशा से पिताजी आयेंगे, ऐसी मिथ्या-आशा लिये तरसती आँखों से रास्ते का पान कर रहे नादान बालक ही दिखे।

भारी हृदय से सब रास्ते पार कर नारद राजमहल के प्रांगण में प्रविष्ट हुए। सबसे पहला महल दुर्योधन का था। अब इस महल में कौन रहता होगा ? यह जानने की उत्सुकता नारद को हुई। उनके पैर अनायास उसी ओर मुड़ गये।

उन्हें देखते ही काशिराज की कन्या जलन्धरा ने चरण स्पर्श किया और अन्दर आने का निमन्त्रण दिया। जलन्धरा को देखकर नारद को समझ में आया कि इस महल में भीमसेन ही रहता होगा।

"पधारिए देवर्षि ! हमारे अहोभाग्य कि हमें आपके दर्शन हुए।" जलन्धरा ने कहा, "स्वामीनाथ बहुत ही बेचैन हैं। हम आज दोपहर को ही इस महल में रहने आये हैं, पर उन्हें चैन नहीं है। आपके दर्शन से उनकी व्याकुलता घटेगी।"

नारद जलन्धरा के पीछे अन्दर गये। दुर्योधन ने इस महल की जो सजावट की थी वह अभी भी जैसी-की-तैसी थी। एक के बाद एक कक्ष पार कर नारद वहाँ पहुँचे, जहाँ भीम आँखें मूँदे लेटा था।

पदचाप सुनते ही भीम ने आँखें खोलीं। नारद को देखते ही वह उठकर खड़ा हो गया। नारद के चरण स्पर्श करके उत्तम आसन प्रदान किया और फिर नारद के चरणों के पास जमीन पर बैठ गया।

भीम जैसा भीम इस तरह टूट जायेगा, यह देखकर नारद को आश्चर्य हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"भीम ऐसे गुमसुम क्यों बैठे हो ?" नारद ने पूछा।

"देवर्षि, देखिए तो कौन आ रहा है ?" भीम ने कहा और वह रिक्त आँखों से द्वार की ओर ताकता रहा, "आप पहचानते हैं इसे ? कौन है ये, जो मुझे घूर कर देख रहा है ?"

"भीम तू क्या बक रहा है ?" नारद ने कहा, "वहाँ तो कोई भी नहीं है, अभी तो मैं ही आया हूँ।"

"वहाँ कोई नहीं है ? नहीं, नहीं, जरा देखिये तो, आप को कुछ सुनायी नहीं देता ? मेरे कान फूट जायें यह कौन ऐसा अट्टहास कर रहा है ? और आपने यह लाल फुहारा देखा। नहीं यह फुहारा नहीं है, यह तो दुःशासन के बायें कन्धे से फूटी रक्त की धारा है। और यह धमाका कैसा हुआ ? किसने दुर्योधन की जंघा पर गदा प्रहार किया ? देवर्षि देखिए तो···" भीम बड़बड़ाता रहा।

"भीम होश में आओ···" नारद ने कहा, "जो भीषण हत्याकाण्ड हो चुका है उसे भूल जाने का प्रयत्न करो।··तुमने दुर्योधन या दुःशासन को मारा—ऐसा क्यों मानते हो ?"

"हाँ देवर्षि··मैंने ही मारा··अपने इन हाथों से···" भीम अपनी दोनों हथेलियों को देख रहा था।

"मूर्ख, कालदेवता ने इन दोनों भाइयों की देह का वध किया है और यही कालदेवता आज तुझे भी डरा रहे हैं··कृष्ण के वचन भूल गया, भीम ? यह तो काल भगवान की लीला है।"

कृष्ण का नाम सुनकर भीम थोड़ा स्वस्थ हुआ। उसने कहा, "क्षमा कीजियेगा देवर्षि, अनेक बार दिन में भी मुझे दुःस्वप्न सताते हैं, क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता। मुझे कहीं शान्ति नहीं मिलती। मैं ही युद्ध के लिए तरसता था। रक्त के सिवा मेरी प्यास किसी तरह नहीं बुझेगी ऐसा मैं खुलेआम कहता फिरता था। आज युद्ध के बाद मेरे होठ अधिक सूख गये हैं। मेरी भुजाओं में गदा उठाने की ताकत नहीं रह गयी है।"

नारद ने पूछा, "भीम, तू हार जायेगा तो फिर पाण्डवों के राज्य की रक्षा कौन करेगा ?"

युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव को पता चला कि भीम के महल में नारद पधारे हैं तो सब लोग वहीं आ पहुँचे। युधिष्ठिर के मस्तक पर आज प्रातः धारण किया राजमुकुट था और मुख पर भारी विषाद की रेखा खिंची थी।

"देवर्षि, आज के दिन आपको देखकर धन्यता का अनुभव हो रहा है। हमें आशीर्वाद दीजिए कि प्रजा में धर्म की प्रस्थापना करने में हम सफल हों।" युधिष्ठिर ने कहा।

"प्रभु आपको धर्म-स्थापना का यश प्रदान करें, यही मेरी प्रार्थना है। धर्मराज,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपके पक्ष में धर्म था, इसलिए आप जीते।" नारद ने कहा।

"इस शव्द का उपयोग न करें, देवर्षि। दुर्योधन की राजसभा में कृष्ण ने कहा था कि "जीत तो केवल कालदेवता की ही होगी।" कृष्ण के ये शव्द दुर्योधन के लिए सत्य थे तो हमारे लिए भी उतने ही सत्य सिद्ध हुए हैं···हम नहीं जीते, महाकाल जीते हैं···मृत्यु जीती है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"ऐसा न कहें, धर्मराज" नारद ने कहा, "क्या पता कि धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए यह नरसंहार आवश्यक हो गया हो। मानवता और धर्म की सीमाएँ लुप्त न हो जायें इस हेतु कुरुक्षेत्र के माध्यम से महाकाल ने मर्यादा का निर्धारण करना पसन्द किया···ऐसा न होता तो आज जब न जाने कितनी प्रजा नष्ट हो गयी, तब उसमें आप कैसे बच गये ? आप क्यों जीते ? क्योंकि आपके पक्ष में धर्म था···"

"हमारे पक्ष में कृष्ण थे।" अर्जुन ने कहा।

कृष्ण का नाम आते ही एक वार फिर वातावरण में जान आ गयी।

"हाँ देवर्षि, हमारे पक्ष में कृष्ण थे, इसी से आज प्रातः यह मुकुट मेरे मस्तक पर रखा जा सका।" युधिष्ठिर ने कहा। "इस मुकुट को पहनने के सपने कितने ही वर्षों से सँजो रखे थे। हस्तिनापुर की राजसभा में कुरुओं का राजमुकुट पहनकर चक्रवर्ती भरत की कीर्ति का प्रसार करने का मनोरथ मैंने सँजोया था···पर आज जब मुकुट पहना तब लगा कि जैसे सिर पर हिमालय का बोझ रख दिया गया है।"

"पर कृष्ण के चरणों में मस्तक झुकाकर आपने उस हिमगिरि का बोझ उनके सबल पद्‌युग्मों में रख दिया। अब किस बात की चिन्ता करते हैं ? इस निष्कण्टक राजकुल में आप पाँच पराक्रमी बन्धु भरत की कीर्ति से भी ऊपर उठ सकेंगे।" नारद ने युधिष्ठिर के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, और फिर कुछ चिन्तायुक्त स्वर में कहा—

"कृष्ण कहाँ हैं, धर्मराज ?"

युधिष्ठिर ने अर्जुन की ओर देखा। अर्जुन ने सहदेव की ओर देखा।

"धर्मराज, प्रातः कृष्ण राजसभा में आये थे, हैं न ?" नारद ने पूछा।

"हाँ", अर्जुन ने कहा, "कृष्ण विशेष रूप से राज्याभिषेक के लिए रुके थे···" अर्जुन आगे कुछ कहने जा रहा था, फिर रुक गया।

अर्जुन के शब्दों में निहित संकोच को नारद समझ सकते थे। कृष्ण से मिलने का यह उनका अन्तिम प्रयास था, और पाण्डवों के चेहरे पर जो उत्तर लिखा था, उससे स्पष्ट हो गया था कि यह प्रयत्न भी विफल है। नारद को यह समझने में देर नहीं लगी। हृदय में एक अनबूझ टीस उठ रही थी, फिर भी दाहिने हाथ से हृदय को दबाकर नारद ने कहा—

"अर्जुन, संकोच क्यों करते हो। कृष्ण से मेरे मिलन की घड़ी अभी नहीं आयी है और अब इस बावत् मेरा मन तड़प भी नहीं रहा है। ऐसे देखो, तो मेरा रोम-रोम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण मिलेंगे इस आशा से पुलकित हो उठा था और अब कृष्ण यहाँ से चले गये हैं, ऐसी भनक मैं तुम्हारी आँखों में पढ़ पा रहा हूँ और तब कुछ भी नहीं होता। हाँ, एक महीन पीड़ा हृदय में उठती है, मानो मेरी वीणा पर झंकृत स्वरों की प्रतिध्वनि हो और यह भी शीघ्र विलीन हो जायेगी।"

नारद के शब्द सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग द्रवित हो उठे। थोड़ी देर के लिए शान्ति छा गयी और इस सन्नाटे को भंग करने की किसी को इच्छा नहीं थी।

"द्वारका में कुछ झंझट हो गयी है"—युधिष्ठिर ने कहा, "आप तो जानते ही हैं कि सात्यकि हमारे पक्ष में लड़ा था और कृतवर्मा दुर्योधन के पक्ष में था।"

"हूँ" नारद ने कहा।

"और इन दोनों के बीच का मनोमालिन्य दिन-प्रतिदिन उग्र होता जा रहा है, और यदि कृष्ण ठीक समय से द्वारका नहीं पहुँचे तो शायद बात बिगड़ जायेगी, ऐसा सन्देश लेकर कल शाम एक दूत आया था।" युधिष्ठिर ने कहा।

'मतलब यह कि कुरुओं के बाद यदु···' नारद मन-ही-मन बोल उठे और फिर कहा "फिर !"

"राज्यारोहण तक तो वे बड़ी मुश्किल से रुके उसके बाद तीव्रगति से द्वारका की ओर चल पड़े। उनका गमन हमने गुप्त रखा है। क्योंकि वे यहाँ से चल चुके हैं ऐसी सूचना द्वारका पहुँच जाय तो कृष्ण के पहुँचने से पहले ही कृतवर्मा और उनके साथी कोई निर्णायक कदम उठा सकते हैं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"किन्तु कृष्ण ने आपके लिए एक सन्देश दिया है, देवर्षि।" अर्जुन ने कहा।

"क्या कहा है ?" धड़कते हृदय से नारद ने पूछा।

"मैं कृष्ण को पहुँचाने हस्तिनापुर की सीमा तक ग़या था वहाँ कृष्ण ने रथ रोका और मुझे निकट बुलाकर कहा, 'अर्जुन, शायद नारद अभी भी असित पर्वत की तलहटी में होंगे, तो रास्ते में मैं उनसे मिलता आऊँगा, पर सम्भव है मैं उनसे न मिल सकूँ और वे यहाँ आयें तो उनसे कहना—मैं द्वारका में उनकी राह देखूँगा और उनका यह फेरा व्यर्थ नहीं जायेगा, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ।' देवर्षि, आपको याद करके वास्तव में कृष्ण विह्वल हो उठे थे।" अर्जुन ने कहा।

"मेरा फेरा व्यर्थ नहीं जायेगा, ऐसा कृष्ण ने कहा है ?" नारद ने आतुरता से पूछा, "अर्जुन तुम्हें कृष्ण के शब्द ठीक-ठीक याद हैं न ?"

"हाँ देवर्षि," उन्होंने कहा था, 'मुझे नारद के साथ बात करने की बड़े लम्बे समय से प्रतीक्षा रही है। दैव हम दोनों से रूठा और हम दोनों को मिलने नहीं देता। पर अवतार को समेट लूँ उससे पहले उनसे एक बार मिलना है। नारद से कहना—कृष्ण आपके लिए ही जीते रहे हैं'···"

नारद अर्जुन के शब्द अक्षुण्ण रस की भाँति पी रहे थे। युधिष्ठिर ने पुनः एक बार नारद के चरणों में मस्तक नवाया और कहा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"जिसके लिए कृष्ण जीते हैं, उन देवर्षि के चरणों में मैं अपने इस कण्टक मुकुट का भार रखता हूँ। अपना हाथ मेरे सिर पर रखे रहें। मेरे मुकुट के काँटे आपकी हथेली में गड़ेंगे पर मुझे, बन्धु हत्यारे को शायद थोड़ी शान्ति मिले··· !"

यादवी

सागर धीरे-धीरे पीछे हटता जा रहा था। भाटे का जल देखकर बलराम सोच रहे थे—"यह केवल सागर का भाटा है या फिर समूचा यदुकुल ही धीरे-धीरे सिमट रहा है !" उन्होंने गहरा निःश्वास छोड़ा। उत्सव में मस्तीभरे यादवों का कान-फाड़ शोर उनके कानों से टकरा रहा था। वे उदास हो गये। उन्होंने देखा कि पास के घाट पर लंगर डाले नौका में से भैरेय नाम की सुरा के पीपे उतारे जा रहे हैं। बलराम ने उधर से दृष्टि हटा ली।

कृष्ण ने आज्ञा दी थी—यादवगण मद्यपान नहीं करेंगे। पर कृष्ण की इस आज्ञा का खुलेआम उल्लंघन हो रहा था। मद्यपान-निषेध की आज्ञा पर ठीक से अमल हो, इस हेतु रक्षक नियुक्त किये गये थे। वही रक्षक सुरा के गुप्त-अड्डों में नशे में धुत्त, अण्टाचित्त थे।

कृष्ण की इस आज्ञा का पालन करना बलराम के लिए भी कितना दुष्कर था ! सुरा के बिना अधिक लोगों की रात नहीं होती थी, बलराम को सुरा की प्याली बिना सवेरा होना असम्भव लगता था। पर कृष्ण ने कहा तो बलराम ने उनके खातिर अपूर्व संयम का पालन किया। अंग-अंग ऐंठता हो, रोम-रोम में सुधा की प्यास जगी हो पर सुरा का नाम भी न लेना, इसके लिए इच्छा को कितना दवाना पड़ा था, यह बलराम मन-ही-मन जानते थे। पर यादवों को इसकी क्या गरज थी! प्रभास के घाट पर भैरेय के पीपे खुले थे।

कृष्ण ने प्रभास के समुद्रतट पर स्थित बाँसवन के पास खुले मैदान में वनभोजन आयोजित करने हेतु जाने की सूचना क्यों दी थी, यह भी बलराम को समझ में नहीं आ रहा था। यादवगण उत्सव में आनन्द का अर्थ विलास करना लगाते थे, प्रफुल्लता का स्थान उन्माद को देते थे। क्या कृष्ण यह बात नहीं जानते थे ? और तिस पर से कृष्ण तो 'यादव जो चाहें उन्हें करने देना' कहकर चले गये थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलराम पुनः यादवों के झुण्ड की ओर चले। बलराम को देखकर भैरेय की प्यालियाँ पीते और नाचते-गाते यादव थोड़ा सकुचाये, पर संग्रामजित् ने कहा, "बड़े भाई, आइए, आइए, आप भी भैरेय चखिए, यह तो हम लोगों के कुलदेवता का प्रसाद है।"

"हाँ, आज की भैरेय तो अद्‌भुत है।" उल्मुक ने कहा और फिर इधर-उधर देखकर बोला, "कृष्ण यहाँ कहीं नहीं हैं। वे तो कहीं चले गये हैं। आप निर्भय होकर हमारे साथ शामिल हो जाइए।"

बलराम कुछ उत्तर देने जा रहे थे कि इससे पहले ही साम्ब ने कहा, "काकाजी बापू ने तो स्वयं ही यादवों को यहाँ उत्सव मनाने की आज्ञा दी है, फिर डर किसका है ?"

बलराम उदास हो गये। संग्रामजित् द्वारा प्रस्तुत भैरेय सुरा का प्याला उन्होंने हाथ में ले लिया। उस सुरा के चमकते श्याम-वर्ण में उन्हें कृष्ण दिखे और यह कृष्ण मानो विराट बन गये, और उनके मुख में समूचा यादवकुल होम हो रहा हो ऐसा दृश्य देखकर बलराम थरथरा गये। उन्होंने सुरापात्र को भूमि पर फेंक दिय। और एक भी शब्द बोले बिना इस समूचे समूह में कृष्ण कहीं है भी कि नहीं यह देखने हेतु आगे बढ़ गये।

"यह बलराम तो एकदम सुधारक ही बन गया है !''हम सबसे ज्यादा गटकता था" गद ने कहा।

"क्या पता, सागर-तट तक अकेला ही गया था, लगता है वहीं से पीकर आया है और हमारे सामने धर्मराज बनने का ढोंग करता है।" कृतवर्मा ने कहा। सात्यकि चुपचाप बैठा भैरेय की एक के बाद एक प्याली पीता जा रहा था। उसकी ओर देखकर कृतवर्मा ने कहा, "कृष्ण का यह परम भक्त सुरापान कर रहा है'''और बलराम को क्या शूल चुभ रहे हैं ?"

सात्यकि ने क्रोध से लाल हुई आँखों से कृतवर्मा की ओर देखा और कहा "कृतवर्मा, जीभ पर थोड़ी लगाम लगाओ।"

संग्रामजित् समझ गया कि ये दोनों टकराये तो चिनगारियाँ उड़े बिना नहीं रहेंगी। उसने बात बदल डाली, "कृष्ण ने हमें उबारा इससे इनकार नहीं है। मुश्किल में आप पड़े हों और कोई उबार ले यह तो समझ में आता है, पर सुख के दिन आवें तब तो हम अपने ढंग से जी सकते हैं या नहीं ? सुख के दिनों में कृष्ण ऐसी रोकटोक क्यों करते हैं ? सुरा नहीं पीना, ऐसा नहीं करना, वैसा नहीं करना''' !"

"तेरी बात सच है, संग्रामजित्। दुःख में जो करना चाहिए वह कृष्ण ने किया, अब सुख के दिनों में उसे क्यों आड़े आना चाहिए ?" कृतवर्मा ने कहा।

"कृष्ण कहाँ किसी के आड़े आये हैं ?" सात्यकि ने कहा, "यदि कृष्ण सामने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आये होते तो मेरी, तुम्हारी, इस बड़बोले कृतवर्मा की या किसी की हिम्मत थी कि एक प्याली भी होंठ से लगाता !"

"तू कृष्ण का इतना भक्त है तो किसलिए यहाँ पीने बैठा है। जा-जहाँ कृष्ण हों वहाँ उन्हें ढूँढ़ और बैठकर उनके तलुवे सहला।" कृतवर्मा ने कहा।

"इसके लिए भी भाग्य चाहिए, कृतवर्मा। जिसने पाण्डवों की सन्तान की निष्ठुर हत्या करने गये अश्वत्थामा का साथ दिया, जिसने सोयी सेना का कत्ल किया, उस कृतवर्मा के भाग्य में कृष्ण के चरण चापना कहाँ लिखा हो सकता है ?"

कृतवर्मा उत्तेजित हो उठकर खड़ा हो गया, पर संग्रामजित ने उसे फिर बैठा दिया। पर सात्यकि अभी चुप नहीं हुआ था। उसने कहा, "आपको तो दुःख में कृष्ण की जरूरत है, सुख में नहीं है न ? तो लूट लो सुख। इस समय सुख है, सुरा है, और कृष्ण विना सुख कितनी देर टिकता है यह भी देख लो, ओ सोती सेना के हत्यारे, नामर्द !"

अब तो कृतवर्मा रोके नहीं रुका। "सात्यकि, उस अपंग हाथ कटे और तड़पते भूरिश्रवा को तूने ही तो मार डाला था ? इसे कौन-सी मर्दानगी कहेंगे ?"

सुमित भी कृतवर्मा की चंग पर चढ़ा, "हाँ सात्यकि ! तड़पते, मरणासन्न आदमी को तो साधारण सैनिक भी स्पर्श नहीं करते और यादवों का यह अतिरथी तो ऐसे आदमी को मारकर भारी पराक्रम करने गया था !"

सात्यकि की आँखें चकरा गयीं। वह बोला, "उस भूरिश्रवा के हाथों मेरे दस-दस अबोध पुत्र मारे गये थे।"

"युद्ध में लड़ेगा वह मारा तो जाएगा ही, इसमें नयी बात क्या है ?" कृतवर्मा ने कड़ुवे स्वरों में कहा।

"पर युद्ध में सो रहा हो, उसे कैसे मारा जा सकता है ? तूने तो ऊँघ रही पाण्डव सेना की हत्या कर डाली"—सात्यकि ने कहा।

"पर तूने अपंग भूरिश्रवा का मस्तक कैसे उतारा ?"

सात्यकि आँखें नचाता कुछ देर तक कृतवर्मा को देखता रहा। उसकी आँखों की अग्निज्वाला अभी कृतवर्मा को जलाकर राख कर देगी ऐसा लगा। कृतवर्मा भी डरकर थोड़ा पीछे हटा। और तभी सात्यकि ने बिजली की गति से तलवार खींची और दूसरे ही क्षण "इस प्रकार" कहते हुए कृतवर्मा का मस्तक उतार लिया।

कृतवर्मा का मस्तक-विहीन धड़ कुछ देर तक काँपता रहा, फिर भूमि पर गिर पड़ा।

सभी लोग स्तब्ध रह गये। बात यहाँ तक पहुँच जाएगी यह किसी ने सोचा तक नहीं था। कुरुक्षेत्र में जो कौरव-पक्ष से लड़े थे और जो पाण्डव-पक्ष से लड़े थे उनके परिवारों में वैमनस्य हो गया था। यह धधकता ज्वालामुखी कभी फटेगा यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो स्पष्ट ही था, पर इस प्रकार यादवगण प्रभास-तट पर उत्सव मनाने गये होंगे और वहाँ रंग में भंग हो जाएगा, इसकी कल्पना किसी को नहीं थी।

सात्यकि भी अपनी रक्तभीनी तलवार की ओर शून्य आँखों से देखता रह गया। उत्तेजनावश वह क्या कर बैठा, इसका उसे अब ध्यान आ रहा था।

सबसे पहले संग्रामजित होश में आया। उसने तलवार खींची और बोला, "सात्यकि, तू अकेला ही तलवार चलाना जानता है ?" और उसके वार को दो कदम पीछे हटकर सात्यकि ने अपनी तलवार पर झेला और उसमें से निकली चिनगारी ने वहाँ उपस्थिति सभी यादवों में आग फैला दी।

अनिरुद्ध गरज उठा, "कौन सात्यकि पर हाथ उठाता है ?" सुरथ ने प्रतिगर्जन किया, "सात्यकि किस खेत की मूली है कि उस पर हाथ नहीं उठाया जा सकता ?" और जिन यादवों की आँख लड़ी उन सबने एक दूसरे के विरुद्ध हथियार उठा लिये।

प्रद्युम्न और सहसजित भिड़ गये, साम्ब और उल्मुक के बीच द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हो गया। सुमित्र और शतजित मैदान में आमने-सामने उतर आये।

थोड़ी ही देर में तो प्रभासतीर्थ के मैदान में मानो कुरुक्षेत्र उतर आया। जिनके पास शस्त्र नहीं थे, वे पास के वन से बाँस काट-काटकर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे।

बलराम तो इस उत्सव-स्थल से दूर एक मन्दिर के चबूतरे पर एकाकी बैठे थे, और यादवों द्वारा उनके प्रति किये गये व्यवहार पर विचार कर रहे थे। कृष्ण ने यादवों को द्वारका से प्रभासतीर्थ आने के लिए क्यों कहा होगा ?

गोकुल में जब उत्पात बढ़ गया, तब कृष्ण ने सब लोगों को जाकर वृन्दावन में बसने की सलाह दी थी और समूचा गोकुल वृन्दावन आकर अधिक समृद्ध हो गया। इसी प्रकार जब मथुरा पर जरासन्ध के हमले होने लगे तब उसके त्रास से वचाने के लिए कृष्ण ने यादवों को द्वारका में बसने की सलाह दी। और यहाँ यादव समृद्धि के शिखर पर पहुँचे, द्वारका-दुर्ग के कंगूरे स्वर्णमण्डित हुए और यादवों के प्रताप से समूचा आर्यावर्त काँप उठा। पुनः द्वारकावासियों में विलास की लहरें उठने लगीं। जवान स्वच्छन्द हो गये, सुरा ने खानदानों और परिवारों में विच्छिन्नता पैदा की और सब लोग कृष्ण के पास गये।

उन्होंने कहा, "द्वारका की स्त्रियों को स्वप्न में कालिका माता दिखाई देती हैं—वे इन स्त्रियों के सौभाग्य-चिह्न और मंगल-सूत्र लूटती हैं और अपने पाण्डुर वर्ण दाँतों से अट्टहास करके द्वारका के चारों ओर घूमती दिखाई देती हैं। पुरुषों को जो स्वप्न आते हैं, उनमें अग्निहोत्रशाला में रहनेवाले गिद्ध आकर वृष्णि और अन्धकों को नोचकर खाते दिखते हैं। हे कृष्ण ! इन अमंगल शकुनों के बीच, कोई उत्तम मार्ग बताइए !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह सुनकर कृष्ण ने कहा, "हे यदुश्रेष्ठो, द्वारका में हो रहे ये उत्पात, विपत्ति और मृत्यु के सूचक हैं। चलिए, हम लोग प्रभासक्षेत्र में चलकर पूजा-पाठ करें।"

कृष्ण यादवों को जानते थे, फिर भी उन्होंने ऐसा क्यों कहा होगा ? यादवगण प्रभासक्षेत्र में पूजा, प्रार्थना करने के बदले मद्यपान में प्रवृत्त हो जाएँगे, यह बात कृष्ण नहीं जानते थे क्या ?

बलराम अभी इसी चिन्ता में मग्न थे कि सुरथ एकदम से पागलों की भाँति दौड़ता वहाँ आया। उसके शरीर पर अनेक घाव लगे थे और उनसे खून बह रहा था। उसके चेहरे पर रक्त के रेले बह रहे थे। उसे देखकर लगता था कि वह कोई मनुष्य नहीं बल्कि पिशाच है। उसका ऐसा चेहरा देखकर बलराम हक्के-बक्के रह गये।

"क्या हुआ सुरथ ?" बलराम ने पूछा।

"सत्यानाश···" सुरथ ने उत्तर दिया।

बलराम उठ खड़े हुए। उन्होंने पास में पड़ी गदा उठायी। क्या हुआ है इसकी जानकारी लेने की जरूरत भी नहीं समझी। उनकी आँखें गुस्से से लाल हो गयीं। जिस कृष्ण ने आर्यावर्त में धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए महायुद्ध खेले, उन्हीं के कुल में अनाचार और विलास का राज छाया था। धर्म लुप्त हो गया था। गुरुजनों के प्रति आदर का क्षय हुआ था।

बलराम को आता देखकर उल्मुक ने कहा, "देखो, बलराम आ रहा है। सब लोग मिलकर उस पर हमला करो !" और उल्मुक तथा उसके साथी आगे बढ़े। बलराम के हाथ की वजनदार गदा जैसे पक्षी का हल्का पंख हो इस सरलता से चारों ओर घूम गयी।

वीर सात्यकि गिरा। कृष्ण का प्रिय पुत्र प्रद्युम्न मारा गया। जिसके लिए कृष्ण ने बाणासुर से युद्ध किया, उस अनिरुद्ध के शव से बलराम टकराये।

बलराम उन्मत्त बन गये।···

यादवकुल की समृद्धि बढ़ाने के लिए कृष्ण ने क्या-क्या नहीं किया ? कंस को मारा, जरासन्ध से दो-दो हाथ किये, शिशुपाल का संहार किया, शाल्व के साथ युद्ध किया। द्वारका नगरी बसायी। पंचजन, शम्बरासुर, दन्तवक्र आदि का संहार किया। धर्म के आचार स्थापित किये, अधर्म की प्रणालिकाओं को जड़मूल से उखाड़ फेंका और सागर तथा धरती पर यादवों की ध्वजा की आन प्रवर्तित हुई।

यादव उसका यह प्रतिदान दे रहे थे। कुरुवों ने धर्म की मर्यादा तोड़ी और वे नष्ट हो गये। अब यादवों को जिलाकर क्या होगा ? यादव जियेंगे तो अधर्म का ही प्रसार होगा। और बलराम ऐसे ही विचारों में डूबे समूचे मैदान में घूम रहे थे। वृक्ष पर से आँधी में जैसे फूल झर जाते हैं, उसी तरह बलराम की गदा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रहार से यादवों के मस्तक चूर्ण हो गये, वे निर्जीव होकर धरती पर गिरते चले गये।

कितने ही घण्टों तक यह सब चला। फिर जब बलराम ने देखा कि उनकी गदा केवल हवा में लहरा रही है और उससे टक्कर लेने कोई आगे नहीं आ रहा है, तब उन्होंने गदा को आकाश में उछाला और फिर वह धरती पर कहाँ गिरी यह देखने की परवाह किये बिना वे सागर-तट की ओर चल पड़े।

द्वारका से मार्ग पूछते-पूछते, अता-पता लगाते एक वयोवृद्ध सन्त हाथ में वीणा लिये प्रभासतीर्थ की ओर बढ़ रहे थे। तब आकाश में उड़ती गिद्धों की सेना देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। महायुद्ध हुआ हो इस प्रकार शवों को चींथने के लिए इतनी बड़ी संख्या में एकत्र हुए गिद्ध आकाश में क्यों मँडरा रहे हैं ?

और आगे बढ़े तब उन्होंने जो दृश्य देखा उस पर उनकी आँखों को विश्वास नहीं हुआ। यादवों के असंख्य शव मैदान में बिखरे पड़े थे। और करुण रुदन करती स्त्रियाँ इन शवों पर मँडराते गिद्धों को रोकने और उड़ाने का प्रयत्न कर रही थीं।

नारद को लगा कि अवश्य ही उनका हृदय वज्र का वना है, नहीं तो ऐसा दृश्य देखकर उसे पिघल जाना चाहिए था। इतना बड़ा नर-संहार उन्होंने कुरुक्षेत्र की वार्ताओं में सुना था, आज अपनी आँखों से देखा।

नारद की वीणा के सुर नाद का परिमाण खो बैठे, नारद की दृष्टि तेज की परिधि गँवा बैठी। नारद के चरण स्थिर गति से चूक गये। वे बिलख उठे। "अब यहाँ किससे पूछूँ कि कृष्ण कहाँ हैं ? रुदन करती स्त्रियों से पूछूँ ? इन निर्जीव शवों से पूछूँ ? मँडरा रहे इन गिद्धों की जमात से पूछूँ ?"

उन्मत्त भाव से नारद आगे बढ़े और सागर-तट पर उन्होंने एक विचित्र दृश्य देखा। और घवराकर वे चार कदम पीछे हट गये।

उन्होंने देखा, बलराम ध्यानस्थ अवस्था में पद्मासन लगाये बैठे हैं और एक लम्बा काला नाग कुण्डली मारकर बलराम के मस्तक पर फन फैलाये बैठा है। ध्यानस्थ बलराम के मस्तक पर मानो शेषनाग डोल रहे थे। उसके फन पर चमकती लकीरें थीं और उसकी लपलपाती जिह्वा मानो रत्न की बनी हो, ऐसी चमचमा रही थी। उसने फुत्कार किया और नारद सभय पीछे हट गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युग-युग में कृष्ण होंगे

बलराम के मस्तक पर फन का छत्र बनाये बैठा नाग नारद को मानो युग-युग से पहचानता हो, इस तरह देख रहा था। फिर कुछ देर डोलता रहा। तब यकायक पूँछ पछाड़कर वह सीधी रस्सी-सा बन गया और सर्र से पास की झाड़ी में लुप्त हो गया।

नारद धीमे से बलराम के पास गये। बलराम ऐसे बैठे थे जैसे समाधि में हों। नारद ने उनके मस्तक पर हाथ रखा। तलुवे में भी चेतना नहीं थी।

"बलराम अपनी देह से निकल गये लगते हैं।" नारद ने अपने आप से कहा, "यादवों का यह प्रवीर, जिसकी हाँक से योद्धा काँप उठते थे वह बलराम इस समय कहाँ होंगे ?"

मृत्यु ने सियापा फैला दिया था। कुछ भी तो नहीं बचा था। वृक्षों और सागर में थोड़ी चेतना थी, हवा में कुछ जान बाकी थी। वह नाग अभी जीवित था। थोड़ी सिसकियाँ बची थीं। कुछ कलपनेवाले अभी जीवित थे। नारद ने चौंककर अपने हृदय पर हाथ रखा, देखा, वे स्वयं भी तो अभी जीवित थे।

वीणा नीचे रखकर नारद ने बलराम को प्रणाम किया, फिर वीणा उठायी और आगे बढ़ गये। किसी की मृतदेह को ठोकर न लगे या गिद्धों की कोई टोली उन पर झपट्टा न मारे, इसके लिए नारद को सतत सावधान रहना पड़ रहा था।

एक वृक्ष के नीचे एक युवती बैठी थी। उसकी आँखें वेदना में डूबी थीं। नारद वहाँ पहुँचकर रुक गये और पूछा, "बहन तू कौन है ? यहाँ कैसे बैठी है ?"

युवती एक क्षण मौन रही। फिर शून्य दृष्टि से उधर देखा जहाँ गिद्धों की टोली भोज कर रही थी, और कहा, "वह बड़ा-सा गिद्ध जिसकी आँख नोच रहा है, उसकी मैं पुत्री हूँ···वह उधर···चार गिद्ध मिलकर जिसकी देह नोच रहे हैं उसकी मैं बहन हूँ···और···" वह अटक गयी, उसकी शुष्क आँखों में तनिक नमी दिखी। लगा कि उसके गले में कुछ अटक गया है। फिर वह बोली, "वहाँ देखिए, वह—जिसकी देह इतनी विकृत हो गयी है कि पहचान में न आये, उसकी मैं पत्नी हूँ···और मेरे उदर में इस समय क्षीण रुदन कर रही अजन्मी सन्तान की मैं माँ हूँ···"

नारद के पास इस युवती को सान्त्वना देने के लिए कोई भी शब्द नहीं था। वे बहुत अकुला उठे। इस स्त्री से पूछें या नहीं, इसका विचार-विवेक किये बिना उन्होंने पूछ ही लिया, "कृष्ण कहाँ हैं, आप जानती हैं ?"

युवती फीकी हँसी हँसी, उसका हास्य भयकारक था। वह बोली, "कृष्ण यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहीं नहीं हैं, इन शवों में कृष्ण नहीं हैं, इन जीवित गिद्धों में भी कृष्ण नहीं हैं···" और अचानक उसके रुदन को रोक रखनेवाली सिसकी निकल पड़ी और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

यह मृत्यु और यह जीवन !

इनके पार बसे किस लोक में कृष्ण रहते होंगे ? नारद की अकुलाहट का पार न था। वे रो नहीं सकते हैं, इसका सबसे अधिक दुःख नारद इस क्षण अनुभव कर रहे थे। वे उन्मन हो गये और इस प्रभासक्षेत्र में मृत्यु और कलपती सृष्टि से दूर, जहाँ कृष्ण हों उस दिशा में चलने को वे आतुर हो उठे। अचानक उनकी नजर सामने फैले वन में से बाहर आ रहे दो व्यक्तियों पर पड़ी। दोनों को नारद पहचानते थे। इनमें से एक तो मानो कृष्ण का ही प्रतिरूप हो, ऐसा उद्धव था। दूसरा कृष्ण का सारथि दारुक था।

दोनों ने देवर्षि को प्रणाम किया। फिर उद्धव ने दारुक से कहा, "तू अब जा। अर्जुन और युधिष्ठिर को वासुदेव का सन्देश दे देना···" दारुक की आँखों में आँसू छलक आये। उद्धव ने उसके गाल पर हल्की-सी चपत लगायी और कहा, "पागल हुआ है, दारुक। ऐसा मन छोटा करेगा तो कैसे चलेगा ?"

दारुक धीमे कदमों से वहाँ से विदा हुआ।

उद्धव नारद के पास आये और उनके कन्धे पर हाथ रखा और कहा, "देवर्षि, कृष्ण ने जब अर्जुन से कहा कि देवर्षियों में मैं नारद हूँ, तब मुझे यह बात समझ में नहीं आयी थी। हम सब कृष्ण के सान्निध्य में रहे और जिये। पर हममें से किसी में भी नहीं, पर आपमें ही कृष्ण को अपना रूप क्यों दिखा होगा, इसकी थोड़ी उलझन भी थी। पर आज सब कुछ दीपक की भाँति स्पष्ट दिख रहा है। आप कृष्ण हैं···कृष्ण की विभूति आप में ही बसी है !"

"कृष्ण कहाँ हैं उद्धव ? यह सब क्या हो गया ?" नारद ने पूछा।

"स्वस्थ होइए देवर्षि ! हम कृष्ण के पास ही जा रहे हैं अथवा यों कहिए कि हम कृष्ण से दूर जा रहे हैं···" उद्धव ने कहा।

"उद्धव, तू जो बोलता है मेरी समझ में नहीं आता !" नारद ने कहा।

"देवर्षि, कृष्ण ने एक बार मुझसे कहा था—'मेरे सर्वाधिक निकट नारद रहे हैं।' आपको याद है, हम वृन्दावन में मिले थे तब कृष्ण से मिलने मैं बड़े सबेरे मथुरा चला गया और आप ब्रज में रुक गये थे···" उद्धव ने कहा।

"हाँ, इसी से तो मुझे कृष्ण नहीं मिले···" नारद ने कहा।

"नहीं, इसी से तो आपको कृष्ण मिले। कृष्ण ने मुझसे कहा था—'उद्धव' तुझे यहाँ इस हाड़मांस के पुतले में रस आ रहा है। वहाँ नन्द, जसोदा, गोप-गोपी, राधा, वृषभानु, यमुना ब्रज के निकुंज में और गोधन में तुझे कहीं भी कृष्ण नहीं दिखे ? मैं वहाँ हूँ, यहाँ नहीं···' और नारद, तब आप कृष्ण के साथ थे, मैं कृष्ण से विलग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था" उद्धव ने कहा।

"यों तो त्रिवक्रा के भवन में भी मैंने कृष्ण को देखा था, जरासन्ध के क्रोध में और भीष्म की श्रद्धा में भी मैंने कृष्ण को देखा था।" नारद बोल उठे।

"आपने माता देवकी की पूजा और आरती में भी कृष्ण को देखा था !" उद्धव ने कहा।

"हाँ, कृष्ण को तो कभी भी इन आँखों से नहीं देख सका···" नारद बोले, "मेरी उत्सुकता अब वढ़ती जाती है। मेरी आँखें जिसे देखने को जीवन भर तरसती रही हैं उस रूप से मुझे अब और अधिक समय तक दूर न रखो, उद्धव। मुझे जल्दी से कृष्ण के पास ले चलो···"

"हम लोग इस समय उसी रूप के पास जा रहे हैं", पर कृष्ण हमेशा एक बात कहते थे—इस रूप में कृष्ण नहीं हैं, कृष्ण व्रज की गायों के नेत्रों में बसते हैं, यमुना के श्याम प्रवाह में बसते हैं, द्वारका के हृदय में बसते हैं। यदि यहाँ कृष्ण न हों तो वे कहीं नहीं होंगे। और वहाँ कृष्ण हों तो जहाँ कृष्ण न हों ऐसा कोई स्थान हो सकता है क्या ?" उद्धव ने कहा।

उद्धव और नारद सघन वन में धीमे-धीमे आगे बढ़ रहे थे। मृत्यु के वातावरण में से निकलकर वे किसी नये स्थान में किसी अकल्पनीय वायुमण्डल में प्रवेश कर रहे हों, नारद कुछ ऐसा ही अनुभव कर रहे थे।

"नारद, आपको याद है राधा ने कहा था, 'कृष्ण कहीं गये नहीं हैं। वे मेरे मन में हैं'···" उद्धव ने कहा।

"हाँ···"

"आज इतने वर्षों के बाद व्रज में क्या हुआ होगा कौन जाने ! नन्द और यशोदा वृद्ध हो गये होंगे, राधा भी प्रौढ़ावस्था को पहुँची होगी और क्या राधा की एक भी अवस्था ऐसी है जहाँ कृष्ण न हों ! हमने जिन्हें दुर्योधन की राजसभा में, कुरुक्षेत्र के मैदान में या पाण्डवों के राज्यारोहण के अवसर पर देखा था वे कृष्ण वहाँ नहीं होंगे, वहाँ तो नन्दकिशोर की पूजा होती होगी। अभी भी सब याद करते होंगे कि कदम्ब के वृक्ष पर वह बालक कैसे खेलता था। अभी भी राधा को स्वप्न में कृष्ण का भुवनमोहन स्मित दिखता होगा। कृष्ण जितने यहाँ नहीं हैं, उतने वहाँ हैं।" उद्धव ने कहा।

"उद्धव, अभी अब कृष्ण-मिलन का मेरा क्षण निकट से निकटतर आता जा रहा है, उस समय तुम यह कैसी बातें कर रहे हो !" नारद को उद्धव का आज का व्यवहार किसी भी प्रकार से समझ में नहीं आ रहा था।

"देवर्षि, यादवगण जब मुथरा छोड़ चले तब त्रिवक्रा अपने भवन में से हिली तक नहीं। वह कहती थी कृष्ण ने जिस भूमि को पावन किया है, उसे छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी, भले जरासन्ध मथुरा में आग लगा दें।" उद्धव ने कहा, "क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पता कि इस समय वह जीवित भी है या नहीं ! पर उसके हृदय में अंकित छवि युगों बाद भी ऐसी की ऐसी ही रहेगी।"

नारद अस्वस्थ हो उठे। उन्होंने पहले संहार देखा, फिर बलराम की मृत्यु देखी। अब जब कृष्ण-दर्शन का क्षण निकट आ रहा था जब उनका एक-एक कदम उन्हें कृष्ण के पास ले जा रहा था, तब ये कदम इतने भारी क्यों होते जा रहे हैं ?

"नारद, आपके परिभ्रमण में कृष्ण जीते हैं। आप कृष्ण को देखने मथुरा के कारावास में गये, वृन्दावन में गये, गिरिव्रज गये, इन्द्रप्रस्थ गये, हस्तिनापुर गये, द्वारका गये, काम्यक वन में घूमे, आपकी इन सभी यात्राओं में कृष्ण हमेशा जीवित रहेंगे। युगों बाद भी कोई भक्त या कोई कवि उन्हें याद करेगा और कृष्ण से मिलने हेतु आपने जो यातना भोगी है वही यातना माँगेगा। वह पूजा करने बैठेगा तो नन्द-जसोदा की वेदना, गोपी का विरह और नारद की तड़पन का वरदान माँगेगा।"

उद्धव की वाणी में नारद कोई संकेत सुन रहे थे। वे बोल उठे, "उद्धव, सच-सच कहो, हम कृष्ण के पास ही तो जा रहे हैं न ! वह भुवनमोहन रूप, जिसकी अभी तुमने बात की, उस स्वरूप का मुझे साक्षात्कार होगा न !"

"हाँ देवर्षि, हम उस भुवनमोहन स्वरूप के पास ही जा रहे हैं। पर कृष्ण जितना आपकी वीणा में से झंकृत 'नारायण' नाम में जीते हैं वे उतना उस स्वरूप में सम्भव है, न भी हों !" उद्धव ने कहा।

नारद ने रुककर उद्धव के दोनों कन्धों पर हाथ रखे। कन्धों को जोर से हिलाकर कहा, "उद्धव, कहो तो भाई, आखिर हुआ क्या है ?"

उद्धव थोड़ा मुस्कराये और कहा, "देवर्षि आपको कृष्ण से मिलना है न !"

"हाँ"—नारद ने अधीर होकर कहा।

"तो देखिए, सामने हैं कृष्ण।"

नारद ने उस दिशा में दृष्टि डाली। अश्वत्थ के नीचे एक मिट्टी का चबूतरा था। उस पर कृष्ण बैठे थे। उनका एक पैर भूमि का स्पर्श कर रहा था, दूसरा पैर मोड़कर घुटने पर रखा था। दूर से देखने पर उनके नेत्र मुँदे हुए लगते थे और एक चमकती रेखा कृष्ण के दर्शन के बीच अवरोध बनकर खड़ी हो, ऐसा लग रहा था।

नारद दौड़े। उस चमकती रेखा का अवरोध हटाने की तीव्र चेष्टा करने लगे। कृष्ण के मुख पर मधुर स्मित था, उनके चेहरे पर प्रगाढ़ शान्ति थी। नारद ज्यों-ज्यों निकट आते गये, वे शान्ति के सघन वातावरण में प्रवेश कर रहे हों, ऐसा अनुभव करने लगे।

कृष्ण के पास जाकर उन्होंने उनके चरणों में मस्तक नवा दिया। कितनी देर उन्होंने इन चरणों में मस्तक रहने दिया पता नहीं। मस्तक पर उष्ण बूँदें गिर रहे हैं ऐसा लगा तो नारद ने नज़र ऊपर उठायी। कृष्ण के पैर के तलुवे में से हाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की हथेली बींध कर हृदय में धँस गया तीर चमक रहा था और उसमें से रुधिर स्राव हो रहा था !

"कृष्ण···कृष्ण···" नारद चीख उठे।

"नारद स्वस्थ हों।" उद्धव ने नारद के मस्तक पर हाथ रखकर कहा।

नारद के मन में कोई प्रचण्ड सागर हिलोर ले रहा था। वे अनुभव कर रहे थे कि एक ऐसी उथल-पुथल मची है जो कभी थमेगी नहीं। उनकी आँखों के सामने एक क्षण कृष्ण के वन्द नेत्र, तो दूसरे क्षण रक्त झरता हृदय, तो अगले क्षण होंठ पर का स्मित और बदन पर की प्रगाढ़ शान्ति नाच रहे थे···

"उद्धव, क्या हो गया है मेरे कृष्ण को ?" नारद के मुख से रुदन भीजा प्रश्न निकला।

"देवर्षि, मैं कहता था न कि कृष्ण नारद के परिभ्रमण में जितना जीते हैं, उतना इस स्वरूप में नहीं जीते···"

नारद कोई भी शव्द नहीं सुन रहे थे, उन्हें लगा कि समूची पृथ्वी डोल रही है, मानो सारा आकाश टूटकर धरती पर गिरने को आतुर है, एक प्रचण्ड कड़क सुनाई दी।

धरती डोली, अश्वत्थ की छाया में बैठे कृष्ण डोले, नारद डोले, और लगा कि उद्धव भी डोल रहे हैं। प्रभास के तट पर समुद्र ने जैसे मर्यादा तोड़ दी हो ऐसा प्रचण्ड गर्जन निकट, निकटतर आने लगा···

आकाश तक उछलती सागर की मौजें लगता था जैसे सारी धरती को लील जायेंगी। समूची स्वर्ण द्वारका अपने उदर में समा लेने को आतुर हो, ऐसा सागर निरन्तर आगे बढ़ता आ रहा था।

नारद के होठ काँप रहे थे। युगों पार से आ रही हो, ऐसी उद्धव की आवाज उन्हें टुकड़ों में सुनाई दे रही थी।

"नारद, कृष्ण आपके परिभ्रमण में जीते हैं। युगों के बाद भक्त और कवि, कृष्ण को राधा के विरह में खोजेंगे, यशोदा के लाड़ में खोजेंगे, देवकी के वात्सल्य में खोजेंगे और उससे भी बढ़कर आपके हाथ की वीणा के स्पन्दनों में ढूँढ़ेंगे ! कृष्ण की मूर्ति के पास जाकर कोई भक्त कहेगा, नन्द और यशोदा को जो दुःख सहन करना पड़ा वरदानस्वरूप वह हमें प्रदान करें, नारद ने कृष्ण के दर्शन के लिए जो तड़पन अनुभव की वह तड़पन हमें दीजिए !"

"नारद युग-युग में कुरुक्षेत्र होते रहेंगे, युग-युग में यादवस्थलियों की रचना होती रहेगी, पर उन सभी युगों में कृष्ण भी होंगे, कृष्ण के लिए तड़पन होगी, उनके विरह में सूखनेवाले लोग होंगे और उनके तप के बल पर ही दुनियाँ टिकी रहेगी।"

□□□

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

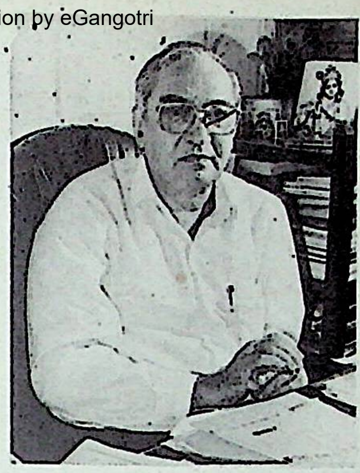

हरीन्द्र दवे

(1930-95)

गुजराती के अग्रणी साहित्यकार श्री हरीन्द्र जयन्तीलाल दवे की सर्जनात्मक पृष्ठभूमि में उनकी पारम्परीण सांस्कृतिक आस्था, आध्यात्मिक चिन्तन और आधुनिक विचारों की प्रायोगिक अन्तर्दृष्टि का अद्भुत समन्वय है। विगत पाँच दशकों में अनवरत सारस्वत साधना में संलग्न उन्होंने गुजराती में अब तक छह काव्य-संग्रह, ग्यारह उपन्यास, दो नाटक, आठ विवेचना-ग्रन्थ, पाँच निबन्ध-संग्रह और तीन धर्म-विषयक ग्रन्थ देकर भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। वे गुजराती के प्रमुख दैनिक 'प्रवासी' और 'जन्मभूमि' के प्रधान सम्पादक रहे हैं।

श्री दवे को उनके साहित्यिक अवदान के लिए गुजरात सरकार ने उन्हें कई बार सम्मानित एवं पुरस्कृत किया है। साहित्य अकादेमी पुरस्कार (1978), रणजीतराम स्वर्णपदक (1982), श्रीअरविन्द पदक (1983), हारमॅनी अवार्ड (1989), महाराष्ट्र गौरव (1990), के. एम. मुंशी स्वर्णपदक (1992), कबीर सम्मान (1992) आदि पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003
संस्थापक :
स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi